पराड़करजी और पत्रकारिता

जीवन-दर्शन, साहित्य और पत्रकारिता

भूमिका लेखक
माननीय डॉ० सम्पूर्णानन्द
मुख्यमंत्री, उत्तरप्रदेश सरकार

लेखक
लक्ष्मीशंकर व्यास

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला–हिन्दी-ग्रन्थाङ्क–१२१
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६०
मूल्य साढ़े पाँच रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी



पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर

[निधनके कुछ महीने पूर्व लिया गया चित्र]

विषय-क्रम

जीवन-खण्ड

जैकसनकी हत्याके लिए पिस्तौल—श्री रासबिहारी घोषसे सम्पर्क—डिप्टी पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टकी हत्यामें गिरफ्तारी—जेल जीवनके संस्मरण—जनवरी, १९२० में रिहाई।

राष्ट्रीय दैनिक 'आज' का सम्पादन [पृष्ठ ४६—६५] 'आज' के प्रकाशनकी योजना—लोकमान्य तिलकसे परामर्श एवं निर्देश—'आज' का नामकरण—नीति सम्बन्धी पराड़करजीकी शर्त—श्रीप्रकाशजीका हृदयोद्गार—पराड़करजीका उत्तर—श्री शिवप्रसाद गुप्तका आश्वासन—श्रीप्रकाशजीके साथ संयुक्त सम्पादन—'आज' का प्रकाशन—संघटन और व्यवस्थाकी कठिनाइयाँ—पारिवारिक उलझनोंसे बाधा—श्रीप्रकाशजी द्वारा सहयोग—सम्पादकीय व्यवस्थाका सम्पूर्ण भार—१९३४ से 'आज' के प्रधान सम्पादक—वेंकटेश्वर समाचारका आमन्त्रण।

प्रथम सम्पादक सम्मेलनके सभापति [पृष्ठ ६६—७०] वृन्दावन हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९२५) के प्रथम सम्पादक सम्मेलनके सभापति—सम्पादकों तथा साहित्यकारोंके बधाई पत्र—देशबन्धु एण्डरूजका सन्देश—समाचारपत्रोंके आदर्श सम्बन्धी ऐतिहासिक भाषण—कवि सम्मेलनका संस्मरण।

विधवा विवाह [पृष्ठ ७१—८०] विधवा विवाहका क्रान्तिकारी संकल्प—धर्मशास्त्रोंका गहन अध्ययन—महामहोपाध्याय पण्डित लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़से शास्त्रार्थ—पण्डित माधवराव सप्रे तथा श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थीकी सहायता—गणेशजीके पत्र—विद्यार्थीजी द्वारा कानपुरमें विवाहका संयोजन—बधाईके पत्र—हास्यरसावसार चतुर्वेदीजीका पत्र।

पत्नीकी बीमारी और मृत्यु [पृष्ठ ८०—८७] सामाजिक बहिष्कार—किरायेके मकानमें—पत्नीपर भूतका प्रभाव—श्री रामदास गौड़ द्वारा प्रेतबाधाका उपचार—श्री सम्पूर्णानन्दजीका पत्र—

जैकसनकी हत्याके लिए पिस्तौल—श्री रासबिहारी घोषसे सम्पर्क—डिप्टी पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टकी, हत्यामें गिरफ्तारी—जेल जीवनके संस्मरण—जनवरी, १९२० में रिहाई।

राष्ट्रीय दैनिक 'आज' का सम्पादन [पृष्ठ ४६—६५] 'आज' के प्रकाशनकी योजना—लोकमान्य तिलकसे परामर्श एवं निर्देश—'आज' का नामकरण—नीति सम्बन्धी पराड़करजीकी शर्त—श्रीप्रकाशजीका हृदयोद्गार—पराड़करजीका उत्तर—श्री शिवप्रसाद गुप्तका आश्वासन—श्रीप्रकाशजीके साथ संयुक्त सम्पादन—'आज' का प्रकाशन—संघटन और व्यवस्थाकी कठिनाइयाँ—पारिवारिक उलझनोंसे बाधा—श्रीप्रकाशजी द्वारा सहयोग—सम्पादकीय व्यवस्थाका सम्पूर्ण भार—१९३४ से 'आज' के प्रधान सम्पादक—वेंकटेश्वर समाचारका आमन्त्रण।

प्रथम सम्पादक सम्मेलनके सभापति [पृष्ठ ६६—७०] वृन्दावन हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९२५) के प्रथम सम्पादक सम्मेलनके सभापति—सम्पादकों तथा साहित्यकारोंके बधाई पत्र—देशबन्धु एण्डरूजका सन्देश—समाचारपत्रोंके आदर्श सम्बन्धी ऐतिहासिक भाषण—कवि सम्मेलनका संस्मरण।

विधवा विवाह [पृष्ठ ७१—८०] विधवा विवाहका क्रान्तिकारी संकल्प—धर्मशास्त्रोंका गहन अध्ययन—महामहोपाध्याय पण्डित लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़से शास्त्रार्थ—पण्डित माधवराव सप्रे तथा श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थीकी सहायता—गणेशजीके पत्र—विद्यार्थीजी द्वारा कानपुरमें विवाहका संयोजन—बधाईके पत्र—हास्यरसावसार चतुर्वेदीजीका पत्र।

पत्नीकी बीमारी और मृत्यु [पृष्ठ ८०—८७] सामाजिक बहिष्कार—किरायेके मकानमें—पत्नीपर भूतका प्रभाव—श्री रामदास गौड़ द्वारा प्रेतबाधाका उपचार—श्री सम्पूर्णानन्दजीका पत्र—

साहित्य-खण्ड

भूमिका

पत्र पत्रिकाएँ आज भी निकल रही हैं और आगे भी निकलेंगी और उनकी संख्या तथा प्रचारमें वृद्धि भी होगी। हिन्दी राष्ट्रभाषा और राजभाषा मान ली गई है इसलिए ऐसी आशा करनी चाहिए कि हिन्दी पत्रकार-जगत्‌में हर दृष्टिसे उन्नति होगी। परन्तु सम्पादकों और पत्रकारोंकी जो और जैसी पीढ़ी आजसे पचास वर्ष पहिले इस क्षेत्रमें उतरी थी और आजसे दस पन्द्रह वर्ष पहिले तक काम कर रही थीं अब देखनेको न मिलेगी। हमारा पत्रकारिताका इतिहास हमारे अर्वाचीन राजनीतिक इतिहासका महत्त्वपूर्ण अध्याय है और इस बीचमें चलनेवाले पत्रोंका जीवन हमारे स्वाधीनता संग्रामका विशेष अंग है। पत्रकारका काम केवल समाचारोंका चयन और उनका यथास्थान संयोजन तथा लेखोंका सम्पादन नहीं था। उसको निरन्तर विदेशी शासनसे टक्कर लेनी थी। ऐसे एक नहीं अनेक अवसर आये हैं जब कि सम्पादकोंको अग्रलेख लिखनेके लिए लेखनी उठाते हुए एक पाँव जेलकी ओर बढ़ा देना पड़ता था। उनकी लेखनी ही उन लोगोंको सरकारकी आँखोंका काँटा नहीं बनाती थी, उनमें कइयोंका राजनीतिक संस्थाओं और उग्रकर्मा कार्यकर्त्ताओंसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। यह स्मरण रखना चाहिए कि उस समय गान्धी युग आरम्भ नहीं हुआ था। तत्कालीन बहुतसे कार्यकर्त्ता हिंसात्मक साधनोंमें विश्वास करते थे और उनका साथ देना अपनेको सीधे खतरेके मुँहमें डालना था। पत्रकार अपने अल्प वेतनमेंसे राजनीतिक कामको आगे बढ़ानेके लिए पैसा देता था। ऐसे लोगोंको जो पुलिससे बचे फिरते थे आश्रय देता था। उसके हृदयकी उदारता उसको प्रायः निर्धन ही रखती थी और उसके कुटुम्बी भले ही उसके त्यागजन्य पुण्यके भागी होते हों परन्तु सुखसे खाना पहनना बहुधा उनके लिए कठिन होता था।

इस प्रकारके पत्रकारोंमें पराड़करजीका स्थान बहुत ऊँचा था। उनसे

मेरा वर्षों तक निजी परिचय रहा है। उनके जीवनके बहुतसे पहलू जो साधारणत: लोगोंके सामने नहीं आते और जिनमेंसे कुछ अब भी न लाये जा सकेंगे मुझे अवगत थे। उनको युवावस्थासे लेकर मरणकाल तक जैसे कष्टोंका सामना करना पड़ा उनको मैं जानता हूँ। इस प्रकारकी निरन्तर आपन्न अवस्था मनुष्यके स्वको दबा देती है। पग-पगका इच्छाभिघात जीवनको शुष्क और एकांगी बना देता है।

हम धीरे-धीरे उस जमानेको भूलते जा रहे हैं। गाँधी-युगको तो अभी समाप्त हुआ भी नहीं कह सकते, परन्तु उस २५-३० वर्षकी अवधिमें जो नक्षत्र हमारे राजनीतिक आकाशपर कभी छिटके थे उनमेंसे बहुतसे विस्मृति-की गर्तमें विलीन हो गये। ऐसी अवस्थामें इस बातकी आवश्यकता है कि लोगोंके सामने उन महारथियोंके जीवनकी झलक भी आती रहे जिन्होंने उस भूमिकाको तैयार किया जिसमें स्वाधीनता पनप सकी है। अभी थोड़े दिन हुए पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके सम्पादनसे एक पुस्तक निकली है जिसमें देशके पुराने क्रान्तिकारियोंकी चर्चा है। मैंने उसका इसी दृष्टिसे स्वागत किया था। आज पराड़करजीके सम्बन्धमें लिखी गयी इस पुस्तकका भी स्वागत कर रहा हूँ। मैंने पुस्तकको यत्र-तत्र दखा हैं। लेखकने अपने पात्रके जीवनके विभिन्न पहलुओंको लोगोंके सामने रखनेका अच्छा प्रयास किया है। दु:खमय कौटुम्बिक जीवन, अच्छिद्र आर्थिक कष्ट, निरन्तर राज-नीतिक संघर्ष—इन सबके बीचमें रहते हुए पराड़करजीने हिन्दी पत्र-कारिताको जो अमूल्य निधि प्रदान की उससे हिन्दी-जगत् जल्दी उऋण नहीं हो सकता। उस समयका 'आज' अग्रलेखोंके क्षेत्रमें किसी भी अच्छे अंग्रेजी पत्रसे तुलना कर सकता था। उन्होंने जो परम्पराएँ स्थापित कीं वह आज हिन्दी पत्रकार-जगत्‌की सामान्य सम्पत्ति हो गयी हैं।

पुस्तक पढ़ने योग्य है और मैं इसके लिए लेखकको बधाई देता हूँ।

लखनऊ
१३ सितम्बर १९६०

—सम्पूर्णानन्द

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-जगत्के समक्ष उपस्थित करते हुए मुझे प्रसन्नता तथा आत्मसन्तोषका अनुभव हो रहा है। पिछले छः वर्षोंसे श्रद्धेय गुरुदेव सम्पादकाचार्य पराड़करजीके जीवन, साहित्य और उनकी सम्पादन-कलाके विषयमें अध्ययन-मनन तथा अनुसन्धानके अनन्तर यह कृति आपके सम्मुख है। प्रचारसे दूर रहकर राष्ट्र-सेवा, हिन्दी, उसके साहित्य तथा पत्रकारिता-की एकान्त साधनामें अपने सम्पूर्ण जीवनको समर्पित करनेवाले पराड़करजीने अपने विषयमें विशेष कुछ नहीं लिखा, यह स्वाभाविक ही है। हिन्दी साहित्यका दुर्भाग्य है कि उन्हें अपने युगान्तरकारी जीवनके अनुभव तथा पत्रकारिता सम्बन्धी पुस्तक लिखनेका अवकाश न मिल सका! अस्तु।

अपने जीवनके अत्यन्त मूल्यवान संस्मरण भी वे शायद ही सुनाते, यदि सन् १९५३ में—जब उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाका महात्मा गाँधी पुरस्कार प्रदान किया गया—'राष्ट्रभारती' सम्पादक आदरणीय हृषीकेशजी शर्मा तथा 'नया जीवन' सम्पादक आदरणीय प्रभाकरजी एकके बाद दूसरे पत्र लिखकर मुझसे उनके सम्बन्धमें उस अवसरपर लेख और संस्मरण शीघ्र भेजनेका तकाजा न करते। अनेक निवेदनों तथा दोनों सम्पादक महानुभावोंके पत्र दिखाते रहनेपर एक दिन स्वीकृति मिली। उस दिन तीन घण्टेतक आपने अपनी जीवन-कथा सुनाते हुए अनेक रोमांचक एवं औपन्यासिक संस्मरण सुनाये। एक बार और आकाशवाणी रेकार्डिंगके लिए मेरे तथा भाई श्री मोहनलाल गुप्तके बहुत अनुरोध करनेपर उन्होंने अपने जीवनके संस्मरण, निधनके कुछ ही महीने पूर्व सुनाये। यह पुस्तक उन्हींको आधार बनाकर, उनके सन् १९२० से १९४२ तकके पत्र-व्यवहार, उनकी साहित्यिक डायरी, उनके सम्पादकीय सन्दर्भ-रजिस्टर आदि प्रभूत सामग्रियों-के अध्ययन-अनुशीलनके उपरान्त प्रामाणिकतापूर्वक प्रस्तुत की गयी है।

राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजीके शब्दोंमें "पराड़करजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा हिन्दी-पत्रकार जगत्के स्तम्भ थे।" फिर भी हिन्दी-साहित्यके इतिहासकारों द्वारा पराड़करजी जैसे समर्थ सम्पादकाचार्य और साहित्य-महारथीका समुचित मूल्यांकन न होना आश्चर्यजनक ही प्रतीत होता है। सन् १९२०से १९४०तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा हिन्दी-साहित्य-कारोंपर पराड़करजीका कितना महान् प्रभाव रहा है, यह पुस्तकके साहित्य-खण्डसे सहज ही प्रकट है। इनके आधारपर निःसंकोच कहा जा सकता है कि पराड़करजी हिन्दी भाषा एवं साहित्यके एक महान् आचार्य थे। पराड़करजीके तीन स्वरूप मुख्यतः हमारे सामने आते हैं—स्वाधीनता-संग्रामके क्रान्तिकारी नेता, साहित्य-महारथी और आधुनिक हिन्दी-पत्र-कारिताके प्रतिष्ठापक। इनमेंसे एक ही विशेषता किसीकी महत्ता चिर-स्मरणीय रखनेके लिए पर्याप्त है। पराड़करजीमें इन तीनोंका अपूर्व संगम उन्हें कितना महनीय बना देता है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। पुस्तकमें पराड़करजीके इन तीनों स्वरूपों और उनके तत्सम्बन्धी कृतित्वोंपर प्रामा-णिक प्रकाश डाला गया है।

पुस्तकके तीन खण्ड हैं—जीवन, साहित्य और पत्रकारिता। इन तीनोंमें एक अखण्ड धारा है और वह है पत्रकारिताकी। पत्रकारिताके माध्यमसे पराड़करजीने देशके स्वाधीनता-संग्राममें असाधारण योगदान दिया, मौलिक साहित्य-सर्जनकी प्रेरणा दी और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका दशकोंतक नेतृत्व किया। सबसे विलक्षण बात तो यह है कि एक ओर उनमें साहित्य-निर्माण करने-करानेकी असाधारण प्रतिभाके दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्थाके संचालन-संघटनकी उनमें अपूर्व क्षमता थी। इसी प्रकार जहाँ उन्होंने आधुनिक हिन्दी-पत्रकारिताके नवीन मानदण्ड स्थिर किये, वहीं सर्वप्रथम हिन्दी-सम्पादकों एवं पत्रकारोंकी संस्थाकी स्थापना और उसके मार्ग-दर्शनका श्रेय भी पराड़करजीको है। भारतीय प्रेस

आयोगने भी पराड़करजीके पत्रकारिताके आदर्श, उनकी असाधारण प्रतिभा एवं सम्पादकीय नीतिकी अपने प्रतिवेदनमें प्रशस्ति की है।

अन्तमें मैं पुस्तककी भूमिका लिखनेकी महती कृपाके लिए उत्तरप्रदेशके मुख्यमन्त्री माननीय डाक्टर सम्पूर्णानन्दजीके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। सम्पादकाचार्य पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी तथा स्वर्गीय सम्पादकाचार्य पण्डित लक्ष्मणनारायणजी गर्देका भी मैं परम अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस पुस्तकके अनेक प्रसंगोंके लेखनमें मुझे निर्देश दिया है। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसादजी मिश्रने पुस्तककी पाण्डुलिपिका अवलोकनकर अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। 'आज' की फाइलोंके अध्ययन तथा उसके अनेक उद्धरणोंके लिए मैं ज्ञानमण्डल लिमिटेडका आभारी हूँ। पराड़कर-बन्धुओं, विशेषतः भाई मंगलजीको पराड़करजीके पत्र-व्यवहार, भाषण तथा अन्य सामग्रीका उपयोग करनेकी अनुमति देनेके लिए कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। भारतीय ज्ञानपीठकी लोकोदय ग्रन्थमालाके विद्वान् सम्पादक बन्धुवर आदरणीय श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैनके बहुमूल्य निर्देशोंके लिए भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ। पुस्तकके शीघ्र तथा सुन्दर मुद्रणके लिए श्री बाबूलालजी जैन हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं।

मातृनवमी २०१७, वि०
व्यास-निवास, वाराणसी

—लक्ष्मीशंकर व्यास

पराड़करजी : श्रद्धांजलियाँ

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद—

पराड़करजी हिन्दी साहित्य-सम्मेलन और हिन्दी पत्रकार-जगत्के स्तम्भ थे। मेरा उनके साथ परिचय प्रायः ४५ वर्षोंका था और आपसमें हम दोनोंका काफी प्रेमभाव था।

श्री श्रीप्रकाश—

पराड़करजी हिन्दी पत्रकार-जगत्के अग्रणी थे।

डा० बी० बी० केसकर—

पराड़करजी हिन्दी पत्रकारोंमें मूर्धन्य थे। भारतके हिन्दी पत्रोंके निर्माणमें उन्होंने बहुत भारी योग दिया है।

श्री लालबहादुर शास्त्री—

भारतमें हिन्दी समाचार-पत्रोंको उन्होंने विशेष नेतृत्व प्रदान किया। सम्पादकीय जगत्में उनका नाम सदा ऊँचा रहेगा और उन्हें भुलाया नहीं जा सकता।

श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर—

अहिन्दी प्रान्तका व्यक्ति हिन्दीके लिए कितनी कुर्बानी कर सकता है, पराड़करजीकी सेवाएँ इसका उदाहरण हैं।

डाक्टर सम्पूर्णानन्द, मुख्यमन्त्री उत्तरप्रदेश—

पराड़करजी आजके बीते हुए जमाने और वर्तमानकालके बीच सम्बन्ध सूत्रका काम कर रहे थे।

श्री मिश्रीलाल गंगवाल, मुख्यमन्त्री मध्यप्रदेश—

पराड़करजी हिन्दी पत्रकारिताके एक प्रकाशमान स्तम्भ थे।

पं० कमलापति त्रिपाठी, शिक्षामंत्री उत्तरप्रदेश—

श्रद्धेय पराड़करजी मेरे गुरु रहे हैं। पण्डितजीने स्वतन्त्रताके युद्धमें न जाने कितने युवकोंको अपनी लेखनीके द्वारा प्रेरणा और शक्ति प्रदान की है।

श्री अनुग्रहनारायण सिंह—

पराड़करजीकी लेखनीमें अपूर्व शक्ति थी। उनकी प्रबल लेखनीसे देशके न मालूम कितने नवजवानोंको प्रेरणा, स्फूर्ति और उत्साह मिला है। मैं भी उनकी लेखनीसे प्रेरणा लेता रहा हूँ।

सम्पादकाचार्य लक्ष्मणनारायण गर्दे—

पराड़करजी भारतीय राष्ट्रके केन्द्रीय व्यक्ति थे। पत्रकारिता द्वारा उन्होंने राष्ट्रकी जो सेवा की है वह सर्वविदित है। उनके अन्तरंग मित्रोंमें भारतके बड़े-बड़े क्रान्तिकारी थे। क्रान्तिके प्रयत्नोंमें वे सदा गुप्त रूपसे सहायक रहते थे।

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी—

पराड़करजीने हिन्दी-जगत और हिन्दी भाषी जनताकी जो सेवा 'आज'के द्वारा की उसका मूल्यांकन करना असम्भव है।

श्रीकान्त ठाकुर विद्यालंकार—

वे युगान्तरकारी पत्रकार थे। वे जो आदर्श परम्परा कायम कर गये हैं उससे भावी पीढ़ीके पत्रकारोंका मार्गदर्शन होगा। वे मेरे गुरु थे।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—

पराड़करजी हिन्दी पत्रकारजगत्के स्तम्भ थे। वे उन थोड़ेसे व्यक्तियोंमें थे जो अपने संचालकके मतके विपरीत मत प्रकट करनेका साहस कर सकते थे। हिन्दी-पत्रकारिताकी उन्होंने एक नयी परम्परा डाली।

जीवन-खण्ड

सन्तों, महात्माओं, विचारकों तथा साहित्यके युग-प्रवर्त्तकोंको जन्म देनेवाली ऐतिहासिक काशी नगरीमें श्रीबाबूराव विष्णु पराड़करका जन्म कार्तिक शुक्ल षष्ठी मंगलवार संवत् १९४० विक्रम तदनुसार १६ नवम्बर सन् १८८३को हुआ। आपके पिताका नाम पण्डित विष्णु शास्त्री पराड़कर था और माताका नाम था श्रीमती अन्नपूर्णाबाई। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें पण्डित विष्णु शास्त्री महाराष्ट्र स्थित अपने पूर्वजोंका स्थान छोड़कर काशी आ बसे थे। ये कन्हाडे परिवारके थे। काशी आनेके पूर्व उनका अध्ययनकाल समाप्त हो चुका था। वे संस्कृतके पण्डित थे। उनका गठीला शरीर, गौर एवं तेजस्वी मुखमण्डल उनकी स्वतन्त्र प्रकृतिका परिचायक था। काशी आनेपर ही उनका विवाह हुआ। उनकी शुचिता, स्वच्छता और तेजस्विता तत्काल लोगोंको प्रभावित करती थी। आप बिहारके राजकीय स्कूलोंके हेडपण्डित नियुक्त हुए। बालक पराड़करका नामकरण 'सदाशिव' किया गया था किन्तु पिता स्नेह-भावसे उन्हें 'बाबू' ही पुकारा करते थे। परिणाम यह हुआ कि यही 'बाबू' बाबूराव विष्णु पराड़कर हो गये। बचपनका 'सदाशिव' नाम एकदम ही विस्मृत कर दिया गया हो, ऐसी बात नहीं। अपने सुदीर्घ पत्रकारिताके जीवनमें आगे चलकर पराड़करजीने 'सदाशिव'के नामसे बहुत-से लेख लिखे।

शिक्षा-दीक्षा

बालक बाबूरावकी शिक्षा-दीक्षा सनातनी ब्राह्मण परिवारके बालकों जैसी हुई। यज्ञोपवीतके पूर्व उन्होंने लँगोटी पहन तथा भस्म लगाकर वेदांगका अध्ययन किया। बुद्धि प्रारम्भसे कुशाग्र थी और इसके परिणाम-स्वरूप यज्ञोपवीतके पूर्व ही आपको वेदांग कण्ठाग्र हो गये। जनेऊ हो जानेके बाद आपने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। इसी बीच आपके पिता

पण्डित विष्णु शास्त्री पराड़कर बिहार-बंगाल गवर्नमेण्ट स्कूलके हेड-पण्डित नियुक्त हुए। इसलिए परिवार सहित उन्हें छपरा जाना पड़ा। यहीं बालक बाबूरावको रोमन अक्षरोंका संस्कार कराया गया। एक वर्षके बाद पण्डित विष्णु शास्त्रीकी बदली मुँगेर हो गयी। सरकारी नौकरी और बदलीके कारण आपने परिवारको काशी पहुँचा दिया। बालक पराड़कर, अपनी माता तथा छोटे भाइयों सहित पुनः काशी आ गये। श्रीविष्णु शास्त्री इस प्रकार छपरा, मुँगेर तथा भागलपुरके सरकारी हाई स्कूलोंमें अध्यापन करते रहे और इधर बाबूराव पराड़करका शिक्षा-संस्कार क्रम पुनः काशीकी गलियोंमें होने लगा। उस समय बनारसकी दण्डपाणि गलीमें एक स्कूल था, यहीं आप पढ़ने लगे। इसके बाद आपका नाम हरिश्चन्द्र स्कूलमें लिखाया गया जो उस समय बुलानालाके निकट सुड़िया मुहल्लेमें था। लोअर कक्षाएँ खपरैलके शेडमें लगतीं और ऊँची कक्षाएँ पक्के मकानमें थीं।

इन्हीं दिनोंका संस्मरण सुनाते हुए पराड़करजीने इन पंक्तियोंके लेखक-को बताया—'उन दिनों मेरा संग-साथ काशीके कुछ कबूतरबाज़ लड़कोंका हो गया था। वे पैसा चाहते थे पर मेरे पास पैसा कहाँ? एक दिन उन्हींकी प्रेरणासे मैंने अपनी माताकी अँगूठी चुरा ली। उसे एक सर्राफके यहाँ बेचा गया और कबूतरबाज़ोंको रुपये दिये। एक-दो दिन बाद ही माताजीने अँगूठीकी खोज़ की तो इस काण्डका रहस्योद्‌घाटन हो गया। अँगूठी जिस सोनारके यहाँ बेची गयी थी वहाँसे रुपया देकर प्राप्त कर ली गयी। माताने पिताजीको सारी घटना लिख भेजी। उस समय पिताजी भागलपुर हाई स्कूलमें हेडपण्डित थे। तुरत छुट्टी लेकर वे काशी आये और मुझे अपने साथ ले गये। सत्तरवर्षीय वयोवृद्ध पराड़करजी जब अपने श्रीमुखसे अपने बाल्यकालका यह संस्मरण सुना रहे थे तो अन्तमें यह बात बड़ी मार्मिकतासे कही कि पिताजीने मुझे न डाँटा-फटकारा और न कोई कठोर दण्ड दिया। इस घटनाका मेरे जीवनपर गहरा प्रभाव

पड़ा।' वस्तुतः यह उनके जीवनकी एक परिवर्तनकारिणी घटना थी। यहींसे काशीकी गलियोंमें परम स्वतन्त्र होकर कबूतर उड़ानेवालोंके साथ घूमनेवाले प्रतिभावान बालक पराड़करका जीवनक्रम एक नयी दिशामें परिवर्तित हुआ।

बिहारके भागलपुर जिलेके तेजनारायण कालेजमें उन दिनों पण्डित विष्णु शास्त्री संस्कृतके अध्यापक थे। यहीं पराड़करजीका नाम लिखाया गया। वे अपने पिताके साथ रहकर अध्ययन करने लगे। अभी श्रीबाबूराव मैट्रिक परीक्षा भी उत्तीर्ण न कर पाये थे कि आपके पिताका दुःखद अवसान हो गया। परिवारमें सबसे बड़े होनेके नाते आपपर अनेक नये भार एवं उत्तरदायित्व आ गये। इन्हीं परिस्थितियोंमें सन् १९०० ई० में आपने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। आर्थिक साधनोंका अभाव अवश्य था पर आपने अपना अध्ययन न छोड़ा। इसका एक कारण तो यह था कि स्कूल-कालेजमें आप अपनी प्रतिभा एवं परिश्रमके बलपर सभी अध्यापकोंके प्रिय छात्र बन गये थे। दूसरे भागलपुरके जमींदार पाण्डेयजीके यहाँ जो आपके पिताजीके शिष्य थे—आपको पारिवारिक स्नेहका वातावरण मिला। इसीलिए मैट्रिक पास होनेपर इण्टरमीडिएट कक्षामें आपने भागलपुरके तेजनारायण कालेजमें अध्ययन शुरू किया। कठिनाइयोंने अब भी पीछा न छोड़ा था। अभी आप इस कक्षाका अध्ययन पूरा न कर सके कि सन् १९०३ में काशीमें प्लेगका भयंकर प्रकोप हुआ और आपकी माता इस लोकसे चल बसीं। पन्द्रह वर्षके जब आप थे तभी पिता परलोकगामी हो गये थे और अब माता भी उन्हें छोड़कर चली गयीं। पिताकी मृत्युके बाद घरमें जो कुछ था, वह समाप्त हो चुका था। काशी आकर श्रीबाबूरावजीने देखा कि अब और पढ़नेका अवसर नहीं रह गया था। परिवारके पोषणका दायित्व आ गया था और जीविका उपार्जनका प्रश्न सामने था।

राष्ट्रीय संस्कार

पराड़करजीकी जीवनधारामें महान् परिवर्तन करने वाली दो घटनाएँ रही हैं। जब आप मैट्रिक कक्षामें अध्ययन कर रहे थे उसी समय कलकत्ते-में रहनेवाले बंगला साहित्यके मर्मज्ञ तथा प्रसिद्ध पत्रकार श्री सखाराम गणेश देउस्कर अपनी बड़ी पुत्रीका विवाह निश्चित करनेके लिए काशी आये। देउस्करजी रिश्तेमें आपके मामा होते थे। दोनों परिवारोंका सम्बन्ध पुराना था। दूरका सम्बन्ध होते हुए भी घनिष्ठता थी। सन् १९५१ में अपनी जीवन-कथा सुनाते हुए स्वयं पराड़करजीने मुझे बताया था कि मेरी माँ देउस्करजीको भ्रातृ-द्वितीयाके दिन टीका करती थीं। देउस्कर जी उस समय कलकत्तेके सुप्रसिद्ध बँगला साप्ताहिक और बादमें दैनिक 'हितवादी' पत्रके प्रख्यात सम्पादक थे। महाराष्ट्रीय होते हुए भी बँगला भाषापर उनका इतना अधिकार था, जितना तत्कालीन अनेक बंगाली साहित्यकारोंका भी न था। संस्कृत, बँगला तथा मराठी भाषाओंके तो वे प्रकाण्ड पण्डित थे ही, इतिहासके भी मर्मज्ञ ज्ञाता थे। देउस्करजीने बालक पराड़करकी प्रतिभाको पहचानते हुए एक दिन बातचीतके अनन्तर पूछा—अच्छा बताओ अकबर बड़ा था या औरंगज़ेब !

'अकबर'—उत्तर था। यही बाबूरावने इतिहासमें पढ़ा था।

'क्यों !'—तत्काल 'देउस्करजीका दूसरा प्रश्न था। इस 'क्यों' का उत्तर बाबूरावके पास न था। उन्होंने इतिहासमें जैसा पढ़ा था वैसा ही उत्तर दिया। इसपर देउस्करजीने अकबर तथा औरंगज़ेबके चरित्रका तुलनात्मक विवरण बताते हुए पराड़करजीको समझाया कि अकबरकी अपेक्षा औरंगज़ेबका चरित्र बहुत अच्छा था। वह क़ुरान लिखकर अपना जीवन-व्यय चलाता था। अकबरमें यह बात न थी। उसकी नीतिसे कालान्तरमें हिन्दू-संस्कृति विलीन हो जाती। औरंगज़ेब न होता तो शिवाजी कैसे पैदा होते ? आपने यह भी बताया कि ठीक उसी प्रकारकी नीति

अंगरेज़ोंकी है जो हमारी सभ्यता और संस्कृतिको ही नष्ट कर देना चाहते हैं। यह लगभग सन् १९०० के आसपासकी बात है। यही पराड़करजीके लिए राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेमका पहला पाठ था। इस घटनाने आपका दृष्टिकोण ही बदल दिया। उसी समय देउस्करजीने लोकमान्य तिलकके सम्पादकत्वमें निकलने वाले 'केसरी' पत्र मँगाकर पढ़नेकी सलाह दी। उन दिनों 'केसरी' साप्ताहिक निकलता था। पराड़करजी 'केसरी' मँगाने लगे और उसे नियमित रूपसे पढ़ने लगे।

दूसरी घटना जो पराड़करजीके जीवनपर अत्यधिक प्रभाव डालनेवाली सिद्ध हुई वह थी—सन् १९०५ की बनारस कांग्रेस। बनारस कांग्रेसमें आपने स्वयंसेवकके रूपमें कार्य किया। यहीं आपको लोकमान्य तिलकके दर्शन हुए और आपने एकलव्यकी भाँति मन ही मनमें उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मान लिया। देश-सेवा तथा राष्ट्रप्रेमकी भावना हृदयमें सबल रूपमें बैठ गयी। लोकमान्य तिलकके दर्शन तथा सम्पर्कके सौभाग्यने पराड़करजीकी भाग्यधारा ही बदल दी। श्री देउस्करजी, १९०५ की बनारस कांग्रेस तथा लोकमान्य तिलक इन तीनोंकी प्रेरणा तथा प्रभावने पराड़करजीके जीवनको नयी दिशा और नयी गति प्रदान की।

विवाह तथा जीविकाकी खोज

माताकी मृत्युके बाद परिवारके सबसे बड़े सदस्य होनेके कारण पराड़करजीके सामने नयी परिस्थितियाँ आ पड़ीं थीं और सम्मुख थे नवीन उत्तरदायित्व। उनका परिवार भी छोटा न था। चार छोटे भाई थे और दो बहनें। एक बहन उनसे बड़ी थीं और दूसरी छोटी। श्री माधवरावजी पराड़कर आपसे छोटे थे और उनसे अन्य दो छोटे भाइयोंके घरके नाम छोटू और रज्जू थे। श्री माधवरावजी घरमें श्यामरावके नामसे पुकारे जाते थे।

इसी समय काशीके सम्भ्रान्त जड़े परिवारमें आपका विवाह सम्बन्ध निश्चित हुआ। यह परिवार अबतक काशीमें विद्यमान है। गायघाटके ज्योतिषीने जन्मपत्री मिलायी। पराड़करजी स्वयं कहा करते थे कि उन्हें जो कुछ स्त्री-सुख मिला वह पहली ही पत्नीसे। पहली पत्नीकी मृत्यु सन् १९१२ में हुई। इसके बाद उनके कई विवाह हुए पर सुख किसीसे न मिला। विवाह-बन्धनमें बँध जाने तथा परिवारका बोझ आ जानेके कारण नौकरीकी तलाश जारी थी। प्रारम्भमें आपने प्राइवेट ट्यूशन किया। काशीके लक्खी चबूतरेके श्री ब्रजमोहनदास कृष्णदासके परिवारमें कुछ दिनोंतक ट्यूशनके बाद आपको डाक-तार विभागमें नौकरी मिल गयी। नियुक्ति-पत्र भी आ गया पर विधाताने तो बाबूरावजीको हिन्दी पत्र-कारिताके विकास तथा उसके इतिहास-निर्माणके लिए बनाया था। फिर भला वे किस प्रकार डाक-तार विभागकी सरकारी नौकरी स्वीकार करते। अदृष्टने उन्हें सरकारी कर्मचारीके रूपमें काम करनेके लिए नहीं बनाया था। उन्हें तो देशकी सरकार बदलनेके लिए कार्य करना था। राजनीतिक नेता बनकर भाषण करनेकी अपेक्षा, देशकी लक्ष-लक्ष जनसंख्याका लेखों द्वारा जागरण करना था। इसीलिए जब आपने कलकत्तेसे प्रकाशित होने-वाले 'हिन्दी वंगवासी' में सहायक सम्पादककी आवश्यकताका विज्ञापन देखा तो तत्काल आवेदनपत्र लिख भेजा। इसके साथ किसीकी न तो सिफारिश थी और न कोई सार्टिफिकेट ही था।

कलकत्तेमें पत्रकारी

'हिन्दी-वंगवासी'के सम्पादक श्री हरेकृष्ण जौहर थे। पराड़करजीके आवेदन-पत्रकी शैलीसे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्हें उक्त पदके लिए चुना और नियुक्ति-पत्र भेज दिया। उन दिनों दुर्गापूजाके अवसरपर दैनिक पत्रोंमें एक सप्ताह और साप्ताहिक पत्रोंमें दो सप्ताहकी छुट्टियाँ हुआ करती थीं। उसी वर्ष जौहरजी पूजावकाशमें काशी आये और पराड़कर-

जीसे उनकी भेंट हुई। जौहरजी आपसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और आपकी लेखन-शैलीकी सराहना की। इसी बीच पराड़करजीने अपने मामा श्री सखाराम गणेश देउस्करको पत्र लिखा और उनकी सम्मति माँगी। देउस्करजी अस्वस्थ होनेके कारण उन दिनों कलकत्तेमें न होकर अपने घर संथाल परगना स्थित करोगाँवमें थे। पराड़करजीका जब उन्हें पत्र मिला तो उन्होंने तत्काल सहमति भेज दी और लिखा कि कलकत्ता जानेके पूर्व मुझसे मिलते जाओ तथा घरकी ताली भी लेते जाओ। सन् १९०६ के पूजावकाशके बाद पराड़करजी काशीसे संथाल परगनान्तर्गत देउस्कर-जीके घर होते हुए उनके निवासकी ताली लेकर कलकत्ता आ गये। 'हिन्दी-वंगवासी' में आपने सम्पादन-कार्य शुरू कर दिया पर रहते थे देउस्करजीके यहाँ ही। पन्द्रह दिनोंके बाद ही देउस्करजी स्वस्थ होकर कलकत्ता आ गये। पराड़करजीकी मामी भी उनके साथ आयी थीं। इस प्रकार पराड़करजी कलकत्तेमें सर्वप्रथम पत्रकारिताके क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। देश-सेवाकी भावना हृदयमें हिलोरें ले रही थी। अब 'केसरी' के अध्ययन-मननके व्यवहारिक प्रयोगका समय आ गया था। उस समय 'हिन्दी-वंगवासी' का बहुत प्रचार था। पर यह पत्र था प्रति-क्रियावादी नीतिका समर्थक। इससे पराड़करजीका चित्त कुछ समयके बाद हटने लगा पर अपने मामा देउस्करजीके आदेशका पालन करते हुए वे वहीं कार्य करते रहे।

'हिन्दी-वंगवासी' में सहायक सम्पादकके वेतनके रूपमें उन्हें पचीस रुपये मासिक प्राप्त होते थे। वेतन जिस दिन मिलता उसी दिन मामा सखारामजीकी आज्ञानुसार बीस रुपयेका मनिआडर बनारस कर देना पड़ता था और उसकी रसीद उन्हें दिखानी पड़ती थी। यही क्रम प्रत्येक मास चलता था। पाँच रुपये कपड़े-लत्ते अथवा हाथ खर्चके लिए अपने पास रखनेकी पराड़करजीको आज्ञा थी। वे सदा इसका पालन करते रहे। भोजन और निवासकी समस्त व्यवस्था मामा देउस्करजीके यहाँ थी ही।

पाँच रुपयेका अधिकांश भाग कलकत्ता स्थित इम्पीरियल लाइब्रेरी (अब नेशनल लाइब्रेरी) के आने-जानेमें व्यय होता था। 'हिन्दी-बंगवासी' के कार्यालयसे लौटकर आनेपर पराड़करजी, देउस्करजीके आदेशानुसार प्रायः नित्य ही इम्पीरियल लाइब्रेरी जाते थे। विभिन्न विषयोंके अध्ययन एवं तथ्य संग्रहका कार्य यहाँ नियमित रूपसे चलता था। यह क्रम इतना नियमित हो गया था कि उक्त देश-प्रसिद्ध पुस्तकालयके पुस्तकाध्यक्षने आपके लिए स्थायी प्रवेश पत्र तथा पृथक् बैठकर अध्ययनकी विशेष सुविधा प्रदान कर दी थी। यह उनके लिए कोई नयी बात न थी।

यहाँ स्मरणीय है कि जब पराड़करजी काशीमें थे तो आपने काशी नागरी प्रचारिणी सभा स्थित हिन्दीके सबसे बड़े आर्य भाषा पुस्तकालयकी प्रायः समस्त पुस्तकोंका अध्ययन कर लिया था। तत्कालीन पुस्तकाध्यक्ष पण्डित गोविन्द प्रसाद शुक्ल पराड़करजीकी अध्ययनशीलता देखकर उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते। पराड़करजी सबेरे ही पुस्तकालय आ जाते और जब दिनमें नौ-दस बजे पुस्तकालय बन्द होने लगता तब भी वहीं पढ़ते रहते। उनकी यह लगन देखकर पुस्तकाध्यक्षने उन्हें दिनभर वहीं बैठकर अध्ययनकी सुविधा दे दी थी। दस बजेके बाद पुस्तकाध्यक्ष द्वार-पर ताला लगाकर घर चले जाते और सायंकाल पाँच बजे पुनः पुस्तकालय-का द्वार खुलता तो देखते कि पराड़करजी पढ़नेमें तल्लीन हैं। इस प्रकार शान्त-एकान्त वातावरणमें पराड़करजीका अध्ययन-मनन होता रहता था। विद्या-व्यसनी पराड़करजीको बचपनसे ही पढ़नेमें अत्यधिक रुचि थी। यही कारण था कि भागलपुरसे जब वे काशी आये तो हिन्दीकी तो बहुत-सी पुस्तकें पढ़ ही चुके थे, हिन्दू-संस्कृतिके भण्डार अष्टादश पुराणोंका भी पारायण कर चुके थे।

कलकत्तेकी इम्पीरियल लाइब्रेरीमें पराड़करजी तत्कालीन महत्त्वके राजनीतिक, सामाजिक और विशेषकर आर्थिक आँकड़ोंका अध्ययन करते थे। इसके अतिरिक्त श्री देउस्करजी प्रायः नित्य ही एक-न-एक प्रश्न

या समस्या सम्बन्धी विचार-विनिमय करते थे। जिस पक्षका पराड़कर जी समर्थन करते उसका वे स्वयं खण्डन-पक्ष ग्रहण करते। इस प्रकार पराड़करजीको गहन अध्ययन-मननके साथ तर्क-पद्धति एवं प्रश्नके दोनों पहलुओंपर व्यापक विचार करने और उसके प्रतिपादनकी शैलीका अच्छा अभ्यास हो गया।

हिन्दीके आचार्योंसे सम्पर्क

उन दिनों कलकत्तेमें हिन्दी भाषा तथा व्याकरणके प्रकाण्ड पण्डित श्री गोविन्दनारायण मिश्र, पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पण्डित छोटूलालजी आदिकी विद्वन्मण्डली हिन्दी साहित्य, भाषा और हिन्दी पत्रकारिताका महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही थी। सन् १९०६-१० तक पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्रकी बैठक ६५ नं० सूतापट्टीमें विद्वानों, कवियों और सम्पादकोंकी तो बैठक थी ही, तरह-तरहके लोगोंका आना-जाना लगा रहता था[1]। यहाँ पुराने समयकी घटनाओंकी चर्चा और आलोचना भी होती थी। संध्याको पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र और पण्डित जगन्नाथ ब्रह्मचारी भी वहाँ पहुँचते थे। उपाध्याय पण्डित बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, मित्र-विलासके पण्डित गोपी नाथ, जामनगर-काठियावाड़के पण्डित हाथी भाई शास्त्री आदिके दर्शन समय-समयपर वहाँ होते थे। इसी प्रकार पण्डित गोविन्दनारायणजी मिश्रके निवासस्थानपर भी तत्कालीन विद्वानों, साहित्य-प्रेमियों और सम्पादकोंका जमघट लगा रहता था। पराड़करजी और पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी भी इन दोनों विद्वानोंके यहाँ साहित्य-चर्चाके निमित्त जाया करते थे। पराड़करजीने हिन्दी लेखन शैलीकी पद्धति तथा व्याकरणकी अनेक बारीकियाँ इन्हीं विद्वानोंके सान्निध्यमें सीखीं। उनपर इन दोनों विद्वानोंका

---

१. पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : समाचारपत्रोंका इतिहास, पृष्ठ ३७६.

अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र हिन्दी भाषा एवं साहित्यके उच्चकोटिके विद्वान् थे और पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र हिन्दी भाषा-साहित्यके अतिरिक्त व्याकरणके भी महान् पण्डित थे। सन् १९५४ में इस प्रसंगकी चर्चा छिड़नेपर पराड़करजीने इन पंक्तियोंके लेखकको बताया—एक बारकी बात है। किसी शब्द-प्रयोगके हिन्दी व्याकरणसे शुद्ध होनेकी बात थी। पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्रने तत्काल कहा—व्याकरणका शुद्ध रूप देखना हो तो 'मानिकजी'के (मित्र-मण्डलीमें पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र इसी नामसे पुकारे जाते थे) पास जाइए। हिन्दी तथा प्राचीन साहित्यशास्त्रके जैसे वे विद्वान् थे वैसा दूसरा कोई नहीं था। उन्हीं दिनों-का एक संस्मरण सुनाते हुए पराड़करजीने बताया—पण्डित पद्मसिंह शर्मा 'सरस्वती'में 'बिहारी सतसई' पर लेखमाला लिख रहे थे। किसी शब्द तथा उसके प्रयोगको लेकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और श्री बाल-मुकुन्द गुप्तमें मतभेदके अनन्तर वाद-विवाद होने लगा। उन्हीं दिनों पण्डित पद्मसिंहजी शर्मा एक दिन मेरे घर कलकत्ता पधारे। उनके आग-मनका उद्देश्य उपरिलिखित शंकाका समाधान करना था। हम दोनों पण्डित गोविन्दनारायणजी मिश्रके घर गये। मिश्रजी उस समय गंगास्नानके निमित्त गये हुए थे और लौटनेवाले ही थे। हम उनकी प्रतीक्षामें वहीं ठहर गये। कुछ देर बाद जब मिश्रजी संध्या-वंदन कर लौटे तो उनके हाथ-में गंगाजलसे भरा एक बड़ा-सा लोटा था।

आते ही उन्होंने पूछा—क्या बात है? मैंने मिश्रजीसे पण्डित पद्मसिंह शर्माका परिचय कराया और तदनन्तर आनेका अभिप्राय। इतनेमें पण्डित पद्मसिंहजी शर्मा बोल उठे—मिश्रजी, इस समय आप विश्राम करें। हम अपराह्नमें आकर अपनी शंकाका समाधान कर लेंगे। पर पण्डित गोविन्द-नारायणजी मिश्र भला कब मानने लगे? उन्होंने एक न मानी और हाथमें बड़ा-सा गंगाजलका लोटा लिये खड़े ही खड़े 'बिहारी सतसई'के तत्सम्बन्धी प्राचीन-अर्वाचीन प्रयोगोंका विस्तृत विवेचन विभिन्न उल्लेखों तथा उद्ध-

रणों सहित कह सुनाया। जब हम पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रजीके यहाँसे लौटे तो पण्डित पद्मसिंह शर्माके ये शब्द थे—'भाई, ऐसी विभूति तो मैंने कहीं नहीं देखी।'

इस प्रकार कलकत्तेमें पत्रकारिताके साथ-साथ गहन अध्ययन-मनन करने तथा तत्कालीन हिन्दी भाषा एवं साहित्यके प्रकाण्ड पण्डितोंके सान्निध्यमें रहनेका पराड़करजीको अलभ्य अवसर प्राप्त हुआ।

हिन्दी वंगवासी, हितवार्ता और भारतमित्रमें

सन् १९०६में श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर 'हिन्दी-वंगवासी'के सहायक सम्पादक नियुक्त होकर कलकत्ते गये, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। 'हिन्दी-वंगवासी' का उस समय बहुत प्रचार था। पर यह पत्र था प्रतिक्रियावादी नीतिका समर्थक। इस पत्रमें राष्ट्रीय कांग्रेस संस्थाकी खिल्ली उड़ायी जाती थी और उनके नेताओंकी चुटकी ली जाती थी। पराड़करजीको पत्रकी यह नीति बिलकुल पसन्द न थी। उनके विचार राष्ट्रवादी और क्रान्तिवादी थे। फलस्वरूप प्रारम्भमें ही उन्होंने श्री देउस्करजीसे इस पत्रसे सम्बन्ध-त्यागकी बात कही थी किन्तु उनका आदेश मानकर 'हिन्दी-वंगवासी' में काम करते रहे। उन्हीं दिनों कलकत्तेमें राष्ट्रीय शिक्षाके निमित्त बंगाल नेशनल कालेजकी स्थापना हुई जिसके प्रधान थे महर्षि श्री अरविन्द घोष। इस संस्थामें श्री विनयकुमार सरकार, राधाकुमुद मुखर्जी जैसे देश-प्रसिद्ध विद्वान् अध्यापन-कार्य करते थे। पराड़करजीको भी यहाँ अध्यापन-कार्य सौंपा गया। सप्ताहमें दो दिन हिन्दी तथा मराठीकी शिक्षा देने उन्हें जाना पड़ता था। यह बात 'हिन्दी-वंगवासी' के सम्पादकको अच्छी न लगी। फलतः पराड़करजीने इस कट्टर कांग्रेस विरोधी पत्रसे पदत्याग कर दिया। 'हिन्दी-वंगवासी' में पराड़करजीने मुश्किलसे छ महीने सम्पादन कार्य किया।

'हिन्दी-वंगवासी' से पृथक् होनेपर सन् १९०६ में ही पराड़करजीको साप्ताहिक 'हितवार्ता' के सम्पादक पदपर आमन्त्रित किया गया। 'हित-वादी' बंगलाके सम्पादक श्री सखाराम गणेश देउस्कर थे। उन्हींकी प्रेरणा-से हिन्दीमें 'हितवार्ता'का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 'हिन्दी-वंगवासी'में सहायक सम्पादकके पदपर पराड़करजीको पचीस रुपये मासिक वेतन मिलता था। 'हितवार्ता'में सम्पादकके पदपर अब उनकी नियुक्ति चालीस रुपये मासिक वेतनपर हुई। 'हितवार्ता'के सम्पादनके साथ ही बंगाल नेशनल कालेजमें अध्यापन-कार्य भी चलता रहा। 'हितवार्ता'को आपने राजनीति प्रधान पत्र बनाया। इसमें गम्भीर-राजनीति-विषयक लेख प्रकाशित होते थे। उस समयके हिन्दी पत्रोंकी परम्परामें यह सर्वथा नवीन प्रयोग था। आपने सन् १९०७में इस पत्रका भार सँभाला और लगभग चार वर्षोंतक इसका सम्पादन किया। इस पत्रके सञ्चालकोंकी नीति, उसकी स्थिति-विशेष तथा 'भारतमित्र'के सम्पादक पण्डित अम्बिका प्रसाद वाजपेयीके आमन्त्रण एवं आग्रहके कारण पराड़करजीने 'हितवार्ता' से सम्बन्ध त्याग कर दिया और दैनिक 'भारतमित्र'में संयुक्त सम्पादकके पदपर कार्य करने लगे। यहाँ उन्हें साठ रुपये मासिक वेतन मिलने लगा। सन् १९५४में इस सम्बन्धकी चर्चाके प्रसंगमें पराड़करजीने स्वयं बताया कि उस समयके साठ रुपये (क्रयशक्तिमें) इस समयके पाँच-छ सौ रुपयोंके बराबर थे।

यह बात नवम्बर, सन् १९११ की है। उसी साल दिसम्बरमें दिल्ली-दरबारका आयोजन हुआ था। एक सौ पचास वर्षोंके अंग्रेज़ी शासनमें इंगलैण्डका राजा सर्वप्रथम बार भारत आया था। महारानी विक्टोरियाके उत्तराधिकारी सप्तम एडवर्ड और इनके पुत्र पंचम जार्ज प्रिन्स आव वेल्स (युवराज) रूपमें ही भारत आये थे, ब्रिटिश राजाके रूपमें नहीं। बंग भंगके कारण राजनीतिक असन्तोष चारों ओर फैल रहा था और चतुर्दिक् अशान्तिके लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस वातावरणमें भारतवासियोंमें राजभक्तिकी भावना उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे ही दिल्ली-दरबारका आयोजन

किया गया था। इंगलैण्डके राजा पंचम जार्जके दिल्ली-दरबार तथा तत्सम्बन्धी समाचारोंके विषयमें जनताको बहुत उत्सुकता थी। इसी निमित्त 'भारतमित्र'का दैनिक संस्करण प्रकाशित किया गया। दैनिक 'भारतमित्र' कोई दो महीनेतक प्रकाशित हुआ और जनवरी १६१२ में इसका प्रकाशन इस घोषणाके साथ स्थगित किया गया कि आगामी विक्रम नव वर्ष (लगभग दो महीने बाद) से स्थायी रूपसे दैनिक 'भारतमित्र' प्रकाशित होगा। इसी समय पराड़करजी 'भारतमित्र' में आये और उन्होंने पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीके साथ संयुक्त सम्पादकके रूपमें 'भारतमित्र'को सर्वांगसुन्दर तथा लोकप्रिय बनानेमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यह क्रम लगभग चार वर्षोंतक अर्थात् सन् १९१६की १ जुलाईतक चला, जिस दिन पराड़करजी क्रान्तिकारी दलमें कार्य करनेके अपराधमें गिरफ़्तार कर लिये गये और सरकारने उन्हें साढ़े तीन वर्षोंतक बंगाल-बिहारके विभिन्न केन्द्रीय कारागारोंमें नजरबन्द रखा।

दैनिक 'भारतमित्र' में सन् १९१६ में जब पराड़करजी सम्पादन-कार्य करते थे तो उस समय भी उन्हें अध्ययन और लेखनमें काफी परिश्रम करना पड़ता था। वे दिनमें 'भारतमित्र' कार्यालयमें लगभग प्रतिदिन ११ बजे आते और दो घण्टे डाक तथा पत्रादि देखकर लेखन कार्य करते थे। इसके बाद वे रातको ८ बजेके लगभग आ जाते थे और रात्रिभर कार्यालयमें ही रहते थे। रातको आकर वे आवश्यक लेखनकार्य करते थे और दिनमें सहायकोंके कार्यको देखकर पत्रमें प्रकाशनके लिए देते थे। रातमें ८ बजे दो सहायक रायटर तथा असोशियेटेड प्रेसके तारोंका अनुवाद करने आते और रात्रिमें दो बजे तक कार्य करते। पराड़करजी, दो घण्टे कार्य देखकर प्रायः १० बजे रातको विश्रामके लिए (कार्यालयमें ही) चले जाते थे। सहायकोंके तार अनुवादका संशोधन-सम्पादन कर वे उपयुक्त शीर्षक लगाकर 'कम्पोज' के लिए भेज देते थे। रात दो बजेके लगभग वे पुनः उठ बैठते और कार्यालयमें आ जाते थे। वे कम्पोज किये हुए समा-

चारोंको महत्त्वके अनुसार एवं नियत स्थानपर मुद्रणके निमित्त पृष्ठ संख्या तथा कालमका संकेत लिखकर 'मेक-अप' के लिए भेज देते थे। समाचार-पत्रका फोरमैन तदनुसार समस्त समाचारोंको विभिन्न पृष्ठों तथा कालमोंमें 'मेक-अप' कर छापनेके अन्तिम आदेशके लिए पराड़करजीके पास भेज देता। यदि किसी पृष्ठपर समाचारोंकी कमी रहती अथवा 'मेकअप' के बाद स्थान खाली रहता तो पराड़करजीको इसकी सूचना दी जाती थी। वे तत्काल रिक्त स्थानकी पूर्तिके लिए आवश्यक अथवा सुरक्षित लेख-सामग्री दे देते थे।[१]

'भारतमित्र' कार्यालयमें गद्दीपर बैठकर पराड़करजी सम्पादन कार्य करते थे। उनकी तकियाके पीछे एक सन्दूक़ रहती थी। इस सन्दूक़में पराड़करजी निरन्तर लिख-लिखकर सामग्री डालते रहते थे। जब कभी कहीं सामग्री कम पड़ती तो इसी सन्दूक़से लेख-सामग्री निकालकर तत्काल पूर्ति कर देते थे। पत्रके लिए पर्याप्त संशोधित-सम्पादित अथवा लिखित सामग्री वे इस सन्दूक़में रखते थे। अप्रत्याशित संकटके समय भी पत्रके प्रकाशनमें किसी प्रकारकी बाधा उत्पन्न न हो, इसका वे सदा ध्यान रखते थे। उक्त सन्दूक़में सदा इतनी अग्रिम सामग्री तैयार रहती थी जिससे ताज़े समाचारोंके अतिरिक्त समाचारपत्रके अन्य स्तम्भ तथा पृष्ठ एक सप्ताह तक सुपाठ्य एवं सुरुचिपूर्ण लेख-सामग्रीसे युक्त होकर प्रकाशित हो सकते थे। उन दिनों पण्डित अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी व्यवस्था विभागका पूरा भार सँभालते थे। जिस दिन पराड़करजी अस्वस्थ हो जाते उस दिनके लिए उपयुक्त और आवश्यक लेख-टिप्पणी वाजपेयीजी लिख देते थे। 'भारतमित्र' चार पृष्ठोंका पत्र था। इसके

१. सन् १९१६ में 'भारतमित्र' में सहकारी सम्पादक पदपर कार्य करनेवाले (अब काशी-निवासी) श्री पुरुषोत्तम विश्वनाथ पोसरे द्वारा प्राप्त विवरण।

प्रथम पृष्ठपर देशी-विदेशी ताजे तार रहते थे। दूसरे पृष्ठपर लगभग दो कालम अग्रलेख-टिप्पणी तथा अन्य पाठ्य-सामग्री रहती थी। तीसरे पेजपर विज्ञापनादि रहते थे। अन्तिम चौथे पृष्ठपर ही समाचार तथा अन्य सामग्री-के साथ 'छपते-छपते' के लिए भी काफ़ी स्थान छोड़ा जाता था। जिस दिन पत्रके मशीनपर जानेतक कोई आवश्यक अथवा नवीन समाचार नहीं रहता, उस दिन वह स्थान रिक्त ही रहता। चार बजे प्रातःकाल 'भारत मित्र' छपकर तैयार हो जाता था। उस समय यह पत्र लगभग चार हज़ार-की संख्यामें प्रतिदिन छपता था। १ जुलाई, सन् १९१६को पराड़करजीकी गिरफ़्तारीके बाद पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीने प्रबन्धका भार अन्यको सौंप दिया और 'भारतमित्र' के सम्पादनका सम्पूर्ण भार पुनः सँभाल लिया। पराड़करजीकी गिरफ़्तारी और नज़रबन्दीसे दैनिक 'भारतमित्र' के काममें असुविधा हुई। उनकी अनुपस्थितिसे काम बहुत बढ़ गया।[1] वाजपेयीजीके अनुभवसिद्ध हाथोंने 'भारतमित्र'को सँभाल लिया और किसी प्रकारकी कमी पत्रमें नहीं दिखायी दी। वाजपेयीजीने नियमित रूपसे प्रति सप्ताह महासमरके सिंहावलोकनके लेखोंका प्रकाशन-क्रम आगे भी जारी रखा जिसके कारण 'भारतमित्र'की ख्याति बहुत बढ़ गयी थी।

• क्रान्तिकारी दलमें

पराड़करजीमें स्वदेश-प्रेम तथा राष्ट्र-सेवाकी उत्कट भावना उत्पन्न करनेवाली दो घटनाओंका उल्लेख पहले हो चुका है। इनमें एक थी देउस्करजीकी शिक्षा-दीक्षा और दूसरी थी सन् १९०५की बनारस कांग्रेस। बनारस कांग्रेसके सभापति गोखले थे और इसमें पराड़करजीने स्वयं-

---

१. पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : समाचारपत्रोंका इतिहास, पृष्ठ संख्या—३४०।

सेवकके रूपमें कार्य किया था। सन् १९०६ की कलकत्ता कांग्रेसमें भी पराड़करजी सम्मिलित हुए। यहीं दादाभाई नौरोजीने सभापति पदसे प्रथम बार भारतका लक्ष्य—स्वराज्य घोषित किया। इसके पहलेके अधिवेशनोंमें देशमें केवल अपेक्षित सुधारोंकी ही चर्चा हुआ करती थी। काशीमें कांग्रेसके समय लोकमान्य तिलकके दर्शनके बाद कलकत्ता कांग्रेसमें पराड़करजीको पुनः उनके निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। लोकमान्य तिलक पराड़करजीको राजनीतिक कार्योंके लिए अपने साथ ले जाना चाहते थे किन्तु एक बड़े परिवारकी ज़िम्मेदारी उन्हें विवश कर रही थी।

भारतके राजनीतिक रंगमंचपर महात्मा गान्धीके आविर्भाव तथा अहिंसावादके अवतरणके पूर्व राष्ट्रसेवाका आदर्श कुछ और था। उस समय राष्ट्रभक्तोंकी सेवा-साधनाकी कसौटी यह थी कि कौन कहाँतक सशस्त्र राजनीतिक क्रान्तिके साथ संलग्न है। उस समयका राजनीतिक आदर्श था—हाथमें गीता लिये फाँसीके तख्तेपर हँसते हुए चढ़ जाना। ऐसे देशभक्त राष्ट्रकी मुक्तिके साधक माने जाते थे और राष्ट्र उनकी पूजा करता था। दासत्व-शृंखलासे भारतमाताके बन्धन काटनेके लिए जो लोग मार-काटके मार्गपर अग्रसर होते थे वे राष्ट्रभक्तोंमें विशेष सम्मान तथा श्रद्धाके पात्र माने जाते थे। लोकदृष्टिमें राष्ट्र देवीकी उपासनाका एकमात्र पथ था—साहसपूर्वक धैर्यसहित संकटोंका सामना करना तथा समस्त प्रकारके बलिदानोंके निमित्त सदा-सर्वदा प्रस्तुत रहना। इस पथपर चलनेवाले साहसी, वीर, धीर और महान् त्यागी माने जाते थे। ये ही लोग एक प्रकारसे देशके नेता थे।

समाचारपत्रोंके सम्पादक भी मन-ही-मन ऐसा ही मानते थे, यद्यपि लिखते थे बहुत बचकर। पराड़करजीकी उस समयकी पत्रकारिताके पीछे यही भावना काम कर रही थी। सन् १९५४ में अपनी जीवन कथाके संस्मरण सुनाते हुए पराड़करजीने स्वयं बताया था कि कलकत्ता जानेका मेरा मुख्य उद्देश्य पत्रकारिता न थी प्रत्युत क्रान्तिकारी दलमें सम्मिलित

होकर देश-सेवाका कार्य करना था। परिवारका खर्च चलाने तथा पुलिसकी नज़रोंसे बचनेके लिए मैंने 'हिन्दी-वंगवासी' में सहायक सम्पादकका कार्य स्वीकार किया था। 'हितवार्ता' और 'भारतमित्र' के सम्पादनके साथ-साथ चन्द्रनगरकी गुप्त समितिका कार्य भी मैं कर रहा था।

चन्द्रनगरके क्रान्तिकारी दलमें पराड़करजीके सम्मिलित होनेका एक इतिहास है। बाल्यकालमें स्वदेशप्रेमकी शिक्षा देनेवाले पराड़करजीके मामा श्रीदेउस्करजीने ही उन्हें क्रान्तिकारी बननेकी भी दीक्षा दी थी। यह घटना सन् १९०३ की है। काशीके कम्पनी बाग़में स्वर्गीय सखाराम गणेश देउस्करने बाबूराव विष्णु पराड़करके हाथमें गीता और पिस्तौल देकर क्रान्तिकारी दलकी दीक्षा दी। इसके बाद आप चन्द्रनगरकी गुप्त सोसायटीकी कसौटीपर भी खरे उतरे थे। चन्द्रनगर क्रान्तिकारी दलका नियम था कि नया सदस्य जांताके दोनों पाटोंके नीचे अपनी अँगुलियाँ रखकर पाँच बार चलाये, तभी उसकी कष्ट-सहिष्णुता, त्याग और निष्ठाका विश्वास होता था। पराड़करजीने यह सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक किया।[1]

अरविन्द घोषके दलमें

कलकत्तेमें पराड़करजी जहाँ एक ओर प्रकट रूपमें पत्रकारी और उस समयके साहित्य-महारथियोंसे साहित्य एवं शास्त्रकी चर्चा किया करते, वहीं गुप्त रूपसे क्रान्तिकारी दलके कार्यमें भी प्रमुख सहयोग देते। पराड़करजीके मामा श्रीदेउस्करजीके यहाँ क्रान्तिकारियोंकी नित्य बैठकें हुआ करतीं। यहीं पराड़करजीका सम्बन्ध तत्कालीन क्रान्तिकारियोंसे हो गया। आप महर्षि अरविन्द घोष तथा वारीन्द्र घोषके निकट सम्पर्कमें

---

१. यह संस्मरण पराड़करजीके घनिष्ठ मित्र पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदीने नवम्बर, १९५३ में अखिल भारतीय वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके नागपुर अधिवेशनमें सुनाया था।

आये। इस दलका मुख्य कार्यालय चन्द्रनगरमें था। बंगालके नवयुवकोंमें इन दिनों उग्र विचारों एवं क्रान्तिकारी भावनाओंका ज़ोर था। गीता और अरविन्द घोषके व्याख्यान नवयुवकोंको बड़े प्रिय थे। ये दोनों ही देशमें एक नये जीवनका संचार कर रहे थे। देशमें सशस्त्र क्रान्ति कर एवं आतंकवाद द्वारा विदेशियोंको भगाना तथा भारतमाताको स्वतन्त्र करना इनका लक्ष्य था। पराड़करजीका उस समयके प्रमुख क्रान्तिकारियोंसे घनिष्ठ सम्पर्क था। महर्षि श्रीअरविन्द घोषका नेशनल कालेज एक प्रकारसे तत्कालीन क्रान्तिवादियोंका एक प्रधान केन्द्र-सा बन गया था। पराड़करजी इस कालेजमें हिन्दी-मराठीका अध्यापन कार्य करते थे, साथ ही यहाँ उनका क्रान्तिदलवालोंसे भी सम्पर्क होता था। अध्यापनके समय पराड़करजी छात्रोंको फ्रांस तथा रूसी क्रान्तिका इतिहास बताते हुए इस बातपर विशेष बल देते थे कि देशके युवकोंपर भारतमाताकी स्वतन्त्रताका भारी उत्तरदायित्व है। हमारा देश परतन्त्र है। इसे स्वतन्त्र करना चाहिए। महर्षि श्रीअरविन्द घोष पराड़करजीका बहुत ध्यान रखते थे और अपनी शिष्यमण्डलीसे उनका उल्लेख कर बराबर कहते कि देखो—अन्य प्रान्तके हमें यही विश्वस्त सहयोगी मिले हैं। इनसे व्यवहारमें कभी कोई त्रुटि न होने पाये।[1]

पराड़करजीका कलकत्तेमें क्रान्तिकारियोंसे सन् १९०७ के पूर्वसे ही सम्पर्क था। एक ऐसे ही क्रान्तिकारी थे सदाशिवरावजी। ये कोंकण तटके रत्नागिरि ज़िलेके रहनेवाले थे। आयुर्वेद पढ़ने कलकत्ते आये थे। वह क्रान्तिका युग था और वे क्रान्तिकारियोंके बीचमें रहते थे। इसलिए अथवा कारण विशेषसे अपने असली नाम सदाशिव सखाराम पुनालेकरके बदले अपनेको सदाशिवराव स्वयम्भू प्रसिद्ध किया। उन्हें हिन्दीको राष्ट्र-

---

१. पराड़करजीके साथ हजारीबाग जेलमें नज़रबन्द प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री भूपेन्द्रनाथ चक्रवर्तीने लेखकको उक्त बात बतायी।

भाषाके पदपर प्रतिष्ठित करनेका बड़ा आग्रह था। इसीलिए हिन्दीका भी कुछ काम किया करते थे। बँगला पत्रोंमें हिन्दीके पक्षमें कुछ लिखवाना तथा क्रान्तिकारी बंगाली युवकोंको हिन्दी पढ़ाना उन्हें बड़ा प्रिय था। 'स्वयम्भू'जी इसी अज्ञात नाम-ग्रामकी अवस्थामें देउस्करजीके साथ वर्षोंसे रहते थे। वास्तविकता यह थी कि वे सशस्त्र क्रान्तिदलके एक प्रमुख सदस्य थे और ब्रिटिश साम्राज्यका उच्छेद करनेवाली कोई क्रान्तिकारी काररवाई कर ये महाराष्ट्रसे भाग निकले थे। ये इतने कुशल थे कि बड़े-बड़े पुलिस अधिकारी भी इन्हें गिरफ़्तार न कर सके। अनेक वर्षोंके बाद सी० आई० डी० के उच्च अधिकारियोंको पता लगा कि यह व्यक्ति कलकत्तेमें है। तब सी० आई० डी० के शिमला स्थित उच्च अधिकारी रावबहादुर पागे इनकी गिरफ़्तारीका जाल बुनकर इन्हें फँसानेके लिए कलकत्ते आये पर विफल यत्न और हतप्रभ होकर लौट गये।[1] पराड़करजी तथा स्वयम्भूजी दोनों श्रीदेउस्करजीके यहाँ रहते थे और उनमें बहुत घनिष्ठता थी। 'स्वयम्भू' जैसे लोग देउस्करजीको अपना आत्मीय जैसा मानते थे और उनके यहाँ आश्रय पाते थे। उनके पास बंगाल क्रान्तिकारी दलके भी बहुतसे लोग आते थे। उन सभीसे यहीं पराड़करजीका भी सम्पर्क हुआ। विद्याओंके अध्ययन, समाचारपत्रोंके सम्पादन और ग्रन्थ-लेखनके इस गढ़में सशस्त्र राजनीतिक क्रान्तिवाले राष्ट्र-संकल्पकी गुप्त योजनाएँ बनती थीं।

प्रकट रूपमें 'हितवार्ता' तथा 'भारतमित्र'में सम्पादन कार्य करते हुए पराड़करजी गुप्त रूपसे क्रान्तिकारी दलका कार्य करते। 'भारतमित्र' कालीन पत्रकारितामें यह सक्रियता बहुत बढ़ गयी थी। एक ओर पराड़करजी क्रान्तिदलके लोगोंको परामर्श देकर उनका पथ-प्रदर्शन करते

---

१. पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे : पराड़करजी—संस्मरण, 'आज' पराड़कर स्मृति अंक।

और दूसरी ओर सम्पादकके प्रकटरूपमें क्रान्तिकारियोंके विरुद्ध लिखते थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं, यह नीति तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितिमें पुलिस अधिकारियोंकी दृष्टिसे बचकर क्रान्तिकारी आन्दोलनकी व्यापकताके लिए अनिवार्य-सी थी।

क्रान्तिकारियोंको परामर्श

उन्हीं दिनों क्रान्तिकारियोंके एक षड्यन्त्रके मामलेमें गिरफ़्तारियाँ हुई। पुलिसके दबाव तथा प्रलोभनसे उक्त दलका एक सदस्य नरेन्द्र गोसाईं सरकारी गवाह बन गया। अलीपुर जेलमें वह रखा गया था। वहीं उसी षड्यन्त्रके अन्य वन्दी भी थे। इनमेंसे श्रीसत्येन्द्रनाथवसु तथा कानाईलाल दत्तने मिलकर नरेन्द्र गोसाईंको अपने रिवाल्वरका निशाना बनाया। पराड़करजीको इस योजनाका पहलेसे पता था। जेलके भीतर रिवाल्वर कैसे और किसके द्वारा गया, यह क्रान्तिदलसे छिपा नहीं था। नरेन्द्र गोसाईंके सरकारी गवाह बन जानेसे क्रान्तिदलकी सभी योजनाओंके रहस्य खुल जानेकी सम्भावना हो गयी थी। फलतः कानाईलाल दत्तने उसे समुचित दण्ड देनेकी युक्ति सोची। जेलके अधिकारियोंके सम्मुख श्री दत्तने यह कहना शुरू किया कि मुझे तो फाँसीपर लटकना ही है। नरेन्द्र गोसाईं-ने सरकारी गवाह बनकर अच्छा किया। अब तो मैं भी उसी मतका हो गया हूँ। श्रीदत्तमें यह परिवर्तन देखकर जेलके अधिकारियोंने उनसे पूछा कि आपकी अन्तिम इच्छा क्या है? उन दिनों श्रीदत्त ज्वरग्रस्त थे और बहुत कमज़ोर हो गये थे। उन्होंने अधिकारियोंसे यही कहा कि मेरी और कुछ इच्छा नहीं। मौक़ा मिलता तो मैं नरेन्द्र गोसाईंको उसके कार्यके लिए प्रशंसा करता। अलीपुर जेलके अधिकारियोंने देखा कि यदि गोसाईंको श्रीदत्तसे मिलाया जाय तो क्रान्तिदलके समस्त रहस्योंका उद्घाटन करनेमें सहायता मिलेगी। नरेन्द्र गोसाईं सुरक्षाकी दृष्टिसे सेलमेंसे पुलिसके पहरेमें बीमार खाटपर पड़े श्रीदत्तके पास लाये गये। उधर श्रीदत्तके पास एक

बड़े कटहलमें गोलीभरी पिस्तौल क्रान्तिदलवालोंने बड़ी युक्तिपूर्वक पहुँचा दी थी। मौक़ा देखकर श्रीदत्तने कटहलसे पिस्तौल निकाल ली और उसीकी गोलीसे मिलने आते हुए नरेन्द्र गोसाईंको धराशायी कर दिया। नरेन्द्र गोसाईंको गोली मारनेके बाद वे स्वयं गोली मारकर अपनी इहलीला समाप्त कर देना चाहते थे पर निकट खड़े यूरोपियन सार्जेण्टने पीछेसे उनका हाथ पकड़कर विवश कर दिया। पराड़करजीको क्रान्तिदलकी प्रायः सभी बातें मालूम रहती थीं। समय-समयपर क्रान्तिकारी दलके कार्यकर्त्ता उनसे परामर्श करते और उनका बहुत आदर करते थे। अलीपुर जेलमें उक्त गोलीकाण्डपर 'भारतमित्र' में पराड़करजीने एक टिप्पणी लिखी जिसमें हिंसाकार्यकी निन्दा की गयी थी। इसी घटनाके सम्बन्धमें एक अंग्रेज़ी पत्रके सम्पादकने टिप्पणी लिखी जिसमें देशभक्तिके लिए बलिदान होनेवाले उक्त युवकोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की गयी थी और यहाँ तक लिखा कि इन दोनों युवकोंकी मूर्तियाँ बनाकर पूजी जानी चाहिए। स्वाधीन अँगरेज़ यह कहनेका साहस कर सकते थे पर परतन्त्र भारतके सम्पादकके लिए प्रकट रूपसे यह कहना उस समय सम्भव न था। इसीलिए मनमें उक्त घटनासे हर्षित होते हुए भी पराड़करजीने प्रकट रूपसे उसकी निन्दा की। क्रान्तिदलकी उक्त योजनासे परिचित और उसके समर्थक होते हुए भी वे सार्वजनिक रूपमें उससे सहानुभूति नहीं प्रकट कर सकते थे। ऐसा कर, वे न तो क्रान्तिदलमें ही काम कर सकते और न समाचारपत्रों द्वारा राष्ट्रीय जागरणका सन्देश-प्रचार कार्य अग्रसर कर सकते थे। क़ानूनके शिकंजेसे अपने आपको बचाते हुए देशको अपने साथ स्वाधीनताके पथपर अग्रसर किये जाना, तलवारकी धारपर चलने जैसा अत्यन्त कठिन कार्य था। पराड़करजीने यही कार्य अत्यन्त बुद्धिमत्ता और असाधारण कौशलसे किया।

पराड़करजी युगान्तर क्रान्तिकारी दलके सदस्य थे। उसी दलने सरकारी गोला-बारूद और कारतूसकी कई पेटियाँ, जहाज़से माल डकमें लाकर

रखी जानेपर ग़ायब की थीं। ये कार्तूस आदि रोडा कम्पनीके थे। पुलिस-की दृष्टिमें यह राजनीतिक चोरी थी। ग़ायब करनेवालोंका पता गुप्तचर विभागके अधिकारियोंको प्रायः लग भी गया था पर किसीके विरुद्ध कोई प्रमाण न मिला। क्रान्तिदलवाले भी किसी गुप्तचरसे कम सतर्क और सावधान न थे। फलस्वरूप पुलिस किसीपर अभियोग चलानेमें समर्थ न हुई। फिर भी पराड़करजी राजनीतिक संदिग्ध समझे जाने लगे और पुलिस एवं गुप्तचर विभाग उनपर कड़ी नज़र रखने लगा।

नेशनल कालेजमें पराड़करजीका श्रीअरविन्द घोषके क्रान्तिदलसे तो सम्पर्क था ही, उन दिनों कलकत्तेमें महाराष्ट्रके आतंकवादियोंका भी जम-घट था। श्री देउस्करजीका घर इन क्रान्तिकारियोंका एक प्रमुख केन्द्र था। इस दलके साथ (सम्प्रति काशीके सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक) श्री श्रीनिवास शास्त्रीका भी सम्पर्क था, जो उन दिनों कलकत्तेमें संस्कृत तथा आयुर्वेदका अध्ययन करते थे। आपने इन पंक्तियोंके लेखकको बताया कि उस समय हम लोग किस प्रकार पिस्तौल प्राप्त किया करते थे। कलकत्ताके प्रमुख बन्दरगाह होनेके कारण विभिन्न देशोंके जहाज़ निरन्तर आया करते थे। ब्रिजपर इन जहाज़ोंसे सम्पर्क रखनेवाले एजेण्टोंको संकेत कर देनेपर हमें नियत स्थानपर रुपया देनेके बाद पिस्तौल मिल जाया करती थी। विदेशियोंसे पिस्तौल प्राप्त करनेका हमारा यही साधन था। नासिककी क्रान्तिकारी अभिनव भारत संस्थाको एक रिवाल्वरकी आवश्यकता थी। पराड़करजीके परिचित क्रान्तिकारी मित्रका पत्र लेकर उक्त संस्थाका आदमी उनके पास कलकत्ते पहुँचा। पराड़करजीने उक्त संस्थाके लिए पिस्तौलकी व्यवस्था कर दी। बादमें उसी पिस्तौलसे नासिकमें अंगरेज अधिकारी जैकसनकी हत्या हुई। इस सिलसिलेमें गुप्तचर विभागको जाँच-पड़तालके बाद जो सूत्र मिले, उसके आधारपर पराड़करजीके निवास-स्थान-पर पुलिसने अचानक छापा मारनेकी योजना बनायी। जिस दिन तड़के पुलिस सदल-बल आनेवाली थी उसकी पहली रातको १ बजेके लगभग

पराड़करजीकी क्रान्ति समितिके परिचित एक गुप्तचरने उन्हें इसकी सूचना दी। उस समय पराड़करजीके घरमें अनेक पिस्तौल तथा क्रान्तिदलके बहुत-से काग़ज़-पत्र थे। सभी चीज़ें तत्काल हटा दी गयीं। ठीक सबेरे ४ बजे सशस्त्र पुलिसने पराड़करजीके घरको घेर लिया और तलाशी ली। कुछ घण्टे पहले ही सभी चीज़ें हटा दी गयी थीं अन्यथा सभी लोग पकड़े जाते। उस समय कलकत्तेके अनेक प्रभावशाली बंगाली परिवारोंसे पराड़करजीका स्नेह तथा परिचय होनेके कारण ही उक्त तलाशीके पूर्व उन्हें सूचना मिल सकी और वे पुलिसकी गिरफ़्तारीसे बच सके।

श्रीरासबिहारी घोषसे सम्पर्क

प्रख्यात क्रान्तिकारी श्रीरासबिहारी घोषसे भी पराड़करजीका घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्रीरासबिहारी घोष पंजाबमें क्रान्तिदलका प्रचार करने गये थे। वहाँ इन्हींके एक साथीने लार्ड हार्डिजपर बम फेंका। लार्ड हार्डिज बम प्रहारसे हत तो नहीं हुए पर उन्हें काफ़ी चोट आयी। तब पुलिसने श्रीघोषका पीछा किया और वे भागकर बनारस चले आये। पुलिस अधिकारियोंकी नज़रसे बचकर श्रीरासबिहारी घोष उन दिनों बनारसके लक्ष्मीकुण्ड मुहल्लेके निकट मिश्र पोखरामें रहते थे। चन्द्रनगरके क्रान्तिकारी दलके केन्द्रीय कार्यालय तथा पुलिसकी दृष्टिसे बचनेके लिए बनारसमें अज्ञातवास करनेवाले श्रीरासबिहारी घोषके बीच सम्पर्क तथा सन्देश-विशेष पहुँचानेका महत्त्वपूर्ण कार्य पराड़करजी ही सम्पन्न करते थे। आप कलकत्तेमें काम करते थे और काशीमें आपका घर-परिवार था। इसलिए प्रति दो-तीन महीनेमें कलकत्तेसे काशी आना होता था। कहनेको तो वे अपने घर आते थे किन्तु काशी आगमनका मुख्य उद्देश्य होता—क्रान्तिकारी दलके केन्द्रीय कार्यालयका श्रीरासबिहारी घोषको सन्देश पहुँचाना। कलकत्तेकी पुलिस अकसर इस सम्बन्धमें पराड़करजीसे पूछताछ करती और उन्हें अपशब्द भी कहती, पर प्रमाणके अभावमें कुछ न कर पाती। बादमें

जब श्रीरासबिहारी घोष जापान चले गये तो पराड़करजीकी मध्यस्थताकी सारी बातें पुलिसको मालूम हो गयीं।

हत्याके अभियोगमें गिरफ़्तारी

सन् १९१६ में कलकत्तेमें डिपुटी-पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट श्रीबसन्तकुमार मुखर्जीकी हत्या हुई। इस हत्याकाण्डमें पराड़करजीका कोई हाथ न था फिर भी पुलिसने उनको इस ख़ूनके अभियोगमें भारतीय दण्ड विधानकी धारा ३०२ के अन्तर्गत गिरफ़्तार किया। तत्कालीन पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट स्वयं पराड़करजीको गिरफ़्तार करने आये। यह गिरफ़्तारी १ जुलाई, १९१६ को हुई। स्पष्ट प्रमाणके अभावमें पराड़करजीको हत्याके अभियोगसे तो मुक्त कर दिया गया किन्तु वर्षोंसे क्रान्तिकारी दलमें काम करनेका पता पुलिस अधिकारियोंको अच्छी तरह लग चुका था। परिणामस्वरूप पराड़करजी सन् १८१८के तीसरे रेग्यूलेशनके अन्तर्गत राजबन्दी बनाये गये और साढ़े तीन वर्षों तक चन्द्रनगरके निकट महेशकाल टापू, कलकत्तेके अलीपुर केन्द्रीय कारागार, मेदनीपुर केन्द्रीय कारागार, हजारीबाग़ केन्द्रीय कारागार तथा बाँकुड़ा ज़िलेके एक गाँवमें नज़रबन्द रखे गये। कलकत्तेसे बाहर ले जानेके पूर्व पुलिस उन्हें 'दलंदर हाउस'में ले गयी थी जिसका नाम सुनकर लोग काँप उठते थे। यहाँ संदिग्ध अभियुक्तों तथा अपराधियोंको भीषण यातनाएँ दी जाती थीं और गुप्तचर विभागके लोग रहस्य अथवा षड्यन्त्रकी सभी बातोंका पता लगा लेते थे। भारतमाताकी स्वतन्त्रताके लिए प्राणोंको न्योछावर करनेवाले धीर-वीर युवक सब कुछ सह लेते थे, किन्तु अपनी दृढ़ प्रतिज्ञासे कभी विचलित न होते। पराड़करजीने भी यही किया।

जेल जीवनके संस्मरण

पराड़करजीके साथ हजारीबाग़ जेलमें नज़रबन्द प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री भूपेन्द्रनाथ चक्रवर्तीने लेखकको उन दिनोंके संस्मरण सुनाते हुए बताया—

पराड़करजीके साथ हम लगभग २॥ वर्ष हज़ारीबाग़ जेलमें रहे। जेलमें नज़रबन्द ४३ व्यक्तियोंमें ४२ बंगाली थे और अकेले पराड़करजी ग़ैर-बंगाली। पर कभी किसी अवसरपर हममें असहिष्णुताका भाव नहीं उत्पन्न हुआ। सभी कार्य एकमतसे होते थे। एक जो निश्चय करता सभी उसीके अनुसार चलते। मासके अन्तमें जब भत्तेकी रक़म काफ़ी बच जाती थी तो उसकी विशेष चीज़ें मँगवा ली जाती थीं, क्योंकि अगले महीनेके पूर्व उक्त रक़म ख़र्च न की जाती तो ज़ब्त हो जाती थी। प्रत्येक महीनेके अन्तमें प्रायः हज़ार-दो हज़ार रुपये बच जाते। इसका उपयोग करनेके लिए तत्काल कलकत्तेसे सुस्वादु खाद्य पदार्थ मँगाये जाते थे। हममेंसे अधिकांश मछलियाँ मँगाना पसन्द करते थे। ऐसे अवसरपर पराड़करजी कहते थे—'भाई केवल मछलियाँ ही नहीं मँगवाना बल्कि मेरे लिए दो-चार रसगुल्ले भी मँगा लेना।' हमारा उनका कभी मतभेद नहीं हुआ। उनकी उदारता अविस्मरणीय है। हज़ारीबाग़ जेलमें उन दिनों हमें केवल धार्मिक तथा ऐतिहासिक पुस्तकें ही पढ़नेको मिलती थीं। कारलाइलकी 'फ्रेंच क्रान्ति' नामक पुस्तक पढ़नेकी इजाज़त हमें नहीं मिली थी।

एक बार जेलमें कुछ क़ैदी ऐसे थे जो अन्दमान भेजे जानेवाले थे। उनका सन्देश आया कि यदि हम लोग उनकी सहायता करें तो उन्हें जेलसे भागनेका मौक़ा मिल सकता है। हम लोगोंने इसपर विचार किया और निश्चय किया कि उनकी सहायता की जाय। कलकत्तेसे पुस्तककी जिल्दमें लोहा काटनेकी दो दर्जन छोटी आरियाँ मँगायी गयीं। ये तेज आरियाँ देखते-ही-देखते मोटेसे-मोटे लोहेके छड़को बिना किसी आवाज़के काट देतीं। इन्हींसे उन क़ैदियोंकी बेड़ियाँ काटी गयीं और उनके सेलके लोहेके छड़। उनके लिए आवश्यक रुपयोंका भी प्रबन्ध किया गया। नियत समयपर अनेक क़ैदी दीवार लाँघकर भाग निकले। अन्तिम दो क़ैदी जब दीवार फाँद ही रहे थे कि जेल वार्डरने देखा कि सेलमें कोई क़ैदी नहीं है। सबके दरवाजे खुले पड़े हैं और बिस्तरेपर केवल कम्बल पड़े थे। तत्काल खतरेकी

घण्टी बजी और दीवारकी ओर सिपाही दौड़ पड़े। टार्चकी रोशनीमें भागते क़ैदी पकड़ लिये गये। जो पहले भाग चुके थे वे भी दूर न जाकर पासके आमके वृक्षोंमें चढ़कर शेष साथियोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि सभी पकड़ लिये गये। यदि उनमेंसे लोग भिन्न-भिन्न दिशाओंमें निकल जाते तो शायद यह नौबत न आती। उन क़ैदियोंपर बड़ी गहरी मार पड़ी। हम लोगोंपर भी शक किया गया। तलाशी ली गयी। कुछ निकला नहीं। हमारे बार्डके द्वार भी बन्द किये जाने लगे। हम उसी तेज़ आरीके सहारे दरवाज़ेको खोल देते। नित्यका यही क्रम हो गया था। पर हममेंसे कोई भागता न था। पराड़करजी कहते कि हम सब कुछ करें पर हममेंसे कोई भागे नहीं। जेल अधिकारी नित्य हमारी तलाशी लेते पर विफल रहते। कारण उन आरियोंको काम करनेके बाद हम ज़मीनमें गाड़ देते या मल पात्रमें डाल देते थे। वहाँ जेल अधिकारियोंकी नज़र कैसे जाती?

२२ जनवरी, सन् १९५३ को 'आज' कार्यालयमें जब इन पंक्तियों-का लेखक पराड़करजीके सान्निध्यमें सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखता था, उन्होंने अपनी नज़रबन्दीके दिनोंका यह संस्मरण सुनाया—'सन् १९१९ में हमें पूर्वी बंगालके मेदिनीपुरके एक गाँवमें नज़रबन्द किया गया था। वहाँ एक थाना था। हमलोग एक मकानमें रखे गये थे। नियत तिथिको रुपया आ जाता था। हमें गाँवसें घूमने तथा वहाँकी जनतासे सम्पर्क रखनेकी स्वतन्त्रता थी। दिनभरमें एकबार किसी समय हमें थाने हो आना पड़ता था। हमें जो शिकायत होती, वह भी हम कह आते थे। प्रतिबन्ध था तो इस बातका कि हम गाँवकी सीमाके बाहर नहीं जा सकते थे। चिट्ठी-पत्री पुलिसके मार्फ़त होती थी। पुलिस वाले अपनी कठिनाई भी हमसे कहते थे। थानेदार आदि मेरे साथ ताश खेलते थे। उन दिनोंका स्मरण करते हुए सहसा पराड़करजी मुसकुरा पड़े और बोले—उस समय मेरी अवस्था चौंतीस-पैंतीस वर्षकी थी। मेरा स्वास्थ्य निखर आया था। मैं स्वस्थ-पुष्ट

गेहुंआ रंगका हो गया था। मुझे याद नहीं आता कि उस समय जैसा सुन्दर स्वास्थ्य मेरा फिर कभी रहा।'

उस ग्राममें जहाँ पराड़करजी नज़रबन्द थे, पुलिस अधिकारियोंने बहुत प्रयत्न किया कि वे सभी बातोंका पता बता दें और राजनीतिके क्षेत्रसे अलग हो जायँ। इस आश्वासनपर उन्हें रिहा करनेका भी वचन दिया गया। पर साम, दाम, दण्ड और भेदकी उनकी कोई नीति पराड़करजी-पर न चल पायी। बादमें सरकारी अधिकारियोंने उनसे केवल यही आश्वासन चाहा कि वे राजनीतिसे पृथक् हो जायँ। इसपर पराड़करजीने अपनी असमर्थता प्रकट करते यही उत्तर दिया कि मेरा जीवन राजनीतिमें ही गया। वही मेरी रोज़ी है। उसे मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। नज़रबन्दीके कुछ समय पहले ही पराड़करजीका दूसरा विवाह हुआ था। गुप्तचर विभाग वालोंने उन्हें धमकाया कि अब अपनी स्त्रीका मुख कभी न देख सकोगे। उन्हें आशा थी कि इस प्रकारके प्रलोभन और आतंकसे पराड़करजी डिग जायँगे। पर पराड़करजी अपने निश्चय पर अडिग थे।

सन् १९२० में जब सभी बन्दियोंकी आम रिहाई हुई, पराड़करजी भी नजरबन्दीसे मुक्त किये गये। पराड़करजी नज़रबन्दीसे छूटकर जब आये, उस समय पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी 'भारतमित्र' से अलग हो चुके थे और पण्डित लक्ष्मण नारायणजी गर्दे उसके सम्पादक थे। गर्देजीने कलकत्ता आनेपर पराड़करजीका स्वागत किया और उनसे निवेदन किया कि यह स्थान आपका है। आप नहीं थे, इसलिए मैंने अबतक सँभाला। अब आप आइए और अपना काम सँभालिए। गर्देजीके इस स्नेहपूर्ण आमन्त्रणका उत्तर पराड़करजीने उसी हार्दिकतासे दिया और कहा कि आपको भी 'भारतमित्र' में रहना पड़ेगा। आप रहेंगे तभी मैं आऊँगा। इस वार्ताके बाद पण्डित लक्ष्मण नारायणजी गर्देने पत्रमें घोषणा भी कर दी कि पराड़करजी अब 'भारतमित्र' का सम्पादन करेंगे।

• राष्ट्रीय दैनिक 'आज'का सम्पादन

साढ़े तीन वर्षके कारावासके बाद जब जनवरी, १९२० ई० में पराड़कर-जी बनारस आये, तो उस समय उनका नाम पत्रकारी-क्षेत्रमें तो प्रसिद्ध हो ही चुका था, उनकी त्याग-तपस्या तथा देशभक्ति भी प्रख्यात हो चुकी थी। उन्हीं दिनों बाबू शिवप्रसादजी गुप्त संसारका भ्रमण कर स्वदेश लौटे थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि हिन्दीमें ऐसा दैनिक पत्र प्रकाशित किया जाय जो 'लन्दन-टाइम्स'के समान प्रभावशाली हो। हिन्दीमें उच्चकोटिके साहित्य प्रकाशन तथा दैनिक पत्र निकालनेके उद्देश्यसे आपने ज्येष्ठ, संवत् १९७६ (१९१९) में दुर्गाकुण्ड स्थित 'गुरुधाम'में ज्ञानमण्डलकी स्थापना की। पराड़करजीके काशी आनेपर बाबू शिवप्रसाद गुप्तने उन्हें अपनी योजना बतायी और आत्मीयताका भाव प्रकट करते हुए आग्रह-पूर्ण शब्दोंमें कहा—'अब आप काशीसे नहीं जायँगे।' श्रीगुप्तजी तथा श्री श्रीप्रकाशजीने पराड़करजीसे 'आज'की रूपरेखा प्रस्तुत करनेको कहा। पराड़करजी श्रीशिवप्रसादजी गुप्त तथा श्रीप्रकाशजीका आग्रह टाल न सके। १ मार्च, सन् १९२०को पराड़करजी 'ज्ञानमण्डल'में आ गये और 'आज'के प्रकाशनकी योजना बनने लगी। दैनिक 'आज'के प्रकाशनके निमित्त रजिस्टर आदि बनवानेका प्रारम्भिक संघटनात्मक कार्य पराड़करजी-के परामर्शानुसार ही हुआ। 'आज'के प्रकाशनकी योजना पराडकरजीने बनायी और उसका अन्तिम स्वरूप लोकमान्य तिलक, डाक्टर भगवान-दासजी, श्रीशिवप्रसादजी गुप्त, श्री श्रीप्रकाशजी तथा पराड़करजीके विचार-विमर्शके अनन्तर स्थिर किया गया।

सन् १९२०, मईके प्रथम सप्ताहमें पराड़करजी लोकमान्य तिलकका दर्शन करने तथा 'आज'की नीतिके सम्बन्धमें परामर्श लेनेके लिए पूना गये। लोकमान्य तिलकसे आपकी यही अन्तिम मुलाक़ात थी। इस प्रकार पराड़करजीको जीवनमें तीन बार लोकमान्य तिलकके दर्शन एव सम्पर्कका

सौभाग्य प्राप्त हुआ। सर्व प्रथम सन् १९०५ में बनारस काँग्रेसमें, फिर सन् १९०६ की कलकत्ता काँग्रेसमें दूसरी बार उन्हें लोकमान्य तिलकके दर्शन हुए। लोकमान्य तिलकसे उनका वास्तविक परिचय श्रीदेउस्करने करा दिया। उस समय तो लोकमान्य उन्हें राजनीतिक कार्यके निमित्त अपने साथ ले जाना चाहते थे। अन्तिम बार सन् १९२०में जो मुलाक़ात हुई, उसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। लोकमान्य तिलकसे ये तीनों मुलाक़ातें पराड़करजीके जीवनमें अत्यन्त प्रेरणामय सिद्ध हुईं। पराड़करजीका जीवन और उनकी सम्पादकीय नीति लोकमान्य तिलकसे कितनी प्रभावित थी, इसका सहज अनुमान इससे किया जा सकता है कि वे तिलकको अपने गुरुका गुरु मानते थे। पराड़करजीके गुरु थे श्रीसखाराम गणेश देउस्कर। इन्हींसे उन्हें स्वदेश-प्रेम तथा पत्रकारिताकी दीक्षा मिली थी। श्रीदेउस्करजी बंगालके तिलक थे और लोकमान्य तिलकको वे अपना गुरु मानते थे। इस प्रकार लोकमान्य तिलकका राजनीतिक आदर्श पराड़करजीके जीवनका आदर्श बन गया।

'आज' का नामकरण

'आज' के जन्मके पूर्व उसकी स्थापना तथा प्रकाशनकी योजनाके निमित्त प्रसिद्ध दार्शनिक डाक्टर भगवानदासजीके यहाँ गोष्ठियाँ होतीं। डाक्टर भगवानदास, श्री शिवप्रसाद गुप्त, श्री श्रीप्रकाश, पराड़करजी तथा अन्य एक-दो सज्जन इस विचार-विमर्शमें सम्मिलित होते। ऐसी-ही एक गोष्ठीका संस्मरण श्रद्धेय डाक्टर भगवानदासजीके शब्दोंमें इस प्रकार है—

८६ वर्ष पूरे हो गये हैं, अतः ठीक नहीं कह सकता कि श्रीपराड़करजीसे कब प्रथम बार जान-पहचान हुई। प्रायः जब 'आज' का जन्म हुआ, तभी-से। ऐसा स्मरण होता है कि सन् १९२० की ग्रीष्म ऋतु थी। 'सेवा-श्रम' नामक स्थानमें मैं उस समय दोनों पुत्रोंके और परिवारके साथ रहता था। एक दिन संध्या समय श्रीशिवप्रसाद गुप्तजी आये। मैं बाहर चबूतरेपर

बैठा था। श्रीप्रकाशजी भी थे। एक-दो सज्जन और थे। शिवप्रसादजीने कहा कि मैं काशीसे एक हिन्दी दैनिक निकालना चाहता हूँ। आगामी जन्माष्टमीको उसका भी जन्म हो। क्या नाम रखा जाय?—उन्होंने मुझसे पूछा।

'युगसन्धि'—मैंने कहा।

श्रीप्रकाशजीने कहा—'आज'।

शिवप्रसादजी तथा अन्य सज्जनोंने भी इसीको अच्छा जाना। मुझे भी विचार अच्छा जान पड़ा। यही निर्णय हुआ। ब्रिटिश राज्यकी राजधानी मानव जगत्के बृहत्तम नगर लन्दनके प्रसिद्धतम दैनिकका नाम 'टाइम्स' है। इस शब्दका आशय भी वही है—अर्थात् 'आज काल'—आजके समयमें, क्या हो रहा है उसका समाचार।

छापनेका क्या प्रबन्ध हो?

मैंने सूचना की कि काशीमें कई छापाखाने हैं, उन्हींमेंसे जो सबसे अच्छा समझा जाय उसमें छापा जाय।

शिवप्रसादजीने कहा—'छापाखाना अपना-ही होना चाहिए।'

बहुत अच्छा। यन्त्र कहाँ रखे जायँ? भेलूपुर चौमुहानी और दुर्गाकुण्ड-के बीचमें, कलकत्ताके 'घोषाल' वंशका 'गुरुधाम' नामक बहुत बड़ा उद्यान और बहुत बड़ी कोठी है। उसीमेंसे एक भाग बड़े कमरोंका, किरायेपर लिया गया, यन्त्र खरीदे गये और वहाँ रखे गये। शिवप्रसादजी-को अपने वासस्थान 'सेवा उपवन' से श्रीप्रकाशजीसे परामर्श करने वहाँ जाना सहज था।[१]

---

१. डाक्टर भगवानदास : श्रीबाबूराव विष्णु पराड़करजी, 'आज' पराड़कर स्मृति अंक।

श्री शिवप्रसादजी गुप्तके पत्र

इस प्रकार श्री शिवप्रसादजी एक ओर श्रीप्रकाशजी तथा दूसरी ओर पराड़करजीसे 'आज'के प्रकाशन तथा सम्पादकीय प्रबन्धकी वार्ता करते थे। अन्तिम निर्णय वे श्रीप्रकाशजीकी सम्मतिके बिना नहीं करते थे। २९ फरवरी, १९२० को श्री शिवप्रसादजीने पराड़करजीको पत्र लिखा—'प्रिय महाशय, आप कृपाकर कलसे ज्ञानमण्डल कार्यालय गुरुधाममें आना प्रारम्भ कीजिए। कार्यालय १०से ४ बजे तक रहता है। मैं वहाँ बाबू प्यारेलाल भार्गव मैनेजर यन्त्रालयको सूचना दे रहा हूँ। वे आपके बैठने आदिका सब प्रबन्ध कर देंगे। कामके बारेमें बाबू श्रीप्रकाशजी आपको सब बतलायेंगे। एक रोज़ आप उनसे मिलकर परामर्श ले लीजिएगा। भवदीय—**शिवप्रसाद गुप्त।** इस प्रकार पहली मार्च, सन् १९२० से पराड़करजी ज्ञानमण्डलमें कार्य करने लगे और मईमें लोकमान्य तिलकसे परामर्श करने गये, जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। जब सब लोगोंसे विचार-विमर्श कर पराड़करजी-ने 'आज' की योजना प्रस्तुत कर ली तो एक जुलाई सन् १९२० को एक नयी योजना सामने आयी। इसके प्रस्तावक थे प्रोफेसर पंढरीनाथ काशीनाथ तैलंग। उनकी योजना थी कि कम्पनी दो-तीन लाख रुपयोंकी बनायी जाय। उनका सुझाव था कि प्रधान सम्पादकीय भार ऐसे व्यक्ति-को सौंपा जाय जिसे युरोपका अनुभव हो और उच्च श्रेणीके सम्पादक-गण उनके सहयोगके लिए रखे जायँ। रायटर आदिके समाचारों द्वारा पत्र ऐसी उच्चकोटिका बनाया जाय जिससे पाठकको अँगरेज़ी दैनिक पत्र पढ़नेकी आवश्यकता न पड़े। उनका विचार श्री श्रीप्रकाशजीको प्रधान सम्पादक बनानेका था।

शिवप्रसादजीने तैलंगजीकी उक्त योजना, अपनी स्वीकृति सहित ६ जुलाईको पराड़करजीके पास भेजी और लिखा 'मुझे आशा है आपको यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार होंगे। हमलोग मिलकर इस पत्रको ऐसा उच्च-

कोटिका बनायेंगे कि हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेका दावा सफल हो।' पराड़करजीने शिवप्रसादजीके इस प्रस्तावको अस्वीकार करते हुए कार्य-मुक्त करनेके लिए पत्र लिखा। उसपर भी जब श्रीप्रकाशजीने उनके पास 'आज' की स्थापनाकी घोषणाका विज्ञापन देखनेको भेजा तथा जब पराड़करजीको विश्वास हो गया कि श्री शिवप्रसादजी तथा श्रीश्रीप्रकाश-जी दोनों ही नहीं छोड़ना चाहते तो ११ जुलाईके पत्रमें श्री शिवप्रसादजी-को लिखा—'× × × आपका अनुरोध टाल नहीं सकता। अतएव आपलोगोंका नवीन प्रस्ताव स्वीकार करता हूँ, परन्तु यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि 'आज' से मेरा सम्बन्ध तभी तक रहेगा जबतक वह राजनीतिमें अग्रसर तथा धार्मिक और सामाजिक विषयोंमें सम्पादकीय तौरपर उदासीन रहकर सब प्रकारके मतोंके बाहरसे आये हुए लेखोंको उसमें बिना पक्षपातके स्थान मिलता रहेगा। नीतिकी यह एक बात छोड़-कर और सब विषयोंमें आजसे मुझे अपना सेवक समझिए।' शिवप्रसादजीने उसीदिन पराड़करजीको आश्वासन देते हुए इस पत्रका उत्तर भेजा—'मैं इसके लिए आपका बाधित हूँ कि आपने मेरे कहने और खयालसे 'आज' के सम्पादनमें बाबू श्रीप्रकाशजीकी सहयोगितामें काम करना सहर्ष स्वीकार किया है। मैं आपसे वादा करता हूँ कि जबतक मेरा सम्बन्ध इस पत्रसे रहेगा तब तक मैं कोई ऐसी बात नहीं होने दूँगा जिससे आपकी मानहानि हो या आपको किसी प्रकार हानि उठानी पड़े। आप और बाबू श्रीप्रकाशजी मिलकर पूर्ण विश्वाससे काम करेंगे।'

श्री श्रीप्रकाशजीका पत्र

१२ जुलाई १९२० को श्रीप्रकाशजीने अपने प्रथम और विस्तृत पत्रमें पराड़करजीसे सहयोग प्रदान करनेका अनुरोध करते हुए इस प्रकार हृदयो-द्गार प्रकट किये—प्रिय पराड़करजी, शारीरिक कष्टके कारण मैं आपसे अबतक अपने हृदयके भाव न कह सका। मेरे हृदयकी आन्तरिक इच्छा

है कि आपको मेरे कारण आन्तरिक या किसी अन्य प्रकार का कष्ट न होने पावे। जिस रोज़ यहाँपर गोष्ठी हुई थी उस रोज़तक मेरे सम्पादक होनेकी बात भी न थी। मैंने आपका नाम कितने ही वर्षोंसे सुन रखा था। राष्ट्रीय कार्यमें आप दुःख भी सह चुके हैं। हिन्दी समाचारपत्रके दैनिक रूपके तो आप जन्मदाता ही हैं। आपके यहाँपर आकर दैनिक-पत्रके सम्पादन करनेकी ख़बर जब बहुत दिन हुए शिवप्रसादजीने मुझे दी तो मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ और मुझे पूरी आशा हुई कि काशीका पत्र सफल हो जायगा। मैं यह सब शुद्ध और सत्य भावसे लिख रहा हूँ। आपने इतना परिश्रम करके पत्रके आरम्भकी भी सब बातें स्थिर की हैं। इतना हो जानेपर जब गोष्ठीके दूसरे रोज़ तैलंग साहब यहाँ आये और उन्होंने कहा कि पत्रका सम्पादन तुम करो तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे लाख कहा कि पराड़करजी आ गये हैं, उन्होंने सब स्थिर कर लिया है, सब प्रकारसे वे योग्य हैं और मैं सर्वथा अयोग्य हूँ, उन्हें अनुभव है, मुझे नहीं; उनका नाम है, मेरा नहीं; इत्यादि-इत्यादि लेकिन उन्होंने न माना।....

मुझे अब यह प्रार्थना करनी है। चाहे यह सब प्रबन्ध जो हुआ है सो अच्छा हो या ख़राब, अब आपको और मुझको परस्पर शुद्ध और स्नेह भाव-से काम करना चाहिए ताकि पत्र सफल हो। यदि मेरी ओरसे कभी भी ऐसा व्यवहार हो जिससे आपको व्यक्तिगत कष्ट हो तो उसका जिम्मेदार मैं हूँ और मेरी प्रार्थना है कि निस्संकोच आप मुझसे सब बातें कहेंगे ताकि मैं अपनी त्रुटियाँ दूर करूँ। मैं आपका जो हार्दिक सम्मान करता हूँ उसमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ सकता। मैं इस सबका आपको शुद्ध हृदयसे विश्वास दिलाता हूँ। आशा है कि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। मैं यह सब विशेषकर इसलिए कहता हूँ कि मुझे पूर्ण आशा है कि कुछ दिन पीछे मैं शिवप्रसादजी और तैलंग साहबसे कह सकूँ कि अन्य कार्योंके कारण मैं पत्रका सम्पादन नहीं कर सकता और

अब यह कार्य पराड़करजीके ही सुपुर्द किया जाय। इस कहनेसे आप कदापि यह न समझिएगा कि मैं लालच दिला रहा हूँ। मैं ऐसा कदापि कहनेका साहस नहीं कर सकता। मेरी प्रार्थना यही है कि किसी कारण रुष्ट या अप्रसन्न होकर आप चले न जाइएगा। नहीं तो किश्ती अवश्य डूब जायगी। मैंने अपने मित्रोंसे स्पष्ट कह दिया है कि मेरा अकेला चलाया यह काम नहीं चल सकता और आप लोगोंको पराड़करजीको हर प्रकारसे पकड़ रखना ही होगा।

'नीति' के विषयमें प्रायः राजनीतिक मामलोंमें आपका मेरा भेद न होगा। झिझीरापन, व्यक्तिगत आक्रमण आदि आप भी नहीं चाहते मैं भी नहीं चाहता। सब मतोंके प्रकाशनकी सुविधा आप भी चाहते हैं, मैं भी चाहता हूँ। सब संकटके मामलोंपर आप और मैं साथ विचारकर मत स्थिर करेंगे। प्रायः सामाजिक विषयोंमें आपका और मेरा विरोध होगा। इस सम्बन्धमें सम्पादकीय लेखोंमें कुछ न लिखा जायगा। अपने हस्ताक्षरसे मैं अन्य स्थानोंपर ऐसे लेख छापूँगा क्योंकि मैं हृदयसे विश्वास करता हूँ कि भारतमें राजनीतिके अतिरिक्त अन्य विभागोंमें सुधारकी बड़ी आवश्यकता है जिसके कारण हमपर पराधीनताकी बेड़ी लगी। सम्भव है कि मैं इसमें ग़लती करता हूँ। इसमें मतभेद अवश्य है और मेरी रायका खण्डन आप अवश्य करें और अपने लेख भी सम्पादकीय-इतर स्थानोंमें छापें। आशा है, कि इसमें आपको कोई आपत्ति न होगी। आप मुझे स्नेहसे अपना सहयोगी बनाकर इस कार्यको सम्हालिए और सफराइएगा।'

आपका स्नेहभाजन—**श्रीप्रकाश**

पराड़करजीका उत्तर

पराड़करजीने इस पत्रका जो उत्तर १२ जुलाई, १९२० को श्री-प्रकाशजीके पास भेजा, वह इस प्रकार है—'आपका पत्र पढ़कर आपके चित्तकी महानुभावता और सरलताका ही परिचय मिलता है। आपने मुझसे

मिलनेके लिए जिस प्रेमसे बाहें पसारी हैं, मैं भी आपसे उसी प्रेमसे मिलनेके लिए उत्सुक हूँ। आशा है, हमारे इस प्रेमकी दिन-दिन वृद्धि होगी तथा हमारा परिचय ज्यों-ज्यों बढ़ेगा त्यों-त्यों हम लोग परस्पर अधिकाधिक चाहेंगे और हमारे बीच मनोमालिन्यको उत्पन्न होनेका भी अवसर न मिलेगा। आपके साथ अथवा आपसे मिलकर काम करने में मुझे व्यक्तिगत कोई आक्षेप नहीं है। जिस दिन श्रीमान् बाबू शिवप्रसादजीने मुझसे आप लोगोंके दैनिक पत्रका सम्पादन करनेका अनुरोध किया उसी दिन मैंने आपसे स्पष्ट निवेदन कर दिया था कि मैं किसीकी अधीनतामें कार्य करना स्वीकार न करूँगा। आपने मेरा यह हठ मान लिया था। इसके बाद एक महानुभाव सज्जनने 'आज'के सम्पादकमें कुछ ऐसे गुणोंका होना आवश्यक बताया जो न मुझमें हैं न मैं उनके होनेका दावा ही करता हूँ। मैं तो कहता हूँ कि अध्यापक तैलंग महोदयका अनुरोध उचित ही था तथा उसे स्वीकार करना आपका कर्त्तव्य ही था। इससे यही सिद्ध होता है कि वर्तमान अवस्थामें आप लोगोंकी उद्देश्य-सिद्धिके लिए योग्य व्यक्ति मैं नहीं हूँ। इसलिए मैंने भी सरल चित्तसे ही श्रीमान् बाबू शिवप्रसादजीसे प्रार्थना की थी कि मुझे कार्यसे अलग होनेकी अथवा अन्ततः इस प्रकारसे कार्य करनेकी अनुमति दें जिससे मेरा नाम सर्वसाधारणमें प्रकट न हो। इसमें न क्रोध था न आपके प्रति द्वेष। केवल अपने भविष्यके विचारसे ही मुझे यह प्रस्ताव करना पड़ा था, दुःखका विषय यही है कि इसपर ध्यान नहीं दिया गया। आप लोगोंका प्रेमबन्धन तोड़नेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ पाकर निरुपाय मुझे आप लोगोंकी ही बात माननी पड़ी। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। यदि आप लोग मेरी निराश्रित अवस्थापर पुनः विचार कर बिना नाम प्रकट किये मुझे 'आज' की सेवाका अवसर दें तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा। वैसे भी मैं आप लोगोंको आत्मसमर्पण करनेके लिए प्रस्तुत हूँ और कर भी चुका हूँ। मुझे आपके विरुद्ध व्यक्तिगत कोई आक्षेप न रहा, न रहेगा। आपकी उदारताका

अनुकरण करना ही मेरी आन्तरिक चेष्टाका विषय बना रहेगा।' सप्रेम, भवदीय—बाबूराव विष्णु पराड़कर।

श्री शिवप्रसाद गुप्तका आश्वासन

पराड़करजीके असन्तोषको दूर करने तथा उन्हें पूर्णतया आश्वस्त करनेके लिए श्री शिवप्रसादजी गुप्तने भी ३० अगस्त, १९२०को उन्हें सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए यह पत्र लिखा—'जिस समय आपसे मामूरगंजके बाग़में मुलाक़ात हुई थी और पहले पहल आपसे मैंने दैनिककी चर्चा चलायी थी तो आपने मुझसे कहा था कि आप साहित्य-विषयमें स्वतन्त्ररूपसे काम करना पसन्द करेंगे। मैंने उत्तर दिया था कि इस सम्बन्धमें आप केवल श्रीयुत् श्रीप्रकाशजी और मेरे अधीन होंगे और किसी अन्यको इसमें दखल नहीं होगा। इसे आपने सहर्ष स्वीकार किया था। हमारा और श्री श्रीप्रकाशजीका कितना घना सम्बन्ध है उसका पूरा अनुभव कदाचित् अभी आपको नहीं हुआ होगा। हम लोग सगे भाइयोंसे भी अधिक प्रेम आपसमें रखते हैं। ऐसी अवस्थामें गो मैं जानता था कि श्रीप्रकाशजीको दैनिकमें बहुत काम करना पड़ेगा तिसपर भी उस समय न तो पत्रको इतना बढ़ानेकी ही इच्छा थी और न मैं श्रीप्रकाशजीसे यही कहनेका साहस कर सकता था कि वे वैतनिक कर्मचारी इस पत्रके हों। इसलिए इसकी चर्चा उस समय नहीं हुई, न मैं यही कर सकता था कि उनके उपयुक्त उन्हें पुरस्कार देता।

इधर जब तैलंग महाशयने इस कार्यमें मेरा हाथ बटाना स्वीकार किया तो उन्होंने दो शर्तें मुझसे करनी चाही—(१) कि यह पत्र एक उच्चकोटिका बनाया जाय। (२) कि बाबू श्रीप्रकाशजी इसके मुख्य सम्पादक हों और उन्हें पाँच सौ रुपये मासिक दिया जाय। मैंने पहली शर्त और दूसरी शर्तका उत्तरार्ध स्वीकार किया। और पूर्वार्धके बारेमें जो बातें आपसे हो चुकी थीं उसका ज़िक्र उनसे किया। जब यह बातें

बाबू श्रीप्रकाशजीसे तैलंग महोदयने कही तो उन्होंने सम्पादक होना स्वीकार किया किन्तु उन्होंने स्वयं पाँच सौ रुपये मासिक लेनेसे इनकार कर दिया और इसका यह कारण बताया कि इससे आपके पुरस्कार और उनके पुरस्कारमें बड़ा भेद पड़ जायगा जो उचित नहीं होगा। यह उनकी नितान्त सौजन्यता और भलमनसी है। गो कि इस समय भी उन्हें इण्डिपेण्डेण्टवाले अधिक वेतनपर बुला रहे हैं, पर वे हिन्दीके नाते जाना नहीं चाहते।

थोड़े दिन ही साथ काम करनेसे उनको आपकी और आपको उनकी मिलनसारी, सौजन्यता, योग्यता, हिन्दी-प्रेम, देश-सेवाके भाव आदिका पता लग गया है। और मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप दोनों सज्जन मिलकर बड़ी अच्छी तरहसे काम करेंगे और हिन्दी और देशकी सेवामें अग्रसर होंगे और आपलोगोंको कभी भी कोई शिकायतका मौक़ा एक दूसरेसे नहीं होगा। मैं अपनेको आप दोनों सज्जनोंका सुहृद् समझता हूँ और योग्यता न होनेपर भी जो कुछ मेरे पास है उसके द्वारा आपलोगोंके साथ मिलकर देश सेवामें लगना चाहता हूँ। ईश्वर हमलोगोंकी इच्छा पूर्ण करे।

विनीत—**शिवप्रसाद गुप्त**

पराड़करजीके मनमें यह बात बहुत खटकती थी कि उन्हें 'आज'का सम्पादन-कार्य किसीकी अधीनतामें करना पड़े। इसका कारण यह भी था कि उस समय सर्वसाधारणमें यह बात प्रकट हो चुकी थी और एक-दो समाचारपत्रोंने इस आशयके समाचार भी प्रकाशित कर दिये थे कि पराड़करजी ही 'आज' का सम्पादन करेंगे। इसके अतिरिक्त इसी कार्यके निमित्त पराड़करजीने 'भारतमित्र' के सम्पादक रूपमें जाना अस्वीकार कर दिया और इस प्रकार उन्हें उसके संचालकोंको एकबार वचन देकर भी भंग करना पड़ा। ये बातें उनके हृदयको कष्ट दे रही थीं किन्तु श्री शिवप्रसादजी गुप्त तथा श्री श्रीप्रकाशजीसे हुए पत्राचार और उनके

आग्रह-आश्वासनके फलस्वरूप उन्होंने श्रीप्रकाशजीके साथ संयुक्त सम्पादकके रूपमें कार्य करना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार श्री श्रीप्रकाशजी तथा पराड़करजीके संयुक्त सम्पादनमें १९७७ वि० कृष्णाष्टमी, ५ सितम्बर सन् १९२० को 'आज' का प्रकाशन हुआ।

'आज' का प्रकाशन

पराड़करजी मई, १९२० में लोकमान्य तिलकसे आशीर्वाद और परामर्श लेने गये थे और संयोगसे १ अगस्त, १९२० को लोकमान्यका निधन हो गया। अतः ५ सितम्बर, सन् १९२० (संवत् १९७७ की कृष्णाष्टमी) को जब दैनिक 'आज' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तो 'आज' के प्रथमांकमें 'लोकमान्य' को श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए पराड़करजीने लिखा—'आज' के पहले ही अंकमें लोकमान्य बालगंगाधर तिलककी मृत्युपर शोक-प्रकाश करनेका अवसर उपस्थित हुआ है इससे बढ़कर दुःखजनक विषय हमारे लिए और क्या हो सकता है। आपकी मृत्युसे भारतवर्षकी जो भीषण हानि हुई है उसका परिचय शब्दोंमें नहीं दिया जा सकता। वर्तमान कठिन राजनीतिक समयमें तो प्रतिपदपर देशके नेता लोकमान्यके अभावका परिचय पा रहे हैं। आपकी राजनीतिक दूरदर्शिता, दृढ़ प्रतिज्ञा तथा अगाध देशभक्तिके उपयोगोंसे देश वंचित हो चुका है पर उनका उज्ज्वल उदाहरण हमारे सम्मुख है। हम अपनी क्षुद्र शक्तिके अनुसार आपके दिखाये मार्गसे चलनेका प्रयत्न करेंगे। यही कहना इस अवसरपर अलम् होगा।[1] इसी लेखमें पराड़करजीने 'आज' की नीतिके सम्बन्धमें लोकमान्य तिलकसे हुए परामर्शका उल्लेख करते हुए लिखा—'आज' की जो नीति निर्धारित की गयी है, उससे स्वर्ग-

१. दैनिक 'आज': अग्रलेख, ५ सितम्बर, १९२० (सौर २० भाद्रपद १९७७)।

वासी लोकमान्य तिलककी पूर्ण सहानुभूति थी। लोकमान्यका दर्शन करने तथा पत्रकी नीतिके सम्बन्धमें आपके उपदेश लेनेके लिए इसका लेखक गत सौर ज्येष्ठ मासके अन्तमें पूना गया था। उस समय 'आज' की नीतिके सम्बन्धमें आपसे बहुत कुछ बातें हुई थीं। लोकमान्यका सबसे प्रधान उपदेश यही था कि स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करो, लोगोंको उनके स्वाभाविक अधिकार समझा दो तथा धर्मतः कर्त्तव्य-पालन करते हुए भी यदि विघ्न उपस्थित हो तो उसकी परवाह मत करो और ईश्वरके न्यायपर विश्वास रखो। इसी उपदेशका पालन करना हमारे जीवनका उद्देश्य होगा।[1]

इस प्रकार दैनिक 'आज' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और इसके साथ ही प्रारम्भमें हिन्दी दैनिक पत्र प्रकाशनकी विविध कठिनाइयाँ भी सामने आयीं। उस समय दैनिक पत्रका काम जानने और समझनेवाले विभिन्न कार्यकर्त्ताओंका पूर्णतः अभाव था। फलस्वरूप 'आज' के प्रकाशनके पूर्व उसके तीन 'डमी' अंक निकालकर सभी बातें और कार्यपद्धति लोगोंको समझायी गयी। पराड़करजीने तथा श्रीप्रकाशजीने अपने अनुभवोंके आधारपर पत्रका संघटन किया। कलकत्तेमें पत्रकारिताके दस वर्षके अनुभवोंके आधारपर पराड़करजीने 'आज' के निर्माण तथा उसे सर्वांगसुन्दर बनानेके लिए रात-दिन अत्यधिक परिश्रम किया। 'आज' का प्रारम्भिक अंक तो आठ पृष्ठका निकला किन्तु बादमें अनेक अड़चनोंके कारण कुछ समय तक छह पृष्ठका ही प्रकाशित हुआ। जब असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ तो समाचारोंकी अधिकताके कारण 'आज' पुनः आठ पृष्ठका निकलने लगा। इन दिनों सबसे अधिक कार्य पराड़करजीको ही करना पड़ता था। आप नमक और पानी पी-पीकर सारी रात लिखा करते

१. वही।

थे।[१] श्री श्रीप्रकाशजी लेख तथा तारोंका मेक-अप करानेके लिए नित्य सबेरे तड़के चार बजे आते थे। पराड़करजी टिप्पणियाँ लिखते तथा तारोंके अनुवादके साथ डाक सम्पादनका भी कार्य करते थे। बादमें सम्पादकीय विभागका काम बाँटा गया जिससे कठिनाइयाँ कुछ कम हुईं।

कुछ ही महीनोंके बाद पराड़करजी अपनी स्वतन्त्र नीतिके अनुरूप तथा सम्भवत: मनोनुकूल व्यवस्थाके अभावमें, अपने उत्तरदायित्वका वहन करनेमें अपनेको असमर्थ पाने लगे। फलतः आपने सम्पादकीय दायित्वसे पृथक् हो जाना ही उचित समझा। बाबू शिवप्रसादजी, पराड़करजीको किसी प्रकार छोड़ना नहीं चाहते थे। अतः सौर २६ माघ, १९७७ (सन् १९२१) को उन्हें निम्नलिखित शर्तोंके अनुसार 'आज' का विशेष लेखक नियुक्त किया गया। इस पत्रमें ये शर्तें थीं—(१) इस पत्रके द्वारा पराड़करजीका पत्रके सम्पादन तथा उत्तरदायित्वसे सम्बन्ध न रहेगा। (२) आप 'आज' के विशेष लेखक नियुक्त किये जाते हैं। (३) आपको १५०) मासिक पुरस्कार मिलेगा और चार कालम प्रति दिन लिखना होगा। लेख लिखनेमें आपको पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी। जो लेख पत्रकी नीतिसे न मिलेगा अथवा विरुद्ध होगा वह आपके नामसे प्रकाशित होगा अथवा न छापा जायगा। (४) निम्न लेख लिखकर दे देनेसे ही पराड़करजीका कर्त्तव्य पूरा हो जायगा। वह छापा जाय अथवा न छापा जाय। (५) प्रति दिन कमसे कम एक घंटेके लिए आपको कार्यालय आना होगा जहाँ आपके लिए पृथक् स्थान होगा। प्रधान सम्पादक किसी विशेष-विषयपर लेख लिखनेके लिए आपसे कह सकेंगे। ये निश्चय १ फाल्गुन सं० १९७७ सौर (सन् १९२१) से पालन किये जायें। पराड़करजीको यह पत्र तथा नयी शर्तें सौर ३० फाल्गुन १९७७ को मिलीं और सौर २ चैत्र, १९७७ को उन्होंने इसपर अपनी

---

१. 'आज' के जन्मकालसे ही फोरमैन श्री सरयू महाराज दीक्षितने (अब अवकाशप्राप्त) लेखकको यह बात बतायी।

स्वीकृति लिखकर भेज दी। पराड़करजीके कुछ समयके लिए हटनेसे 'आज' के सुव्यवस्थित हो चले क्रममें पुनः बाधा पड़ी और स्वभावतः श्रीप्रकाशजी पर अत्यधिक कार्य भार आ पड़ा।

सम्पादकीय विभागमें न रहकर भी पराड़करजी 'आज' की जो सेवा कर रहे थे उससे भी सौर ७–९–१९७८ (सन् १९२१) को पृथक् होनेकी आपने इच्छा प्रकट की और निवेदन किया कि सौर पौषके अन्त तक कार्यसे अवसर दिया जाय। सौर २४ पौष, १९७८ (सन् १९२१) को प्रबन्धकारी संचालकने उक्त पत्रका उत्तर देते हुए लिखा—अन्ततः आपने अपना सम्बन्ध 'आज' से पृथक् करना ही निश्चय किया तथापि हमें पूर्ण आशा है कि जिस वृक्षका बीजारोपण आप ही द्वारा हुआ उसे एकदम भुला न देंगे। इस पत्रके अन्तमें पराड़करजीसे निनेदन किया गया है कि वे 'आज' के लिए महीनेमें ५० कालम तक लेख अवश्य लिखें। दो दिन बाद पराड़करजीने प्रबन्धकारी संचालकको अवसर ग्रहण करनेकी अनुमतिके लिए धन्यवाद देते हुए पत्र लिखा। इसमें उन्होंने यह भी विदित किया कि श्रीप्रकाशजीके आग्रहसे २० जनवरी, ७ सौर माघ तक काम चला देनेका सुझाव मुझे स्वीकार है। लेख लिखनेकी कठिनाईका उल्लेख करते हुए भी उन्होंने एक मास तक लिखना स्वीकार किया।

पराड़करजीके 'आज' से इस्तीफ़ेकी उन दिनों काफ़ी चर्चा रही। काशीसे प्रकाशित होनेवाले पत्र 'सूर्य' में १६ जनवरी, १९२२ को यह समाचार निकला—हमारे काशीके संवाददाता लिखते हैं कि 'हितवार्ता' और दैनिक 'भारतमित्र' के भूतपूर्व सम्पादक पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करने गत सप्ताह काशीके 'आज' पत्रके सम्पादकत्वसे अपना इस्तीफ़ा दे दिया। पण्डितजीकी स्पष्ट लेखन शैलीकी प्रतिभा और योग्यतासे हिन्दी समाचारपत्र-जगत् अनभिज्ञ नहीं है।..............आपका बहुत दिनोंसे मतभेद था पर अन्तमें वह और भी बढ़ गया। आप अपने सिद्धान्तोंकी

हत्या करना पसन्द नहीं करते थे। अतएव इस पत्रसे अलग होना पड़ा।[१] पर अदृष्टको यह स्वीकार न था कि पराड़करजीका सम्बन्ध 'आज' से पृथक् हो। उनसे वह 'आज' के माध्यमसे आनेवाले वर्षोंमें देशके जागरण तथा नवोत्थानमें महत्त्वपूर्ण योगदान चाहता था। वही होकर रहा भी। परिणामस्वरूप सौर २३ श्रावण, १९७९ (अगस्त, सन् १९२२) में पराड़करजी १७५) मासिकपर पुनः 'आज' के संयुक्त सम्पादक नियुक्त हुए। इस बार पत्रकी सम्पादकीय नीतिके लिए एक समितिका संघटन किया गया। इस समितिके सदस्य थे—सर्व श्री भगवानदासजी, शिव-प्रसादजी, श्रीप्रकाशजी, बाबूराव विष्णु पराड़करजी और महीपतराम नागर। श्री श्रीप्रकाशजीने १२ अगस्त, १९२२ को पराड़करजीके आग-मनका स्वागत करते हुए पत्र लिखा—प्रिय पराड़करजी····आपके पुनः 'आज'के सम्पादकीय विभागमें आ जानेसे बड़ा ही सन्तोष हुआ। आशा है अब आप इसे छोड़नेका फिर विचार न करेंगे। और ईश्वरसे मेरी प्रार्थना भी है कि मेरी तरफ़से कोई ऐसा कार्य न हो जिससे कि आपको किसी प्रकारका कष्ट पहुँचे। आपका—**श्रीप्रकाश**। इस प्रकार श्रीप्रकाशजी तथा पराड़करजी सहयोगपूर्वक 'आज'का सम्पादन करने लगे जिससे हिन्दी पत्रकारिताका एक नवीन अध्याय आरम्भ हुआ।

सम्पादकीय व्यवस्थाका सम्पूर्ण भार

'आज'के सम्पादक-पदके गुरु-गम्भीर दायित्व तथा सम्पादकीय विभाग-की विभिन्न समस्याओंके साथ पराड़करजीके सम्मुख थी—एक बड़े परिवार-के सञ्चालनकी समस्या। पहली पत्नीकी मृत्यु हो चुकी थी। दूसरा विवाह सन् १९१५में नागपुरके श्रीढवलेकी कन्यासे नज़रबन्दीके कुछ समय पहले ही हुआ था। कारावाससे मुक्त होकर जब पराड़करजी काशी आये तो उनकी

---

१. 'सूर्य : १६ जनवरी, १९२२, पृष्ठ ३, कालम ४ के नीचे।

पत्नी रुग्ण थीं। रोग भी साधारण न था। उन्हें राजयक्ष्मा था। 'आज' कार्यालयमें कठिन परिश्रमके पश्चात् पत्नीकी सेवा-सुश्रूषा तथा चिकित्सा-व्यवस्थाका भार भी उन्हींपर था। राजयक्ष्माकी चिकित्साके लिए पहले तो पराड़करजी अपनी पत्नीको लेकर भुवाली गये। वहाँकी प्रसिद्ध चिकित्सा-पद्धतिसे विशेष लाभ न होनेकी स्थितिमें पराड़करजी उन्हें लेकर बम्बई गये। सहधर्मिणीकी परिचर्या तथा चिकित्साका भार आ जानेके फलस्वरूप पराड़-करजीको 'आज'के कार्य तथा तत्सम्बन्धी कर्त्तव्यपालनमें कठिनाईका अनुभव होने लगा। जितना सहयोग पत्र-सम्पादनमें वे देना चाहते थे उसमें अड़-चन उत्पन्न होनेके कारण उनके मनमें खेद था। गृहस्थीकी इस झंझटके साथ ही 'आज'का भी काम देखना ही पड़ता था। ऐसी ही परिस्थितिमें उन्होंने ६ नवम्बर, १९२४ को श्री श्रीप्रकाशजीको लिखा कि मुझे यह उचित लगता है कि मैं अपने पदसे हट जाऊँ। इसपर श्रीप्रकाशजीने उन्हें पूर्ण सहयोगका वचन देते हुए पूरी सुविधाका आश्वासन दिया और इसी प्रसंगमें लिखा........मैं एक क्षणके लिए भी आपको सलाह नहीं दे सकता कि आप इस स्थानको छोड़ दें। और मेरेमें जहाँ तक शक्ति होगी मैं अवश्य ही श्री शिवप्रसादजीको ज़ोर दूँगा कि यदि आप यह प्रस्ताव करें तो इसे स्वीकार न करें। **हिन्दी अखबारनवीसीमें जितना नाम आपका है उतना किसी दूसरेका नहीं है। 'आज'ने ४ वर्षके अपने जीवनमें इस श्रेष्ठ पदको प्राप्त किया तो उसमें आपका बहुत बड़ा हाथ है........**

सप्रेम भवदीय—**श्रीप्रकाश**

इसी बीच पराड़करजीकी सहधर्मिणीको तबीयत और ख़राब हुई और वे चल बसीं। पराड़करजीके दाम्पत्य-जीवनपर यह दूसरा आघात था। गार्हस्थ्य-जीवनका सुख तो दुर्लभ था उलटे दुःखपर-दुःखका क्रम चल रहा था। नज़रबन्दीसे छूटकर सन् १९२० में काशी आनेपर उनकी सहधर्मिणी रोग-शय्यापर थीं। पूरे चार वर्षोंकी चिकित्सा, यक्ष्माके विशेष चिकित्सा-लयका उपचार तथा जलवायुका परिवर्तन—कोई भी उनके गिरते हुए

स्वास्थ्यमें सुधार न कर सका। शोक-सन्तापकी यह स्थिति चल ही रही थी कि श्रीप्रकाशजीने और गुरुतर दायित्वकी ओर पराड़करजीका ध्यान आकृष्ट किया। २८ नवम्बर, १९२४ को श्रीप्रकाशजीने पण्डितजीको पत्र लिखा—प्रिय पण्डितजी,........आशा है अब आपके लेखादि बराबर आवेंगे। मैंने अपनी छोटी-सी शक्तिके अनुसार इन ४ वर्षोंमें आपकी गार्हस्थ्य सम्बन्धी दिक़्कतोंको जानते हुए कदापि यह आपको अनुभव न होने दिया कि मैं आपकी हर प्रकारसे सहायता करनेको नहीं तैयार हूँ। पर जब ईश्वरने ही आपको सब बन्धनोंसे अब मुक्त कर दिया है—चाहे वह कितना ही दुःखद क्यों न हो। **मुझे अब यह आशा ज़रूर है कि आप 'आज'के सम्पादकीयका पूरा भार लेकर मुझे पूरे तौरसे मुक्त कर देंगे। मेरी यह भी अभिलाषा है कि आप एक-दो सहायकोंको भी इतना 'ट्रेन' कर लीजिए कि आपकी ग़ैरहाज़िरीमें कोई दिक़्क़त न पड़े। अब आपको समय भी अधिक रहेगा, झंझट भी कम होगी और मुझे आप छुट्टी अवश्य देंगे**........

आपका—**श्रीप्रकाश**

इस प्रकार पराड़करजीपर सम्पादकीय व्यवस्थाका सम्पूर्ण भार आ गया। सन् १९२४ के अन्तमें पदभार ग्रहण करते ही आपने 'आज' के सम्पादकीय विभागका पुनर्गठन किया तथा कम्पोजिंग विभागमें भी ऐसे सुधार किये जिनसे पत्र दिनोत्तर उन्नति करने लगा। प्रारम्भके चार वर्षोंमें 'आज' सबेरे ४-५ बजे तड़के छपा करता था और उसी दिनकी तिथि पत्रपर अंकित की जाती थी। उस समय प्रकाशित होनेवाले सभी समाचारपत्रोंमें एक दिन आगेकी तिथि रहती थी। इससे लोगोंमें यह भ्रम बना रहता था कि 'आज' एक दिन पहलेका है, जब कि वास्तविकता यह थी कि पत्र उसी दिनका ताजा अंक रहता था। पत्रमें सूचना प्रकाशित कर इस भ्रमके निवारणका प्रयत्न किया जाता था। इस स्थितिमें परामर्शकर पराड़करजीने सन् १९२५ मे परिवर्तन किया। आपने पाठकों-

को नवीनतम समाचार देने तथा काशीके नागरिकोंकी प्रवृत्ति-विशेषका अध्ययन कर 'आज' के प्रातः संस्करणको बदलकर अपराह्ण में प्रकाशित करना शुरू किया। उसी समय विचारकर 'कम्पोजिंग' का काम ठीकेमें करानेकी व्यवस्था की गयी जिससे अधिक काम होने लगा। इस व्यवस्थाकी सबसे मुख्य विशेषता यह थी कि विभिन्न पृष्ठों तथा स्थानोंकी सामग्रीकी 'कम्पोजिंग' का समय नियत हो गया। सभीके कार्य विचार-पूर्वक विभाजित कर दिये गये और उनकी जिम्मेदारी स्पष्ट कर दी गयी। दैनिक 'आज' के समय पर तथा सम्यक् सम्पादन-प्रकाशनकी इन समस्त व्यवस्थाओंका संघटन एवं निर्धारण पराड़करजीने, सहज स्नेहपूर्वक सबका सद्भाव-सहयोग प्राप्त कर किया।

सम्पादनकी गौरवपूर्ण परम्परा

'आज' का जब प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तो उस समय 'प्रिण्टलाइन' के स्थानमें सम्पादकका नाम नहीं छपता था। सन् १९२२ में जब यह क़ानून द्वारा अनिवार्य कर दिया गया तो प्रथमबार श्रीप्रकाशजीका नाम सम्पादकके रूपमें प्रकाशित हुआ। यह क्रम छः मास चला होगा कि श्रीप्रकाशजीने तीन महीनेकी छुट्टी ली। उनके छुट्टीपर जानेके कारण पराड़करजीका नाम प्रायः पाँच महीने तक स्थानापन्न सम्पादकके रूपमें प्रकाशित हुआ। छुट्टीसे लौटनेपर श्रीप्रकाशजीने मुश्किलसे दो महीने सम्पादक-पदका भार सँभाला और बादमें सम्पादन कार्यसे पूर्ण अवकाश लेकर 'आज' के प्रधान व्यवस्थापकका पद ग्रहण किया। लगभग एक वर्षतक पराड़करजीका नाम स्थानापन्न सम्पादकके रूपमें छपता रहा और सन् १९२४ के अन्तमें उनका नाम स्थायी सम्पादकके रूपमें प्रकाशित होने लगा। सन् १९३४ में जब श्री कमलापति त्रिपाठी 'आज' के सम्पादक नियुक्त हुए तो पराड़करजी 'आज' के प्रधान सम्पादक बनाये गये। यह क्रम आबाधरूपसे २३ अगस्त, १९४२ तक चलता रहा। जब देशमें राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ा तब

ब्रिटिश सरकारके दमनके विरोध एवं समाचारोंके प्रकाशनपर प्रतिबन्धोंके कारण 'आज' का प्रकाशन २४ अगस्त, १९४२ से स्थगित कर दिया गया। एक ओर तार तथा संवाददाताओंके समाचार आने बन्द हो गये, दूसरी ओर नित्य सरकारी चेतावनी तथा कठोर प्रतिबन्धक आज्ञाएँ आने लगीं। ऐसी विषम परिस्थितिमें संचालकमण्डलसे परामर्शकर पराड़करजीने पाठकोंसे अनिश्चित कालकी विदा माँग 'आज' का प्रकाशन बन्द कर दिया। इसी बीच पुरानी व्यवस्थामें परिवर्तन हुआ। १ जनवरी १९४३ को नयी व्यवस्थामें जब 'आज' का पुनः प्रकाशन हुआ तो पराड़करजीको विवश होकर अपने पुराने सहयोगियोंका साथ देना पड़ा और 'आज' प्रायः साढ़ेतीन वर्षोंतक उनके सहयोगसे वंचित रहा। इस अवधिमें पराड़करजी काशीसे ही प्रकाशित होने वाले दैनिक 'संसार' के प्रधान सम्पादक हुए और बादमें उसके संरक्षक बनाये गये। सन् १९४७ के अगस्त महीनेमें 'आज' संचालकोंके आग्रह तथा अपने पुराने सम्बन्धके कारण पराड़करजी 'आज' में पुनः प्रधान सम्पादक होकर आ गये और जीवनके अन्त तक—१२ जनवरी, १९५५ तक—इस पदपर बने रहे। 'आज' में तीन दशकों-की आपकी पत्रकारिताने राष्ट्रभाषा हिन्दीकी पत्रकार-कलाको नया स्वरूप, नयी दिशा और नवीन गति प्रदान की। पराड़करजीकी सम्पादन-कलाने हिन्दी पत्रकारिताका मानदण्ड स्थिर किया तथा उसे भारतीय पत्रकारित्वमें गर्व और गौरवके पदपर प्रतिष्ठित किया।

'वेंकटेश्वर समाचार' के संचालकका आग्रह

सन् १९२५ के मध्यमें बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले प्रसिद्ध पत्र 'वेंकटेश्वर-समाचार' के संचालक श्रीकृष्णदासजीने अत्यन्त आग्रहपूर्वक पराड़करजीको अपने पत्रके सम्पादक पदपर आनेका आमन्त्रण दिया था। इस सम्बन्धमें पराड़करजीके पास आये पत्रोंसे प्रकट होता है कि प्रबल आग्रहके कारण उन्होंने कभी वहाँ जानेका सम्भवतः संकेत किया था पर

विवशताके कारण 'आज' छोड़कर जाना सम्भव न हुआ। १० मई, १९२५ को 'वेंकटेश्वर-समाचार'के सत्त्वाधिकारीने पराड़करजीको जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है—''''आपके आनेमें अधिक विलम्ब हुआ कारण इसका ज्ञात नहीं होता। कृपया निश्चय कर लीजिए आप यहाँ कब तक आवेंगे। कृपा रखें। योग्य कार्यसे स्मरण करते रहें। कृपया शीघ्र ही आनेका प्रबन्ध कीजिएगा। आपका कृपापात्र —**श्रीकृष्णदास**। इसके सत्रह दिन बाद संचालकोंने पराड़करजीको 'वेंकटेश्वर-समाचार'के सहायक सम्पादक श्री गोपालराम गहमरीसे स्मरण पत्र भिजवाया। इस पत्रमें पराड़करजीके जीवनकी एक तत्कालीन घटनाका उल्लेख मिलता है। यह पत्र २७ मई, १९२५ को बम्बईसे लिखा गया—पं० बाबूराव विष्णु पराड़करजी—आपको जो पत्र कार्यालयकी ओरसे लिखा गया था उसका उत्तर अभी तक नहीं आया। शायद आप उस विद्रोही पर्चेके मुक़दमेके कारण उत्तर नहीं दे सके हों। अब उसका निबटेरा हो चुका। और यहाँ वर्त्तमान सम्पादक बाबू बद्रीनारायणके मारे पत्रकी दशा सन्तोषजनक नहीं है। मैं भी स्वास्थ्य-की खराबीसे यहाँ ठहरना नहीं चाहता। आगामी १ ली जूनको मैं गहमर जाऊँगा। आप कृपा कर निश्चय लिखिए कि कब तक यहाँ आपके दर्शनकी आशा की जा सकती है।........

सेवक—**गोपालराम (गहमरी)**

इस पत्रके आनेके पूर्व ही पराड़करजीने स्वयं तो नहीं किन्तु अपने मित्र कानपुर कानून प्रेसके संचालक श्रीचन्द्रशेखर शुक्लको पत्र लिखकर सारी परिस्थिति समझाते हुए अपनी विवशता प्रकट कर दी थी और उनको लिखा था कि वे तदनुसार 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के संचालकको सूचना दे दें। श्री चन्द्रशेखर शुक्लने तदनुकूल पत्र लिख दिया और इसकी सूचना २८ जुलाई, १९२५ को पत्र द्वारा दी—माननीय पं० पराड़करजी—सादर नमस्कार। आपकी आज्ञानुसार मैंने श्री वेंकटेश्वरके मालिकोंको यथातथ्य लिख दिया था। आपकी विवशताका पूर्ण परिचय दिया था।

मैंने 'भारतमित्र' के सम्पादकजीके बारेमें भी लिखा था। यह भी लिखा था कि कलकत्तेकी अपनी दूकानके मुनीमको भेजकर सब बातें तय कर लो।........ आपका कृपाकांक्षी—**चन्द्रशेखर शुक्ल**

राजद्रोही परचे तथा 'वेंकटेश्वर-समाचार'में बुलाये जानेकी बातोंका उल्लेख 'वेंकटेश्वर-समाचार' के प्रारम्भिक दिनोंके सम्पादक आयुर्वेद पंचानन पण्डित जगन्नाथ प्रसाद शुक्लके पराड़करजीके नाम प्रयागसे लिखे दिनांक आषाढ़ कृष्ण ६, संवत् १९८२ के पत्रमें भी हुआ है। प्रारम्भमें 'आज' के सफल सम्पादनके निमित्त बधाई देते हुए उक्त दोनों घटनाओंकी चर्चा है। पत्र इस प्रकार है—प्रियवर पराड़करजी—सप्रेम नमस्कार।....

आपके समयमें 'आज' के सम्पादनमें जो रोचकता आयी है उसके लिए आपको बधाई है। इसमें सन्देह नहीं कि 'आज' इस समय उच्च-कोटिका पत्र है जिसमें आपके श्रेयका बहुत अंश है। राजद्रोही परचेके बाँटनेवाले मुक़दमेमें आपका नाम कई बार आया। इसलिए चिन्ता थी। आशा है अब उस विषयके विघ्न टल गये होंगे। बम्बईके सेठजीने मुझे सूचित किया था कि वे आपको बुला रहे हैं, परन्तु इस समय उस बवण्डर-के कारण वे कुछ दबसे रहे। मैं प्रसन्न हूँ, अपनी प्रसन्नताके समाचार दीजिएगा। भवदीय—**जगन्नाथप्रसाद शुक्ल**

• सम्पादक सम्मेलनके प्रथम सभापति

षोडश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ७ नवम्बर सन् १९२५ से १० नवम्बर तक वृन्दावनमें हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान् और सम्पादक पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीके सभापतित्वमें हुआ। पराड़करजी साहित्य सम्मेलनके इस अधिवेशनमें सम्पादक सम्मेलनके सभापति चुने गये थे। तार द्वारा २० अक्तूबर, १९२५ को यह सूचना पराड़करजीको दी गई और स्वीकृतिकी याचना की गयी। २१ अक्तूबरको पराड़करजीने अपनी स्वीकृति भेज दी। स्वीकृतिके लिए कृतज्ञता प्रकट करते हुए सम्मेलनके प्रबन्ध मन्त्री श्री देवी-

प्रसाद सक्सेनाने पराड़करजीके पास जो पत्र भेजा वह हिन्दी पत्रकार संघटनके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण है। इसलिए कि वृन्दावन सम्मेलनमें ही सर्वप्रथम हिन्दी पत्र सम्पादकोंकी संस्था संघटित करनेका निश्चय किया गया। पराड़करजीने ८ नवम्बरको सम्पादक-सम्मेलनके सभापति पदसे जो भाषण किया वह भारतीय पत्रकारिताके इतिहासमें चिरस्मरणीय है। उक्त पत्र इस प्रकार है—;........'आपने सम्पादक सम्मेलनके सभापति पदको ग्रहण करनेकी हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली तदर्थ हम आपके हृदयसे कृतज्ञ हैं। स्वागत-समितिकी इच्छा है कि हिन्दी पत्र-सम्पादकोंकी एक पृथक् और ज़ोरदार संस्था हो। हम चाहते हैं कि इस बार एक सम्पादक समितिका संघटन हो जाय और वह इस कार्यके लिए आन्दोलन करे। आरम्भमें हमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। किन्तु हमें विश्वास है कि यदि प्रयत्न जारी रहा तो सफलता अवश्यमेव प्राप्त होगी। कृपया अपने भाषणमें हिन्दी पत्र-सम्पादकोंका ध्यान इधर आकर्षित कीजिए। हमारी धारणा है कि आपके कृपापूर्ण सहयोगसे यह महान् कार्य सफल हो जायगा।'

भवदीय—

देवीप्रसाद सक्सेना

प्रबन्ध मन्त्री

पत्रकार-जगत्‌में प्रसन्नता

पराड़करजीके वृन्दावन साहित्य सम्मेलनके अन्तर्गत सम्पादक सम्मेलनके सभापति चुने जानेपर पत्रकार-जगत्‌में प्रसन्नता और सन्तोषका अनुभव किया गया। पराड़करजीके मित्रों एवं हिन्दी हितैषियोंने बधाईके पत्र भेजे और सहयोगी सम्पादकोंने ब्लाक, जीवन-चरित्र तथा भाषण भेजनेका अनुरोध किया। 'विश्वमित्र' के संचालक-सम्पादक श्री मूलचन्द्र अग्रवालने लिखा—'श्रीयुत् बाबूरावजी प्रणाम। कृपाकर आप अपना ब्लाक वापसी डाकसे भेजनेकी कृपा करें क्योंकि सम्मेलन अंकके लिए परम आवश्यक है।

मेरे योग्य और जो सेवा हुआ करे, कृपाकर सूचित करते रहिए और सदा कृपा दृष्टि रखें। अब पत्रका सम्पादन-भार मैंने ही ग्रहण कर लिया है, इसलिए आप सत्परामर्शसे मुझे कृतार्थ करते रहें।' आपका—**मूलचन्द्र अग्रवाल।** गुरुकुल वृन्दावनसे पण्डित नरदेव शास्त्री वेदतीर्थने बधाई देते हुए लिखा—'आप सम्पादक सम्मेलनके सभापति हुए यह परम हर्पका विपय है।········इस पत्रके देखते ही अपने भाषणकी, एक प्रति सम्पादक 'शंकर' मुरादाबादके नाम भेज दीजिए। कृपा होगी। 'वर्णाश्रम' काशीके सम्पादकने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा—'········अधिक प्रसन्नता हमें इस बातकी है कि हमने जो चाहा था, वही हुआ। बधाई।' प्रयागसे प्रसिद्ध लेखक तथा पत्रकार श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' ने लिखा—'पूज्यपाद पराड़करजी, प्रणाम। आप षोडश हिन्दी साहित्य सम्मेलनके समय सम्पादक सम्मेलनके सभापति निर्वाचित हुए हैं। आप कृपा करके अपना जीवन-चरित्र मुझे देनेकी कृपा कीजिए। मैं उसे लिखकर प्रकाशित करना चाहता हूँ। चित्र भी चाहिए। क्या आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। यदि भेजेंगे तो बड़ी कृपा होगी। यह सौभाग्य मुझे क्या आप प्राप्त होने दीजिएगा कि आपका जीवन चरित मैं ही पहले लिखूँ। मेरे ऊपर कृपा कीजिएगा।········

निवेदक—**ज्योति प्रसाद निर्मल'**

वृन्दावनमें सम्पादक-सम्मेलन आठ नवम्बर, १९२५ को प्रातः आठ बजे स्वागताध्यक्ष श्री आनन्दभिक्षु सरस्वतीके भाषणसे प्रारम्भ हुआ। अनन्तर स्वागत-समितिके अनुरोधसे भाई परमानन्दजीने पत्रकारों और सम्पादकोंकी संस्थाके संघटनकी आवश्यकता बतायी। सम्मेलनमें स्वीकृत प्रस्तावके अनुसार स्थायी समितिके सदस्य बननेकी स्वीकृति कमसे कम सौ सम्पादकों, भूतपूर्व सम्पादकों आदिसे मिल जानेपर स्थायी समितिका संघटन होगा। स्थायी समितिके प्रत्येक सदस्यको वार्षिक पाँच रुपया चन्दा देना पड़ेगा। सम्पादक-सम्मेलनके सभापतिके पदसे जो अभिभाषण पराड़करजीने किया उसमें समाचारपत्रके आदर्शकी व्याख्या एवं विवेचना करते

हुए हिन्दी पत्रोंकी उन्नतिके आधारभूत सिद्धान्तोंपर विद्वत्तापूर्ण व्यावहारिक विचार प्रकट किया गया है। इसी भाषणमें पत्रकारों तथा सम्पादकोंके संघटनके स्वरूपकी प्रथम रूपरेखा अंकित की गयी है। आनेवाले वर्षोंमें पत्र-उद्योग कौन-सा नया मोड़ लेगा इसका स्पष्ट संकेत इसमें मिलता है। साथ ही हमें इससे यह भी विदित होता कि पत्रकारिताके आगामी युगोंमें सम्पादकोंकी स्वतन्त्रता किन परिस्थितियोंमें सीमित होती जायगी।[1]

देशबन्धु श्री ऐण्डरूजका सन्देश

सम्मेलनमें देशबन्धु श्री सी. एफ. ऐण्डरूजका जो सन्देश पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीने पढ़ा, उसका विशेष महत्त्व है। इसमें भारतीय पत्रोंके सम्पादकोंका ध्यान प्रवासी भारतीयोंकी समस्याकी ओर विशिष्ट रूपसे आकृष्ट किया गया है। श्री ऐण्डरूजने अपने इस सन्देशमें हिन्दी पत्र सम्पादकोंके प्रति कृतज्ञताका भाव प्रकट करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य-का भी संकेत किया है। सन्देश इस प्रकार है—'आज' के सम्पादक तथा मेरे मित्र पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करके सभापतित्वमें होनेवाले 'हिन्दी सम्पादक सम्मेलन' को मैं यह सन्देश भेज रहा हूँ। जब यह सम्मेलन होगा तब तक मैं दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो चुकूँगा। प्रवासी भारत-वासियोंके लिए की हुई मेरी अपीलोंपर हिन्दी पत्र सम्पादकोंने जिस उदारतापूर्वक सहायता की है उसके लिए मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ और अब आपसे यह निवेदन करता हूँ कि आप अपने इस कार्यमें शिथिलता न आने दें क्योंकि अब दक्षिण अफ्रीकाके और दूसरे स्थानोंके भी, प्रवासी भारतीयों-पर आपत्ति आनेवाली है और उन्हें सहायताकी विशेष आवश्यकता है जो केवल आप लोग ही दे सकते हैं। अपने अनवरत दृढ़ परिश्रमसे इस आन्दो-लनमें जितनी सहायता देशी पत्र कर सकते हैं उतनी और कोई नहीं कर

---

१. यह अभिभाषण 'पत्रकारी खण्ड'में देखिए।

सकता । मेरा यह निश्चित मत है, जो मुझे अनुभवसे प्राप्त हुआ है कि इस विषयमें भारतीय जनताकी आवाज़ जितना काम कर सकती है उतना और कोई भी नहीं कर सकता । जनताकी रार्य देशी पत्रों द्वारा ही प्रकट होती है ।'

सम्मेलनका कवि-सम्मेलन

सम्मेलनमें हुए कवि-सम्मेलनकी एक चर्चा कर इस प्रसंगको सम्प्रति समाप्त करना ही उचित होगा। कवि-सम्मेलन आठ बजे रात्रिसे नयीगढ़ीके ठाकुर श्रीगोपालशरण सिंहजीके भाषणसे प्रारम्भ हुआ। इसके बाद समस्या पूर्तियाँ पढ़ी जाने लगीं । बहुतसे कवियोंकी बहुत-सी पूर्तियाँ आयी थीं । सब कैसे पढ़ीं जायँ—यह जटिल समस्या थी । एक-एक समस्या पर एक-एक पूर्ति पढ़ी जानेकी व्यवस्थासे लोगोंमें असन्तोष फैल गया । अन्तमें कवियोंको तो पढ़नेकी स्वतन्त्रता दी गयी पर अनेक सुकवि रुष्ट हो गये । कवि सम्मेलनकी कारवाई दूसरे दिन भी हुई । सम्मेलनमें पढ़ी गयी श्रृंगाररसकी कतिपय कविताओंपर एक-दो सज्जनोंने यह कह कर आपत्ति की कि महिलाओंके सामने ऐसी कविता पढ़ना अनुचित है । अधिकांश सज्जनोंके मतसे कवितामें दोष तादृश नहीं था पर कविकी प्रस्तावना अच्छी नही थी ।[1] पराड़करजीकी साहित्यिक डायरीमें जिसे उन्होंने काशीमें ७ अगस्त, १९२० से लिखना प्रारम्भ किया था, उक्त कविता पराड़करजीकी टिप्पणी सहित अंकित है । यह इस प्रकार है—

डार कहूँ, पात कहूँ, फल रस फल कहूँ ऐसे तरु अजब लखात कामक्वारीको,
जित जित हेरौं तित तित चित रमि जात, कोटि धन्यवाद देउँ विधि हुसियारीको ।

---

१. 'आज'—१२ नवम्बर, १९२५, संख्या १५२२, पृष्ठ—४ ।

पुहपित होत ही रहत बारो मास आच्छो, परिमल मिलत सुगंधि गति न्यारीको,
सफल भये ते पितु लोकं-सों उदित होत, 'केसौ' कवि वंदत स्वरूप प्राणप्यारीको ।

इसपर कुछ लोगोंने अश्लील होनेका दोषारोप किया, बहुत झगड़ा हुआ और कतिपय महिलाएँ सभास्थलसे उठ गयीं । अनन्तर समाचार-पत्रोंमें भी महीनों तक इसपर वाद-विवाद होता रहा ।[1]

• विधवा-विवाह

पराड़करजीके जीवनमें उनका तीसरा विवाह—वह भी विधवासे—अनेक दृष्टियोंसे एक महत्त्वपूर्ण घटना है । सन् १९२५–२६ में देशकी जैसी सामाजिक-धार्मिक स्थिति थी, उसमें विधवा-विवाहका साहस एवं संकल्प करना एक क्रान्तिकारी निश्चय करना था । धार्मिक और सामाजिक मर्यादाको तोड़ना बड़ा कठिन था । इसलिए कि इस मर्यादा एवं रूढ़िका उल्लंघन करनेवालोंको समाजसे बहिष्कृत होकर अनेक प्रकारकी ताड़ना-लांछना सहनी पड़ती थी । विधवा-विवाह, वह भी महाराष्ट्र ब्राह्मण परिवार-में, सामाजिक निन्दाका कार्य माना जाता था । इस मर्यादाको चुनौती देते हुए पराड़करजीने गृह्य-सूत्रों, श्रौतसूत्रों, धर्मसूत्रों, स्मृतियों, पुराणों और समाजकी परिस्थितिके आधारपर विधवा-विवाहका शास्त्र तथा व्यवहारकी दृष्टिसे मण्डन किया । अपने पक्षको धर्मशास्त्रोंसे सम्मत सिद्ध करनेके लिए उन्होंने सैकड़ों रुपयोंके शास्त्रीय-ग्रन्थ खरीदकर उनका गहन अध्ययन किया । इस सम्बन्धकी चर्चा काशीकी तत्कालीन पण्डित-मण्डलीके वाद-विवादका मुख्य विषय बन गयी थी । पराड़करजी उन दिनों महामहो-

---

१. पराड़करजीकी साहित्यिक डायरी : पृष्ठ—२६ ।

पाध्याय धर्माचार्य पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी द्रविड़के यहाँ प्राय: नित्य जाया करते थे। उस समय श्री श्रीनिवास शास्त्री (काशीके सुप्रसिद्ध वैद्य-रत्न) पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी द्रविणके यहाँ ही रहते थे। श्रीनिवासजी पराड़करजीको बहुविध समझाया करते कि सदियोंसे चली आती प्राचीन मर्यादाको तोड़ना समुचित नहीं। पर पराड़करजी अपने संकल्पपर दृढ़ थे। एक दिन उन्होंने पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी द्रविड़से इस प्रश्नपर शास्त्रार्थ किया और अपने पक्षमें हिन्दू-धर्म-शास्त्रोंके प्रमाण दिये। इसकी तैयारीमें उन्होंने घोर परिश्रम किया और गहन मनन कर सूत्ररूपमें एक छोटा-सा ग्रन्थ ही तैयार कर डाला। उभय पक्षने अपने-अपने समर्थनमें अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये। कहते हैं कि पराड़करजीके पक्षको ठीक तरहसे कोई काट न सका। जो हो, शास्त्रीजीने न तो अपना निर्णय बदला और न पराड़करजीने ही अपने संकल्पमें कोई परिवर्तन किया। इस सम्बन्धमें उन्होंने 'आज'में भी लेख लिखे। स्त्रियों सम्बन्धी 'आज'की लेखमालाकी प्रशंसा आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीने[1] भी की थी। पराड़करजीके पक्षके विरोधमें खण्डनात्मक लेख भी प्रकाशित हुए। पराड़करजी अपने निश्चयसे विचलित न हुए। यहाँ तक कि इन्दौरसे एक कुमारी कन्याके विवाह प्रस्तावको उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं विवाह करूँगा तो विधवासे ही।

विधवा विवाहके शास्त्रीय प्रमाण

विधवा विवाहके समर्थनमें पराड़करजीने जो शास्त्रीय प्रमाणोंकी नोटबुक तैयार की थी, वह तो हमें देखनेको नहीं मिली किन्तु उनके पत्र-व्यवहारके बण्डलोंसे एक ऐसा पत्र मिला है जिसमें उनके तत्सम्बन्धी

---

१. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीका १८ दिसम्बर, १९२९ का यह पत्र पुस्तकमें अन्यत्र देखिए।

दृष्टिकोण एवं मान्यताओंकी एक झलक मिल जाती है। उन दिनों, लूकरगंज, प्रयागके श्री राधेलाल चतुर्वेदीने विधवा-विवाहपर एक पुस्तिका तैयार की थी। इसके लेखनमें चतुर्वेदीजीको पराड़करजीसे अमूल्य सहायता तथा सुझाव प्राप्त हुए थे। पराड़करजीने उन्हें अपनी अनेक पुस्तकें तथा नोट दिये थे। यह पुस्तिका जब छप गयी तो लेखकने उसकी प्रति पराड़करजी-के पास सम्मत्यर्थ भेजी और अपने विचार अवश्य लिख भेजनेका आग्रह किया। इस पुस्तिकामें गृह्यसूत्रोंसे विधवाविवाहके विरोधियोंको उत्तर दिया गया था तथा कन्यादानके विधानकी प्राचीनतापर भी शंका प्रकट की गयी थी। दिनांक २४ अगस्त, १९२९ को पराड़करजीने इस पुस्तिकाके सम्बन्धमें अपनी सम्मति तथा सुझाव लिख भेजे जिनका आशय इस प्रकार है—२४ अगस्त, १९२९। प्रिय महोदय—विधवा-विवाहपर इस छोटी-सी पुस्तिकाको प्रस्तुत करनेके लिए धन्यवाद। जिस शीघ्रतासे इसका मुद्रण हुआ है उसे देखते हुए यह बहुत सुन्दर बन पड़ी है। इस सम्बन्धमें मेरा एक सुझाव है कि इसके द्वितीय संस्करणमें आप इसे पूर्णतः शास्त्रीय ढंगकी पुस्तक बना दें और इसके प्रचारात्मक अंशको निकाल दें। प्रचार तो हो रहा है और भविष्यमें इसे दूसरे लोग भी करेंगे। अच्छा यह होगा कि तत्सम्बन्धी शास्त्रीय अध्ययन कर लोग पण्डितोंसे स्वर्गीय पण्डित विद्यासागर की भाँति मीमांसाके नियमोंका पालन करते हुए विचार-विनिमय करें। इस सम्बन्धमें शास्त्रीय समर्थन करनेवाला अध्ययन तार्किक आधारपर मीमांसाका अनुगमन करते हुए प्रस्तुत किया जाना चाहिए। ऐसी पुस्तिका प्रचारकोंके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। मैं समझता हूँ कि एक ऐसी पुस्तककी आवश्यकता है जो इस विषयकी सन्दर्भ पुस्तिकाकी पूर्ति कर सके। मेरा मत है कि विवाह-संस्कारकी प्रथा प्रचलित होनेके बहुत बाद 'कन्यादान' का प्रचलन हुआ। जब आर्य लोग स्त्रीको अपनी सम्पत्तिका अंश समझने लगे तो कालान्तरमें बाल-विवाहकी प्रथा चल पड़ी। 'दान'-की प्रथा प्रारम्भ करनेके पूर्व यह आवश्यक था कि स्त्रीकी मानवीय आत्मा-

को विकसित होनेके पहले ही संकुचित किया जाय। इस प्रकार शनैः-शनैः 'कन्यादान' विवाह-संस्कारसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। फलस्वरूप मानवीय सम्पत्ति एवं सत्ताकी भावना विकसित होती गयी और 'रक्षणीया' 'उपभोग्या' हो गयी। आज भी वही अवस्था है। मनुष्यकी यह धारणा कि स्त्री—उसकी सम्पत्तिका एक अंश है—सुधारके मार्गमें–जिसके अन्तर्गत विधवा विवाह भी है, सबसे बड़ी बाधा है। यही मेरा मत है। इस सम्बन्धमें आपकी सम्मति भी जानना चाहूँगा।

क्या अब आप इस विषयकी मेरी पुस्तकें तथा नोटबुक लौटानेकी कृपा करेंगे ? शारदाबिलके सम्बन्धमें मुझे उनकी बहुत आवश्यकता है।

आपका विश्वस्त—
बा० वि० पराड़कर

पण्डित माधवराव सप्रेका सहयोग

पराड़करजीके इस विवाहमें हिन्दीके दो महान् विद्वानोंने हार्दिक सहयोग दिया था। ये थे स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे और स्वर्गीय श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थी। श्री माधवरावजी सप्रे हिन्दी साहित्य सम्मेलनके पन्द्रहवें देहरादून अधिवेशनके सभापति थे। हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता-के क्षेत्रमें उनका कृतित्व स्मरणीय है। पराड़करजी और सप्रेजीमें अत्यन्त हार्दिकताका सम्बन्ध था। सप्रेजीने पराड़करजीके तीसरे विवाह-सम्बन्धके लिए अनेक लोगोंसे पत्राचार किया था। नागपुर तथा कोल्हापुरमें अनेक लोगोंसे वार्ता करनेके अलावा उन्होंने पराड़करजीकी जन्मपत्री भी दिखायी थी। नागपुरके किसी ज्योतिषीसे सप्रेजीने जन्मपत्रिका दिखायी थी और उस ज्योतिषीने उसका क्या भविष्य फल बताया था, इसका उल्लेख भी उन्होंने दिनांक १४ फरवरी, सन् १९२६ के पत्रमें किया है। यह पत्र मराठी भाषामें है और उसके सम्बद्ध अंशका यह आशय है कि आपके

पुर्नविवाहका योग तो प्रबल है, पर इस विवाहसे आपको सुख मिले इसकी सम्भावना नहीं[1]।

अमर शहीद श्री गणेश शंकर विद्यार्थीकी सहायता

अमर शहीद श्री गणेश शंकर विद्यार्थीने पराड़करजीके विधवा विवाह-में सहयोग ही नहीं दिया, उसे स्वयं व्यवस्थापक बनकर सम्पन्न भी कराया था। उन दिनों विधवा विवाह करना जहाँ साहसका काम था, वहीं इस प्रकारके विवाह-संस्कारको सम्पन्न करानेवाले कर्मकाण्डियोंका भी नितान्त अभाव था। पराड़करजीका मनोभिलषित विधवा-विवाह किस प्रकार हुआ, उसकी कहानी श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थीके इन पत्रोंमें अंकित है—१९ मई, १९२६ के पत्रमें उन्होंने पराड़करजीको लिखा—

× × × यदि कानपुरमें काम करना तय पावे तो यहाँ सब प्रबन्ध सुविधा-के साथ हो जायगा। यदि, आप चाहेंगे कि यहाँके कुछ सज्जन उस अव-सरपर उपस्थित रहें, तो यहाँपर ऐसे भले आदमियोंकी संख्या काफ़ी मिल जायगी। डाक्टर मुरारीलाल इस कामके बड़े भारी अगुआ रह चुके हैं। आजसे १५ वर्ष पहिले, उन्होंने अपनी बाल-विधवा बहिनका दूसरा विवाह कराया था। इस सम्बन्धमें जो सेवा मैं कर सकूँगा, उसके लिए आप निःसंकोच भावसे आज्ञा प्रदान कीजिए। यदि, मुझसे कुछ भी बन पड़ा, तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा। आपको इस सत्साहसके लिए अत्यन्त आदर और प्रेमके साथ बधाई देते हुए।

आपका दास— ग० श० विद्यार्थी

---

१. × × × नागपुरास रा० केशवराव पाध्ये यांना आपली पत्रिका दाखविली होती। ज्योतिषाच्या दृष्टीने आपल्या पुर्नविवाहा विषयीं त्यांचे जे मत आहे ते त्यांनी स्पष्ट लिहून दिले आहे। त्यांचे ते पत्र या सोवत पाठविलें आहें त्यांच्या मता प्रमाणें सध्यांजरी पुर्नविवाहाच्या योग प्रबल आहे तरी त्या पासून आपणास सुख होण्याची सम्भावना नाहीं……(मूलपत्रसे)।

विधवा-विवाह संस्कार करानेके लिए उस समय कोई महाराष्ट्र ब्राह्मण तैयार न हुआ। इस सम्बन्धकी सूचना देते हुए विवाहके अन्य प्रबन्धोंके विषयमें श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थीने २४ मई, १९२६ को लिखा—मान्यवर पण्डितजी, प्रणाम। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। यहाँ मेरी खोज भी समाप्त हो गयी। यहाँके महाराष्ट्र ब्राह्मणोंमें कोई भी ऐसा आदमी नहीं मिला जो इस कामके लिए तैयार हो। आपने देवास पत्र भेजा है। अच्छा है, वहाँसे अथवा और कहींसे, कोई ब्राह्मण कर्म-काण्डके लिए मिल जाय। स्थान कानपुर ठीक है। यहाँ सब प्रबन्ध अत्यन्त सुविधाके साथ हो जायगा। लड़कीके ठहरनेका प्रबन्ध हो गया। यदि आप यही चाहें कि वे किसी महाराष्ट्र परिवारमें ठहरें तो हमलोगके साथी श्रीयुत् गंगाधर गणेश जोग उन्हें अपने यहाँ सादर ठहरानेके लिए प्रस्तुत हैं। जोग कांग्रेस वालेण्टियर दलके—कांग्रेसके अवसरपर—अधिनायक थे। उनकी ताई दीक्षितसे रिश्तेदारी है। ताई दीक्षित आपको भली-भाँति जानती हैं। ताईजीके पुत्र श्रीयुत् कान्तिचन्द्र एम. ए. हैं। वे पंगु हैं। इस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें रिसर्च स्कालर हैं। दूसरे पुत्र लखनऊ विश्वविद्यालयमें पढ़ते हैं। ताईजीकी बड़ी पुत्री बालविधवा थीं। उनका विवाह तीन-चार वर्ष हुए नागपुरमें इस समय जो महाराष्ट्र सज्जन सेण्ट्रल जेलके सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं, उनके साथ हुआ था। जोग और ताई दीक्षितके परिवारमें बाई ठहर सकती हैं। दूसरा परिवार है डाक्टर जवाहरलाल रहोतगीका। वे मेरे बड़े मित्रोंमेंसे हैं। उनके घरमें उनकी पत्नीके अतिरिक्त चार सुशिक्षित पुत्रियाँ हैं। घरभर बहुत ही भले हैं। यदि आप यह पसन्द करें कि बाई आकर हमलोगोंमें ठहरें तो मैं डाक्टर जवाहरलालके यहाँ अच्छासे-अच्छा प्रबन्ध करा दूँगा। आप पुरोहितके सिवा और किसी बातकी चिन्ता न करें। शेष सब कामोंके ठीक-ठीक करने और करानेकी ज़िम्मेदारी मेरे और मेरे मित्रोंके ऊपर छोड़ दीजिए।

विनीत—**ग० श० विद्यार्थी**

३१ मई : १९२६ को पराड़करजीके पत्रके उत्तरमें विद्यार्थीजीने लिखा—आपका पत्र मिला। कल यहाँ पं० हरि रामचन्द्र दिवेकरके आनेकी खबर है। यदि वे आये तो श्रीयुत् जोग उनसे विवाह कृत्य करा देनेके लिए कहेंगे। जोगका कहना है कि दिवेकर महोदय इस प्रान्तमें एक मास रहेंगे। इसलिए उस अवसरपर, उन्हें बुलाकर उनसे कर्मकाण्डका काम करा लेना, अधिक अच्छा होगा। आपकी क्या राय है? विनीत—**ग० श० विद्यार्थी**। ९ जूनको पराड़करजीके ७ जूनके पत्रका उत्तर देते हुए विद्यार्थीने जो पत्र लिखा—उससे स्पष्ट है कि तब तक कर्मकाण्डीकी समस्या हल न हुई थी। एक सामवेदी विवाह करा देनेके लिए तैयार थे। पत्रके अन्तमें उन्होंने लिखा कि तिथियोंके सम्बन्धमें तुरन्त सूचना दीजिए। अन्तमें २१ जून, १६२६ को कानपुरमें पराड़करजीका तीसरा विवाह ग्वालियरकी बाल-विधवा श्रीमती सरस्वती बाईके साथ सम्पन्न हुआ। इस विवाहके अवसरकी सूचना तथा कानपुरके ४३ आमन्त्रित व्यक्तियोंकी सूची श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थीने स्वयं अपने हाथसे 'प्रताप कार्यालय'के छपे लेटर पेपरपर लिखी—

'प्रताप' कार्यालय
कानपुर
२१।६।१९२६

आज शामको ६ बजे डाक्टर मुरारी लालके बँगलेपर 'आज' पत्रके सम्पादक पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करका विवाह-संस्कार बाल-विधवा श्रीमती सरस्वती बाईके साथ होगा। जिन सज्जनों और देवियोंके नाम नीचे लिखे हुए हैं, उनसे सादर प्रार्थना है कि वे इस संस्कारके समय डाक्टर साहबके बँगलेपर पधारें और वहाँ जलपान करनेकी कृपा करें।

निवेदक—
गणेश शंकर विद्यार्थी

आमन्त्रितोंमें ४३ व्यक्तियोंके नाम हैं जिनमें पण्डित रघुबर दयाल भट्ट, पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पं० कृष्णराव फड़के, पं० रमाशंकर अवस्थी, पं० सद्गुरु शरण अवस्थी, पं० विश्वम्भरनाथ कौशिक आदि साहित्यकारोंके अतिरिक्त प्रमुख नागरिक तथा देवियाँ थीं।

विवाह सानन्द समाप्त हुआ। उसके ठीक एक सप्ताह बाद २८ जून, १९२६ को गणेशजीने पराड़करजीको विवाहके अवसरके जमा-खर्चका हिसाब लिखते हुए जो पत्र भेजा, वह अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। इससे गणेशजीके उदात्त चरित्रका तो परिचय मिलता ही है, विवाह किस सादगीसे सम्पन्न हुआ इसका भी पता चलता है। गणेशजीका पत्र इस प्रकार है—

'प्रताप' कार्यालय
कानपुर
२८।६।१९२६

मान्यवर पण्डितजी, प्रणाम।

आपका पत्र मिला। खुशी हुई। श्रीप्रकाशजीका अब क्या हाल है? कृपा करके उनके हालकी खबर एक बार और भेज दीजिए। आशा है, वे अच्छे होंगे। परमपिता उनको शीघ्र अच्छा करें। उनसे मेरा सप्रेम नमस्कार कह दीजिएगा।

मैं उस अवसरका (विवाह) हिसाब इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। मुझे जो खर्च याद आया, उसका व्योरा है। यदि कहीं कोई भूल होगी, तो बहुत बड़ी कदापि न होगी।

आशा है, आप परिवार सहित सानन्द होंगे।

विनीत—
ग० श० विद्यार्थी

प्राप्त	व्यय
१००) तारसे	५३।)।।। हरिबाबू द्वारा (खाने-पीनेकी व्यवस्थामें)
१=) बाईसे ट्रंक के लिए	२५) विधवाश्रम
५०) चलते समय	२।।-) ट्रंक
१५१=)	-)।। साबुन
	१।।।) तांगा (पहिले दिन)
	।।।–) तार काशी
	१) फूल
	१) कहार
	२०) पण्डितको
	१०) बड़े पण्डितको
	२) उनके शिष्यको
	१) तांगा (सुबह)
	४।।।≡)।। धोती जोड़ा पण्डितको
	२।।≡)।। कटोरा और लोटा
	१५≡)।। खद्दरके जोड़े और दुपट्टे
	१।) फुटकर सामान
	१४२।।=)।।।

यह रकम मनिआडरसे कल भेजी जायगी ८।≡)।

ग० १५१=)

सत्साहसके लिए प्रशंसा

पराड़करजीके इस विवाहके लिए उसके अनेक परिचित अपरिचित मित्रोंने बधाइयाँ दीं और इस बातपर हर्ष प्रकट किया कि उन्होंने अपने

दृढ़ विचारोंको कार्यमें परिणतकर आदर्श उदाहरण उपस्थित किया। काशीके एक सनातनी पत्रमें उनपर व्यंगकी बौछार भी की गयी। 'हिन्दी प्रदीप' कलकत्ताके सम्पादक श्रीलक्ष्मीकान्त भट्टने लिखा—'आपका प्रशंसनीय विधवा विवाहका संवाद सुनकर चित बहुत प्रसन्न हुआ। निश्चय-ही यह-आप सरीखे समाज सुधारक कर्त्तव्यशील दृढ़ साहसी वीर-का काम है। मुँहसे बकनेवाले बहुत होते हैं, कार्यमें परिणत करनेवाले थोड़े। मेरी आपसे सच्ची सहानुभूति है। हृदयसे आपका मंगल चाहते हैं।'

हास्यरसावतार पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने इस अवसरपर पराड़करजीको जो पत्र लिखा उसमें व्यंग-विनोदकी अद्भुत झाँकीके साथ शुभकामना व्यक्त करनेकी मार्मिक लेखन शैलीके दर्शन होते हैं—प्रिय पराड़करजी, इधर समाचारपत्रोंमें बड़ी धूम है कि आपने किसी बाल-विधवाका विधवात्व बिगाड़कर उसको सधवात्व प्रदान किया है। इस उदारता और सत्साहसके लिए आपकी प्रशंसा यदि न की जाय तो अवश्य ही आपके साथ पूर्ण न्याय न होगा। अतः मैं भी आपकी बड़ाईकर बधाई देता हूँ। आप फूलें-फलें और सुखपूर्वक संसार-यात्रामें चलें यही कामना है। आशा है आप (दम्पती) प्रसन्न और प्रफुल्ल होंगे।

भवदीय—

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

पत्नीकी बीमारी और मृत्यु

महाराष्ट्र ब्राह्मण परिवारमें प्रचलित तत्कालीन प्रथाके अनुसार विधवा विवाह करनेवाले तथा उनसे संसर्ग रखनेवालोंको जातिसे पृथक् कर दिया जाता था। इसके पूर्व कि काशीका उनका जाति समाज उन्हें बहिष्कृत करे, पराड़करजीने पंचोंको साक्षी रखकर—जिसमें पण्डित गोविन्द शास्त्री दुगवेकर आदि थे—अपनेको स्वयं जातिसे पृथक् कर लिया। इतना ही नहीं उन्होंने अपने छोटे भाई तथा परिवारपर संसर्ग-दोष न

लगे, इस निमित्त पैतृक घर छोड़ दिया और ब्रह्माघाट स्थित श्री दिनकर रावके राम मन्दिरके निकट किरायेके मकानमें रहने लगे। जिस दाम्पत्य जीवनके सुखके लिए उन्होंने विवाह किया था, उसे खण्डित करनेके लिए यहाँ भी दुर्भाग्यने उनका पीछा नहीं छोड़ा। जिस नये घरमें आकर वे रहने लगे, उसके सम्बन्धमें प्रसिद्ध था कि उसकी एक कोठरीमें भूत रहता है। उनकी श्रीमतीने कहा कि जब ऐसी बात प्रसिद्ध है तो उस कोठरीको बन्द ही रखना चाहिए। पराड़करजीने इसका प्रतिवाद करते हुए उनसे कहा कि यह केवल अन्धविश्वास है। इतना ही नहीं, उन्होंने आग्रहपूर्वक अपनी पत्नीसे कहा कि अपने हृदयसे यह शंका निकाल दो। पत्नीके मनसे भूतका भय निकल जाय, इसके लिए उन्होंने एक दिन उस भूतवाली कोठरी-को खोला और रातको वहीं सोये। पत्नी मना करती थीं, पर पराड़करजी न माने। जो हो, भूतोंकी स्थिति या उनकी प्रसिद्धि अथवा उसके मनो-वैज्ञानिक प्रभावसे, सबेरे जब पराड़करजी उठे तो देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि उनकी श्रीमतीपर भूतका प्रभाव पड़ चुका है।

उन दिनों श्री रामदासजी गौड़ प्रेतविद्याके प्रसिद्ध ज्ञाता माने जाते थे। पराड़करजी तथा गौड़जीमें घनिष्ठता थी। गौड़जीने बताया कि इन दिनों भूतोंका इन्चार्ज हरसू ब्रह्म है। उसकी पूजा और शान्तिसे ही उनकी पत्नीकी प्रेत-बाधा दूर होगी। हरसू ब्रह्मका स्थान बिहार प्रान्तमें भभुआ नामक स्थानके निकट है। अपनी पत्नीको लेकर पराड़करजी, गौड़जीके साथ उक्त स्थानपर गये। होम-पूजा आदिके बाद जब प्रश्नोत्तर होने लगे तो विदित हुआ कि उनकी पत्नीपर एक-दो नहीं पाँच भूतोंका कोप है। हरसू ब्रह्मके पण्डोंने अनेक प्रकारकी शान्ति एवं पाठ-पूजाका उपक्रम किया और बताया कि भूतोंका कोप अब शान्त हो जायगा। अभी पराड़करजीको लौटे एक सप्ताह भी न हुआ था कि उनकी पत्नीको पुनः प्रेत-बाधाका कष्ट होने लगा। इसके बाद दवा तथा चिकित्सा-उपचारके रूपमें बहुत दिनों तक ओझा तथा भूतको दूर भगानेवालोंकी झाड़-फूंक

चलती रही किन्तु कोई प्रभावकारी परिणाम न निकला, इन कटु अनुभवोंके पश्चात् पराड़करजी दुर्गा-सप्तशतीका पाठ करने लगे और यह क्रम उनके जीवनके अन्त तक चला।[1]

इस विवाहसे पराड़करजीने सामाजिक आदर्श तो उपस्थित किया किन्तु पारिवारिक एवं दाम्पत्य सुखका अनुभव न कर सके। तीसरी पत्नी भी निरन्तर रोगिणी बनी रहीं और पराड़करजीको उनकी चिकित्सा-सेवामें संलग्न रहना पड़ा। उन दिनोंकी उनकी स्थितिका सहज-परिचय माननीय श्रीसम्पूर्णानन्दजी (वर्तमान मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेश सरकार) के इस पत्रसे मिलता है—

हरि:ॐ लखनऊ
१८-११-८५

प्रिय पण्डितजी,

नमस्कार

प्रकाशजीकी जुबानी मालूम हुआ कि आपकी पत्नीकी तबीयत ज्याद: खराब है। कल उनका पत्र आया उससे और भी फ़िक्र हुई। आशा है अब वह कुछ अच्छी होंगी। आप अपने 'सिस्टम'की दवा तो कर ही रहे होंगे।[2] कोई और सिस्टम भी क्यों न देखा जाय? इस बातको आप मुझसे अच्छा समझ सकते हैं। सुना है आप भी कुछ 'पुल्ड डाउन' हो गये हैं। रोगीकी सुश्रूषा बड़ा मुश्किल काम है। ईश्वर उन्हें जल्द स्वस्थ करे तो आप कुछ दिन आराम करें। यह बहुत आवश्यक है। मैं आगामी शुक्रवार तक आऊँगा।

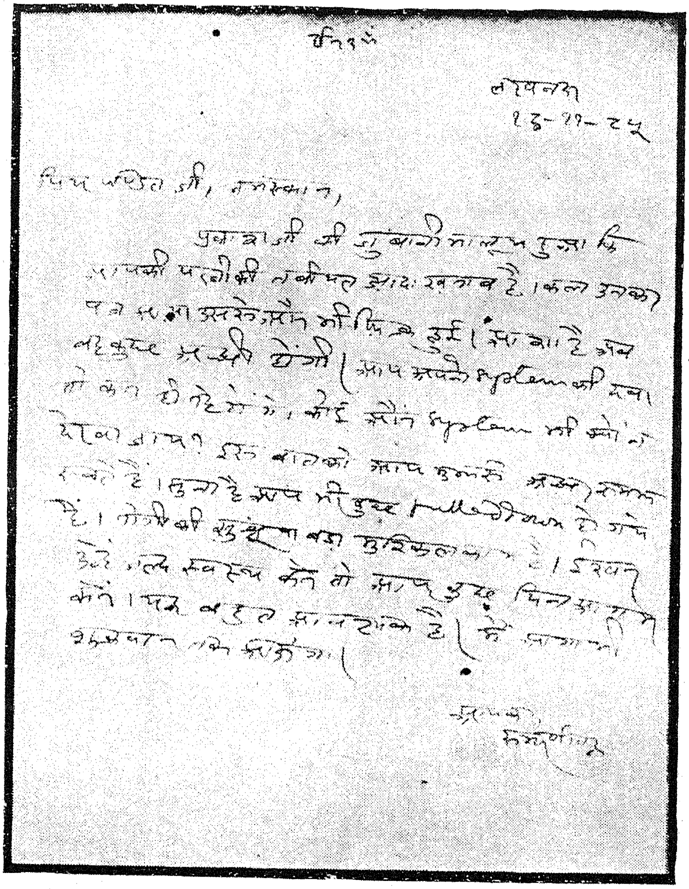
आपका—
सम्पूर्णानन्द

---

१. काशीके सुप्रसिद्ध वैद्य तथा पराड़करजीके घनिष्ठ मित्र श्री श्रीनिवास शास्त्रीसे ज्ञात।

२. पराड़करजी होमियोपैथी चिकित्साके मर्मज्ञ थे। ऐसा प्रसिद्ध था कि उनकी बतायी औषधि अचूक होती थी।

माननीय श्री सम्पूर्णानन्दका पत्र



लखनऊ
१३-११-५५

प्रिय पण्डित जी, नमस्कार,

प्रभाकर जी की जुबानी मालूम हुआ कि आपकी पत्नीकी तबीयत ज़्यादा खराब है। कल उनका [illegible] हुई। आशा है अब [illegible] अच्छी होंगी। आप अपने system की [illegible] तो [illegible] रहे होंगे, कोई और system भी [illegible] इस बातको आप दूसरोंसे अच्छा समझ सकते हैं। सुना है आप भी कुछ publication दे रहे हैं। लोगोंको [illegible] बड़ा [illegible] है। इसलिए स्वस्थ होने तो आप कुछ दिन आराम करें। यह बहुत आवश्यक है। [illegible]

[illegible]
सम्पूर्णानन्द

समवेदनाके वक्तव्य और पत्र

अभी विवाहके पूरे तीन वर्ष भी न हुए थे कि पराड़करजीको तीसरी बार पत्नी-वियोगका दुःख उठाना पड़ा। २१ जून, १९२६ को यह विवाह हुआ था और ३ मार्च १९२९ को उनकी पत्नी चल बसीं। बाबू शिवप्रसादजी गुप्तने 'आज'में 'पराड़करजीपर विपत्ति' शीर्षक[1] वक्तव्यमें इस शोकजनक घटनापर प्रकाश डालते हुए समवेदना व्यक्त की—'मुझे यह जानकर अत्यन्त खेद हुआ कि आज दिनके क़रीब १० बजे 'आज'के सम्पादक पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करजीकी तीसरी पत्नीका २६ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया। वह विधवा थीं और पण्डितजीने उनका पाणिग्रहण ३ वर्ष पूर्व किया था। वे क़रीब दो सप्ताहसे बीमार थीं। पण्डितजीके इस दुःखसे उनके सभी मित्र दुःखी होंगे। मैं इससे अधिक और क्या लिख सकता हूँ कि भगवान् पण्डितजीको असह्य दुःख सहनेके लिए शक्ति प्रदान करे और मृत आत्माको सद्गति दे। पण्डितजीकी पत्नी डेढ़ वर्षकी एक कन्या छोड़ गयी हैं। मैं पण्डितजीके साथ इस दुःखके समय अपनी और ज्ञानमण्डल तथा 'आज'की ओरसे समवेदना प्रकट करता हूँ।

'आज' में बाबू शिवप्रसाद गुप्तके इस शोकपूर्ण वक्तव्यके प्रकाशित होते ही हिन्दी साहित्यकारों तथा पत्रकार-जगत्में पराड़करजीके पत्नी-वियोगका चतुर्दिक् समाचार फैल गया। उनके शुभेच्छुओं, मित्रों तथा सहयोगियोंने शोक प्रकट करते हुए हार्दिक समवेदना प्रकट की। 'आज'के प्रथम प्रधान सम्पादक और तत्कालीन 'आज' के प्रधान व्यवस्थापक (आजकल महाराष्ट्रके राज्यपाल) श्री श्रीप्रकाशजीने व्यवस्था तथा सम्पादकीय विभागकी ओरसे संयुक्त रूपमें इस दुःखकी घड़ीमें पराड़करजीसे समवेदना प्रकट करते हुए लिखा—'हमें बड़ा खेद है कि 'आज' के योग्य और

---

१. 'आज', ४ मार्च, १९२९ : पृष्ठ ३, कालम ४।

सम्मानित सम्पादक पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करकी स्त्रीका गत रविवारको थोड़े ही दिनोंकी बीमारीके बाद एकाएक देहावसान हो गया। यह विवाह कर उन्होंने कितना सत्साहस दिखलाया था और किस प्रकारसे समाजका विरोधकर एक सिद्धान्तके लिए विवाह किया था, वह बात उनके सब मित्र जानते हैं और इसके लिए उनका हृदयसे सम्मान और प्रशंसा करते हैं। आज वे सहसा असीम दुःखमें पड़ गये हैं। हम ज्ञान-मण्डल और 'आज' के सम्पादकीय और व्यवस्था विभागकी तरफ़से उनके साथ हृदयसे समवेदना प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि ऐसे संकटके समय इससे उन्हें धैर्य और शक्ति मिलेगी जिसमें वे अपनी नयी जिम्मेदारी-का वहन भलीभाँति कर सकें और अपने सार्वजनिक तथा साहित्यिक कार्योंको पहिलेकी ही तरह जारी रख सकें। ऐसे समय साधारण सान्त्वना और सहानुभूतिके शब्द शुष्क प्रतीत होते हैं और हम अधिक नहीं कह सकते पर हम आज आपको विश्वास दिलाना चाहते हैं कि ऐसे सब मित्र जो आपको जानते हैं, आपके दुःखसे दुखी हैं। ॐ शान्तिः।[1]

श्रद्धेय डाक्टर भगवानदासजीने इस अवसरपर समवेदना प्रकट करते हुए चुनारसे लिखा—प्रिय पराड़करजी, आपके शोकसे मुझे भी शोक है। **'यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य सर्वं हराम्यहम्'** ऐसा भगवद्-वाक्य है। आपके भाग्यमें गार्हस्थ्य सुख नहीं है, सार्वजनिक सेवाका दुःख ही है। बालिकाका विशेष प्रबन्ध करना होगा। शुभचिन्तक—**भगवानदास**

पराड़करजीके मित्र तथा उनकी पत्नीकी प्रेत-बाधाके कुछ कालतक चिकित्सक श्री रामदास गौड़ने लिखा—प्रिय पराड़करजी, वन्दे। मुझे सन्देह हो रहा है कि आपकी पत्नीका देहान्त प्रेत-बाधासे ही हुआ। प्रश्न-सम्बन्धी-की ओरसे ही होना चाहिए, इसलिए मैंने कोई बात पूछी नहीं है। समाचार-पत्रोंमें यह पढ़कर हमलोगोंको बड़ा रंज हुआ। परिस्थिति समझकर यह

---

१. 'आज', ६ मार्च, १९२९ : पृष्ठ ३, कालम ३।

कहा जा सकता है कि इसमें चूक हुई है परन्तु कभी-कभी भावीकी प्रबलता भी सबके ऊपर हो जाती है। आपकी पत्नीके मामलेमें ऐसा कुछ बहुत सम्भव है।उस कन्याकी रक्षा बड़ी सावधानीसे कीजिएगा। ऐसा न हो कि माँ उसे भी ले जाय। ऐसा अक़सर होता है। उनकी मृत्युके पूर्वकी घटनाओंको विस्तारसे जाननेके लिए उत्सुक हूँ। सप्रेम—**रामदास गौड़**

हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके सभापति आचार्य पण्डित पद्मसिंहजी शर्माने अपने पत्रमें शोक प्रकट करते हुए अपनी मार्मिक लेखन शैलीसे उन्हें सब्र और सन्तोष दिलाया। गुरुकुल-कांगड़ी (बिजनौर) से फाल्गुन सोमवती अमावस तदनुसार ११ मार्च, १९२९ को उन्होंने यह पत्र लिखा—

प्रिय पराड़करजी, प्रणाम

पत्रोंमें यह पढ़कर अत्यन्त दुःख हुआ कि आपकी सह-धर्मिणीका स्वर्गवास हो गया। इस विपत्तिमें मुझे आपसे सहानुभूति और समवेदना है। दैवी दुर्घटनाका कोई प्रतिकार नहीं, इलाज नहीं, सब्र और सन्तोषके सिवाय चारा नहीं। समवेदना प्रकट करनेकी भी एक रस्म ही है।

'ग़म राह नहीं, जो साथ दीजै, दुःख बोझ नहीं, जो बाँट लीजै'

परमात्मा स्वर्गीय आत्माको सद्गति और आपको सहन शक्ति प्रदान करे, यही प्रार्थनीय है।

आपके दुःखसे दुःखित—**पद्मसिंह शर्मा**

अब इस प्रसंगको पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'के मार्मिक पत्रके साथ समाप्त करना ही समीचीन होगा। पण्डित बालकृष्ण शर्मा कानपुर-में पराड़करजीके विवाह-समारोहमें सम्मिलित हुए थे। अपने पत्रमें आपने पराड़करजीके दुःखमें दुःख प्रकट करते हुए मृत्युके सम्बन्धमें प्रसिद्ध दार्श-

निकके मतका उल्लेख किया है और कानपुरमें हुए विवाह-समारोहके दिनका संस्मरण बड़ी ही प्रभावोत्पादक शैलीमें प्रस्तुत किया है—

'प्रताप' कार्यालय, बिड़ला रोड, हरद्वार,
६ मार्च, १९२९

श्रीमान् 'आज' सम्पादकजी,

नमस्कार

आजकल मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ। अतः मुझे आज पण्डित बाबूरावजी-की धर्मपत्नीके स्वर्गवासका समाचार मालूम हो सका। समाचार पढ़कर मैं सकपका-सा गया। इस दुर्घटनाने पण्डित बाबूरावजीको जो ठेस पहुँचाई है, उसे भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकते हैं। पण्डितजी स्वयं धीर प्रकृतिके पुरुष हैं। उन्हें कोई क्या कह कर सान्त्वना दे? शरीरकी नश्वरताकी बातें ऐसे समय कर्णकटु और खिजानेवाली मालूम पड़ती हैं। वेदान्त कहना तो सभी जानते हैं; यह तो आजकल औपचारिक सान्त्वनाका एक रूप हो गया है। लेकिन जिसके दिलमें एक गड्ढा हो जाता है वही जानता है कि चिर वियोग क्या है और उसकी गहराई कितनी है। कितनी बेबसी है। मौतके आगे आदमी कितना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। किन्तु यदि जीवन-मरणकी वेला आदमी अपनी लघुताको अनुभव न करे तो शायद यह दो पैरका पशु ज़मीनपर पैर न रखे। इसी विवशताको देखकर मैं पण्डित बाबूरावजीके प्रति अपनी नम्र समवेदना प्रकट करनेका साहस करता हूँ।

इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध दार्शनिक धर्म्माचार्य 'Dean Inge का एक ग्रन्थ 'पर्सनल रेलिजन एण्ड लाइफ़ आफ़ डिवोशन' मैंने कुछ समय पहले पढ़ा था। डीनने एक स्थानपर मृत्यु और चिर-वियोगके सम्बन्धमें लिखा है—

Bereavement is the deepest initiation into the mysteries of human life. An initiation more searching and profound than even happy love.

वास्तवमें चिर-वियोग मानव-जीवनके रहस्योंकी बड़ी गहन दीक्षा है। पण्डित बाबूरावजीकी धर्मपत्नी अब इस लोकमें नहीं हैं, परन्तु आजसे तीन वर्ष पहले जब डाक्टर मुरारीलालजीके बँगलेपर हम सब लोग एकत्रित होकर विवाह-विधिको सम्पूर्ण होते देख रहे थे, तब किसीको भी यह खयाल नहीं हुआ था कि उस दिनकी वधू इतनी जल्दी महायात्रा कर जायगी। श्रीमती पराड़करजीका वह नव-सौभाग्य-कुंकुम मण्डित ललाट आज भी मेरे नेत्रोंके सामने तैर रहा है। भगवान् गतात्माको अपने चरणोंमें स्थान दें।

श्रीमान् सम्पादकजी, आप मेरी ओरसे पण्डित बाबूरावजीको धैर्य प्रदान करनेका कष्ट स्वीकार कीजिए। उनसे कहिए कि प्रान्तमें और प्रान्तके बाहर उनके कई मित्र और उनके मूक प्रशंसक उनके इस दुःखसे बहुत दुःखी हैं।

विनीत—**बालकृष्ण शर्मा**

• काशीमें क्रान्तिकारी कार्य

साढ़ेतीन वर्षोंके कारावासके बाद जब पराड़करजी कलकत्तेसे काशी आये, तब भी यहाँ आपका सम्पर्क निरन्तर क्रान्तिकारियोंसे बना रहा। एक प्रकारसे सन् १९२० से सन् १९४२ तक आप अप्रकट रूपमें बराबर क्रान्तिदलके संघटन तथा तत्कालीन क्रान्तिकारियोंके कार्योंमें सक्रिय सहयोग देते रहे। इस अवधिमें आपने काशीमें क्रान्तिदलकी स्थापना की, ब्रिटिश सरकारके क्रूर दमनके दिनोंमें 'रणभेरी' नामक क्रान्तिकारी पत्रिका निकाली और सन् १९४२ के आन्दोलनमें सैकड़ों क्रान्तिवादियोंको काशीमें आश्रय दिया तथा उनकी सारी व्यवस्था की। 'पराड़करजी उग्र राष्ट्रवादी थे और बंगालके विप्लववादियोंसे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। काशी आनेपर भी उनका यह पुराना सम्बन्ध नहीं टूटा और समय-समयपर क्रान्तिकारी

उनसे सलाह लिया करते थे।[1] पुलिसके गुप्तचर विभागको पराड़करजीके इन कार्योंका तो पता रहता किन्तु अनेक बार छापा मारने और तलाशी लेने-के बाद भी उनको प्रमाणके अभावमें गिरफ़्तार न कर सकी। कलकत्तासे आनेके बाद भी काशीमें गुप्तचर विभागकी पुलिस पराड़करजीके पीछे लगी रहती। भैरवनाथ मुहल्लेके निकट चँवरगलीसे—जहाँ पराड़करजीका निवास-स्थान था—खुफ़िया पुलिस कबीरचौरा स्थित 'आज' कार्यालय तक नित्य आते-जाते। जब तक पराड़करजी 'आज' कार्यालयमें रहते तब तक वे सामने सड़ककी पटरीपर नीमके पेड़के नीचे बैठे रहते। जब पराड़करजी कार्या-लयसे बाहर निकलते तो वे उनके पीछे हो लेते और उन्हें घर पहुँचाकर ही कहीं इधर-उधर जा पाते। इस प्रकार चौबीसों घण्टे पराड़करजीपर खुफ़िया पुलिस तैनात रहती।

खुफ़िया पुलिसका पीछा

पराड़करजीके पीछे नित्य ही खुफ़िया पुलिसके लगे रहनेका आदेश उच्च अधिकारियों तथा गुप्तचर विभागकी ओरसे था। एक दिनकी बातहै। पराड़करजीके 'आज' कार्यालय आनेके समय सादे वेशमें खुफ़िया पुलिस भी उनके पीछे-पीछे आया। पण्डितजीके कार्यालयमें दाखिल हो जानेके बाद वह 'आज'कार्यालयके सामने बायीं पटरीपर जहाँ हाल तक नीमका पेड़ था, बैठ गया। उस दिन संध्याको जब पराड़करजी कार्य समाप्त कर एक्केपर बैठे घर जाने लगे तो खुफ़िया पुलिस पीछे दौड़ा। इसपर पण्डितजीने उससे कहा—'भाई दौड़ते क्यों हो, सवारी कर लो।'[2] एक दिन पराड़करजी मौक़ा देखकर घरसे निकल आये और कार्यालय पहुँच गये। थोड़ी देर बाद ही

---

१. आचार्य नरेन्द्रदेव : 'आज' पराड़कर स्मृति अंक।

२. पराड़करजीके अन्यतम सहयोगी श्री मुकुन्दीलालजी श्रीवास्तवसे ज्ञात।

दो खुफ़िया पुलिस दौड़ते-दौड़ते 'आज' कार्यालय आये और दरवानसे पण्डितजीके आनेकी बात पूछ सामनेकी पटरीपर बैठ रहे। दरवानने पण्डितजीसे जाकर कहा कि आपको दो आदमी पूछ रहे हैं। इसपर पराड़करजी बाहर आये और दोनोंको बहुत डाँटकर कहा कि हम तुम्हारी रिपोर्ट करेंगे। इसपर दोनों खुफ़िया पुलिसने क्षमा माँगी और कहा कि भविष्यमें ऐसी ग़लती न होगी। संयोगसे एकदिन जब पराड़करजी कार्यालयसे निकले तो देखा कि दोनों खुफ़िया पुलिस नहीं हैं। झट आप प्रेसके बगलकी गलीसे होकर घर पहुँच गये। उधर जब खुफ़िया पुलिसवालोंने परेशान होकर प्रेसमें डरते-डरते पूछा तो पता लगा कि पण्डितजी घर गये। इसपर तत्काल दौड़ती हुई खुफ़िया पुलिस घबड़ाकर उनके घरके निकट पहुँच पूछने लगी कि पण्डितजी कहाँ हैं? इधर-उधर खुफ़िया पुलिसवालों-को कई चक्कर लगाते देख पराड़करजी अन्ततः घरसे निकले और पुनः लापरवाहीके लिए उन्हे डाँटा।[1]

क्रान्तिदलका संघटन

कलकत्तेसे काशी लौटनेपर पराड़करजीने अपने क्रान्तिदलके पुराने सह-योगी श्री श्रीनिवास शास्त्री तथा अन्य लोगोंके सहयोगसे महाराष्ट्र, पंजाब तथा बंगाल-बिहारके क्रान्तिकारियोंकी एक कड़ी क़ायम करनेकी कोशिश की। सन् १९२० में इसका प्रारम्भ किया गया। एक वर्षके बाद इस क्रान्ति समितिके संचालकोंने यह अनुभव किया कि सभी सदस्यों एवं सहयोगियोंके मिलने तथा एक स्थानपर एकत्र होकर विचार-विनिमयके निमित्त एक स्थानकी तलाश की जाय। इस बातपर भी गम्भीरता-पूर्वक विचार होने लगा कि दलका व्यापक और प्रभावकारी संघटन किस प्रकार किया जाय। उन दिनों निश्चित किया गया कि राजघाटके पार

---

१. 'आज' के भूतपूर्व फ़ोरमैन श्री सरयूमहाराज दीक्षितसे ज्ञात।

क़िलेके मैदानमें मन्त्रणाएँ की जायँ। तदनुसार दलके सदस्य दिनमें राजघाट क़िलेके खुले मैदानमें देशके उद्धारमें सशस्त्र क्रान्ति कर योग प्रदान करनेकी चर्चाएँ करते। क्रान्तिदलका निश्चय था कि दिनमें ही विचार-विनिमय किया जाय और वह भी कहीं आड़में नहीं, प्रत्युत खुले स्थानमें। राजघाट क़िलेके मैदानमें इस प्रकारकी अनेक बैठकें हुईं। दलके कार्योंके लिए धन प्राप्त करना भी एक समस्या थी। उन दिनों पूनाके लक्षाधिपति नारायण महाराज काशी आये हुए थे। उनके साथ प्रसिद्ध वेश्या अंजिनी बाई भी आयी हुई थीं। क्रान्तिदलकी एक बैठकमें यह निश्चय हुआ कि धनवान् नारायण महाराजका शिष्य बनकर द्रव्यकी व्यवस्था सरलतापूर्वक की जा सकती है। यह भी विचार किया गया कि उनका चेला कौन बने और वह किस प्रकार क्रान्तिदलको धनकी सहायता दे। इसी समय कुछ सदस्योंने यह आशंका प्रकट की कि यदि नारायण महाराजका शिष्य बनने वाले सदस्यने आगे चलकर नीतिमें परिवर्तन कर दिया अथवा दलकी प्रतिज्ञानुसार धनसे सहायता न की तो आख़िर किस प्रकार उसपर नियन्त्रण स्थापित किया जायगा। अन्तमें विचारके बाद यह योजना स्थगित कर दी गयी और निश्चय किया गया कि क्रान्तिदलका संघटन जन-सम्पर्क द्वारा सुदृढ़ किया जाय। इस निमित्त दो कार्य करनेका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। एक तो वाचनालय स्थापित करना और दूसरा एक चिकित्सालय खोलना। वाचनालय और चिकित्सालय दोनों ही निश्चयानुसार ब्रह्माघाटके निकट श्री दिनकर रावके राममन्दिरमें खोले गये। इस प्रकार संघटन और लोकसंग्रह द्वारा क्रान्तिदलके उद्देश्यों तथा कार्योंको व्यापक रूप देनेका प्रयत्न किया गया।

काशीके इस क्रान्तिदलके सदस्य हवाई फ़ायरसे दीयेकी लौको बुझाकर निशानेबाज़ीका अभ्यास करते और लाठी आदि चलाना सीखते थे। उनका एक उद्देश्य सेनामें क्रान्तिवादका प्रचार करना भी था। इसके लिए दलके एक प्रमुख सदस्य नाथद्वाराके राजाके यहाँ गये। उनकी सेनाके अधि-

कारीसे बातचीत हुई। सेनाधिकारीने आश्वासन दिया कि आपके कुछ सदस्योंको हम तोप चलाने तककी शिक्षाका प्रबन्ध कर देंगे। इसी योजनाके सिलसिलेमें दलके प्रमुख सदस्य श्री श्रीनिवासजी शास्त्री तीन दिनोंकी जंगल यात्रा कर वस्तरके राजाके पास गये। उनसे इस सम्बन्धमें चर्चा हुई और उन्होंने भी क्रान्तिदलके वरिष्ठ सदस्योंको उच्चतम सैनिक शिक्षणमें सहायता देना स्वीकार किया। इस प्रकार पराड़करजी तथा श्री निवासजी क्रान्तिदलके कार्यका विस्तार करने लगे।

क्रान्तिकारी श्री राजगुरुका संरक्षण

पराड़करजी तथा उनके अन्यतम सहयोगियोंके काशीस्थ क्रान्तिदलकी सबसे उल्लेखनीय और चिरस्मरणीय देन है प्रसिद्ध शहीद क्रान्तिकारी श्री शिवराम राजगुरु। ये वे ही राजगुरु हैं जिन्होंने १७ दिसम्बर, १९२८ को लाहौरमें अमर शहीद श्री भगतसिंह और श्रीचन्द्रशेखर 'आज़ाद' के साथ प्रख्यात देशभक्त लाला लाजपतरायकी मृत्युका प्रतिशोध लेनेके निमित्त डिपुटी पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट साण्डर्सकी हत्या की थी। श्री राजगुरु पिस्तौल चलाकर निशानेपर अचूक गोली मारनेमें असाधारण क्षमता रखते थे। इस प्रसिद्धिके ही कारण ये विशेष रूपसे लाहौर हत्याकाण्डके लिए बुलाये गये थे। १७ नवम्बर, १९२८ को लाला लाजपतरायका देहान्त हुआ था और उसके ठीक एक महीने बाद १७ दिसम्बरको उक्त हत्याका दिन निश्चित किया गया। इसी दिन लाहौरमें २ बजेकी बैठकके बाद हथियार बाँटे गये। श्रीचन्द्रशेखर आज़ादने माउजर पिस्तौल, भगतसिंहने आटोमेटिक पिस्तौल और राजगुरुने रिवाल्वर लिया। यही तीनों व्यक्ति हत्या करनेके लिए नियुक्त किये गये थे। क़रीब ४ बजे शामको साण्डर्स मोटर साइकिलपर बाहर निकला। जयगोपालके इशारा करनेपर राजगुरु साण्डर्सकी तरफ बढ़ा और जैसे ही नज़दीक आया, उसने गोली चलायी। साण्डर्स घायल होकर मोटर साइकिलके साथ ही नीचे गिर गया और उसका एक पैर

दब गया। इतनेमें भगतसिंह भी दौड़कर वहाँ पहुँचा और उसने कई गोलियाँ चलायीं।[1] राजगुरुकी पहली गोलीने ही साण्डर्सको मार गिराया। इस प्रकार जिस विशेष कार्यके लिए श्री राजगुरु बुलाये गये थे, उसे उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न किया।

श्री शिवराम राजगुरुका जन्म सन् १९०९ में पूनाके पास खेड़ा नामक गाँवमें छत्रपति शिवाजीके प्रपौत्र श्रीसाहूजीके राजगुरु वंशमें हुआ था।[2] छः वर्षकी बाल्यावस्थामें ही आपके पिताका देहान्त हो गया और वे अपने बड़े भाईके साथ पूनामें रहने लगे। स्वतन्त्र प्रकृतिके होनेके कारण सन् १९२४ में जब आपकी अवस्था १४ वर्षकी थी, आप घरसे निकल पड़े। पूनासे नासिक, झाँसी, कानपुर होते हुए श्रीराजगुरु काशी आये। महाराष्ट्र-से काशी तकका अधिकांश मार्ग आपने पैदल चलकर तय किया। पासमें एक पैसा न था। रास्तेमें जंगलके फल, पेड़की पत्तियाँ खाते-चबाते, मैदान या चट्टानपर सोते हुए उन्होंने बड़ी-बड़ी मंज़िलें पूरी कीं। यही नहीं, जंगल तथा पहाड़के अनेक दुर्गम रास्ते श्रीराजगुरुने रातके समय इस विशेष उद्देश्यसे पार किये कि मनका सारा डर-भय निकल जाय। काशी आकर श्री राजगुरु रामघाट स्थित औषधालयमें रहते और श्री मुकुन्दशास्त्री-जीसे संस्कृत पढ़ते थे। व्यायाम और शस्त्र चलानेका इन्हें बहुत शौक़ था। पराड़करजीने ही इन्हें सर्वप्रथम क्रान्तिदलकी दीक्षा दी। काशीमें प्रायः जबतक श्री राजगुरु रहें, पराड़करजी उनकी नियमित रूपसे आर्थिक सहायता करते रहे। एक प्रकारसे काशीमें पराड़करजी ही श्री शिवराम राजगुरुके अभिभावक थे। पराड़करजीके पत्रव्यवहारके बण्डलोंमें अबतक श्रीराजगुरुके सम्बन्धमें उनके सम्बन्धियोंसे हुआ पत्राचार विद्यमान है। काशीमें संस्कृत

---

१. प्रथम लाहौर षड्यन्त्र केसके ऐतिहासिक फैसलेमें उद्धृत मुख़बिरोंके बयानसे।

२. श्री जितेन्द्रनाथ सान्याल : सरदार भगतसिंह, पृष्ठ संख्या १५१।

अध्ययनके बाद श्री राजगुरु बरारकी व्यायामशालामें गये। उस समय पिस्तौल चलाने तथा अचूक निशानेबाजीके लिए ये प्रख्यात हो चुके थे। लाहौरमें सैण्डर्सको अपनी पहली ही गोलीका शिकार बनाकर ये काशी भाग आये थे। सरदार भगतसिंहकी गिरफ़्तारीके बाद बड़ी खोज-पड़तालसे राजगुरु पकड़े गये। सैण्डर्सकी हत्याके बाद इनकी खोजमें गुप्तचर विभाग-की पुलिसने राजगुरुके काशी निवास-स्थानपर रामघाटके औषधालयपर एक-दो नहीं, पन्द्रह बार छापा मारा। लाहौर हत्याकाण्डके बाद श्री राजगुरु जब काशी आये तो रात-दिन कहीं छिपे नहीं रहते थे, बल्कि क्रान्तिकारीदलके सदस्योंको लाठी, भाला, तलवार तथा पिस्तौल चलाना सिखाते थे। काशीके रतनफाटक मुहल्लेके धनधान्येश्वर महादेवके निकट एकान्त मैदानमें श्री राजगुरु अनेक लोगोंको शस्त्र चलानेकी शिक्षा देते। उनसे शस्त्रकी शिक्षा प्राप्त करनेवालोंमें आज भी अनेक व्यक्ति जीवित हैं। इन्हींमें एक काशीके वैद्यरत्न श्री श्रीनिवास शास्त्री हैं। बादमें श्री राजगुरु पकड़े गये और उनके मुक़दमेमें पुलिसके ज़ोर-दबाव और प्रलोभनके कारण सरकारी गवाहके रूपमें जो लोग गये उनमें काशीके गोविन्दशास्त्री पौराणिक भी थे। सन् १९३०, की ७ अक्तूबरको सरदार भगतसिंहके साथ ही श्री राजगुरुको भी फाँसीकी सजा सुनायी और २३ मार्च, १९३१ की सायं सात बजे लाहौर सेण्ट्रल जेलमें उन्होंने फाँसीके तख्तेपर झूलकर आत्मोत्सर्ग किया।

फाँसीपर टिप्पणी

सरदार भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेवको फाँसी देनेके विरोधमें सारे देशमें शोक मनाया गया। सरकार विरोधी उग्र भावनाएँ राष्ट्रके कोने-कोनेमें व्याप्त हो गयीं। हड़तालों, प्रदर्शनों और शोक-सभाओंका सारे देशमें ताँता लग गया। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीने इस अवसरपर शोकोद्गार प्रकट करते हुए कहा—'भगतसिंह और उनके साथी अमर शहीद

हो गये हैं। उनकी मृत्युसे आज लाखों व्यक्ति दुःखी हैं। मैं इन नवयुवक देशभक्तोंकी लगनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ। २५ मार्च, १९३१ को 'आज' में पराड़करजीने इस सम्बन्धमें जो मार्मिक टिप्पणी लिखी, वह इस प्रकार है—'सरदार भगतसिंह, श्री राजगुरु और श्री सुखदेव सोमवार-को संध्या समय फाँसीपर लटका दिये गये। साधारणतः फाँसी सबेरे दी जाती है, इस अवसरपर किसी कारणसे शामको दी गयी। सारे देशने एक स्वरसे—कहा जा सकता है कि स्वयं बूढ़ी भारतमाताने करुणकण्ठसे—दयाके लिए प्रार्थना की। लाहौरके क़ानूनपेशा लोगोंने अन्त तक उन्हें बचानेका यत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ। इसपर अधिक कहना-सुनना व्यर्थ है। हृदयका रक्त मुँहमें लाकर इतना अवश्य कहेंगे कि यह प्रश्न तीन आदमियोंके प्राणोंका ही नहीं था, प्रश्न था राष्ट्रकी प्रार्थनाका। वह प्रार्थना अस्वीकृत हो गयी। भारतीय आकाशमें प्रेमका जो सूर्योदय हुआ था, वह फिरसे मेघाच्छन्न हो गया। हम तो इतना ही कहेंगे कि ब्रिटिश शासकों-का हृदय बदलनेका जो प्रमाण हम ढूढ़ रहे थे, वह हमें नहीं मिला। अब भी देशमें नौकरशाही प्रथा ही प्रबल है।'[1]

महान् क्रान्तिकारी होते हुए तथा स्वयं श्री राजगुरुके शिक्षण एवं पोषणमें अभिभावकका कर्त्तव्य-निर्वाह करनेवाले पराड़करजीको श्री राजगुरु-की फाँसीकी घटना कितनी मर्मवेधी लगी होगी, इसका सहज अनुमान किया जा सकता है। उपर्युक्त टिप्पणीसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। उसका 'हृदयका रक्त मुँहमें लाकर.....' वाक्य-खण्ड विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है। विदेशी सरकारके उग्र दमनके दिनोंमें क़ानूनके शिकंजेसे बचते हुए इससे अधिक लिखना सम्भव भी न था।

---

१. 'आज', २५ मार्च, १९३१, पृष्ठ सख्या ३।

रणभेरीका प्रकाशन

पराड़करजीकी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, पत्रकारिता तथा महात्मा गान्धीके अहिंसात्मक राष्ट्रीय-आन्दोलनके कारण अन्तर्मुखी हो गयी थी। राष्ट्रीय-आन्दोलनके क्रूर दमनके अवसरोंपर जब-जब समाचारपत्रोंपर सरकारी प्रतिबन्ध लगा दिये जाते थे, तब-तब पराड़करजीकी लौह लेखनी क्रान्तिकारी पत्रिकाओं और परचोंके रूपमें, साम्राज्यवादियोंके विरुद्ध आग उगला करती थी! सन् १९२९–३०, १९३२–३४ तथा १९४२के राष्ट्रीय-आन्दोलनोंके अवसरोंपर जब ब्रिटिश सरकारने स्वतन्त्र समाचारों और विचारोंके प्रकाशनपर रोक लगा दी थी, पराड़करजीने अपने अन्य सहयोगियोंके साथ 'रणभेरी', 'शंखनाद', 'तूफ़ान' आदि क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ निकालनेमें महत्त्वपूर्ण योगदान कर देशमें राष्ट्रीय-आन्दोलनको अभूतपूर्व शक्ति, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दिया। बीसवीं शताब्दीके प्रथम और द्वितीय दशकोंमें कलकत्तेमें महर्षि अरविन्द और उनके चन्द्रनगरके क्रान्ति दलमें पराड़करजीके क्रान्तिकारी कार्यों तथा उनकी साढ़े तीन वर्षकी नज़रबन्दीसे हम पहले ही परिचित हो चुके हैं। सन् १९२० से सन् १९४२ की अवधिमें भी उनकी क्रान्तिकारी भावना अपरिवर्तित और अखण्डरूपमें विद्यमान रही। इस प्रकार, हम देखते हैं कि पराड़करजीने देशकी स्वतन्त्रताके निमित्त जिस क्रान्तिकारी आन्दोलनका व्रत लिया था, वह स्वाधीनताकी लक्ष्य-सिद्धिके साथ ही पूरा हुआ। 'रणभेरी' और 'शंखनाद' जैसे पत्रोंकी योजना तथा उनका प्रकाशन, किसी क्रान्तिदलके रहस्यमय तथा विस्फोटक कार्योंसे कम खतरनाक न था।

'रणभेरी'का इतिहास

सन् १९३० के नमक-आन्दोलनका ज़माना था। 'आज'में पराड़करजीकी उग्र राष्ट्रीयता तथा ब्रिटिश सरकारकी दमन-नीतिकी कटु आलोचनाके कारण ज्ञानमण्डल यन्त्रालय और 'आज' समाचारपत्र—दोनोंसे दो-दो

हज़ार रुपयेकी ज़मानत माँगी गयी। 'आज' तथा ज्ञानमण्डलके संस्थापक बाबू शिवप्रसाद गुप्त बुलाये गये। उन्होंने स्थितिपर तत्काल विचार कर कहा—'मैं सरकारके खज़ानेमें फूटी कौड़ी न दूँगा।' छः महीनेके लिए सरकारी आर्डिनेन्स निकला था। इसमें प्रेसपर तो प्रतिबन्ध था किन्तु साइक्लोस्टाइलसे छापनेपर कोई रोक न थी। परिणामस्वरूप 'आजके समाचार'के नामसे छोटा-सा पत्र राष्ट्रीय-आन्दोलन तथा सरकारी दमनकी खबरें प्रकाशित करने लगा। यह देखकर सरकारी अधिकारियोंने दो सप्ताह बाद साइक्लोस्टाइलपर अखबार छापनेपर भी आर्डिनेन्स लगा दिया। फलतः 'आजके समाचार'का प्रकाशन बन्द हो गया। ज्ञानमण्डलसे साइक्लोस्टाइल मशीनकी बिक्री भी दिखा दी गयी। इसीके दूसरे दिनसे 'रणभेरी' नामक क्रान्तिकारी गुप्त पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। पराड़करजीकी लौह लेखनी और हृदयकी आग 'रणभेरी'के रूपमें देशके असंख्य लोगोंके हृदयोंमें भारतीयोंकी आज़ादीके लिए अपना सर्वस्व दे देनेकी माँग करती थी। कितने ही अंक साइक्लोस्टाइलपर उन्हींकी हस्त-लिपिमें लिखे प्रकाशित हुए थे जिनके लिए उस समय वर्षोंका कठिन कारावास मिल सकता था किन्तु क्रान्तिदलके प्रमुख कार्यकर्त्ता पराड़कर भला पुलिसकी पकड़में कैसे आते ?

सर्वप्रथम 'रणभेरी' सन् १९२९-३०के राष्ट्रीय आन्दोलनके अवसरपर प्रकाशित हुई। 'आज' कार्यालयके दफ़्तरीखानेमें साइक्लोस्टाइलपर वह छपा करती थी। इसके छापनेके समय बड़ी सतर्कता रखी जाती थी। पराड़करजीके छोटे भाई श्री माधव विष्णु पराड़कर ज्ञानमण्डल यन्त्रालयके व्यवस्थापक थे। कार्यालयमें किसी भी संदिग्ध व्यक्तिके प्रवेशके साथ ही ये 'रणभेरी'के कार्यकर्त्ताओंको सावधान कर देते थे। बात यह थी कि उनके टेबुलमें बिजलीकी घण्टी लगी थी जिसका सम्बन्ध उस कमरेसे था जहाँ रणभेरी छापी जाती थी। उनके घण्टीका बटन दबाते ही सबलोग सावधान हो जाते थे। यही कारण था कि पुलिस तथा गुप्तचर विभागकी

कड़ी नज़रके होते हुए भी 'आज' कार्यालयमें 'रणभेरी' कभी पकड़ी न जा सकी। यह क्रम दो महीने तक चला। इसके बाद 'रणभेरी' छापनेकी मशीन मैदागिन स्थित रेवाबाई धर्मशालाके एक किरायेके कमरेमें ले जाकर रखी गयी। श्रीरामस्वरूप दफ़्तरी यहाँ उसे छापते थे और 'आज'के वर्तमान दफ़्तरी श्री अब्दुलहक उसे बनारसी वस्त्रके रेजेके रूपमें बाहर ले जाकर लक्खी चबूतरेके वितरण केन्द्रपर पहुँचा देते थे। पराड़करजी, श्रीदामोदरदास, श्रीदुर्गाप्रसाद खत्री आदि रणभेरीके प्रकाशन तथा वितरण-की विभिन्न योजनाएँ बनाते थे। 'रणभेरी'में पराड़करजीके अतिरिक्त सर्वश्री रामचन्द्र वर्मा, दुर्गाप्रसाद खत्री, दिनेशदत्त झा, उमाशंकरजी, कालिका-प्रसादजी आदि नियमित रूपसे लिखा करते थे और उसके निमित्त सामग्री संकलित एवं सम्पादित किया करते थे। इनमें सबसे सुन्दर हस्तलिपि पराड़करजीकी थी, इसीलिए 'रणभेरी' की अधिकांश लेख सामग्री उन्हींकी लिखी होती थी।

'रणभेरी'का स्वरूप

'रणभेरी'का आकार फुलिस्केप साइज़का रहता था। इसके दैनिक अंक दो पृष्ठके हुआ करते थे और रविवारको इसका साप्ताहिक संस्करण चार पृष्ठोंका होता था। सम्पादकका नाम सीताराम था और प्रकाशक थे पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, कोतवाली, बनारस। इसका मूल्य था एक पैसा। 'रणभेरी' पत्रिका तथा प्रेसका पता लगानेमें पुलिसने एड़ी चोटीका पसीना एक कर दिया किन्तु उसे सफलता न मिली। पुलिसकी नज़रसे बचनेके लिए इसके देशभक्त साहसी और बुद्धिमान् संयोजक एक दिन एक स्थान-पर रणभेरी छापते तो दूसरे दिन ही रणभेरी कार्यालय कहीं और स्थानान्तरित हो जाता था। इसका संयोजन, सम्पादन और प्रकाशन गुप्त एवं क्रान्तिकारी दलोंके कार्योंके समान होता था। विभिन्न कार्य-कर्त्ताओंको कार्य सौंप दिये जाते थे किन्तु कतिपय शीर्षस्थ लोगोंके

अतिरिक्त किसीको इसका पता भी नहीं रहता था कि इस कार्यमें अन्य कौन-कौन लोग हैं और उनके ज़िम्मे कौन-सा काम सौंपा गया है। प्रत्येक व्यक्ति सौंपे गये अपने कार्यका दत्त-चित्त होकर सम्पादन करता था। रण-भेरीके सम्पादन-प्रकाशनकी गोपनीयताके निर्वाहका यह भी एक प्रमुख कारण था। सन् १९३० में पराड़करजीकी हस्तलिपिसे स्टेंसिल की गयी और साइक्लोस्टाइलपर छापी गयी रणभेरीके १४ अगस्तका दैनिक अंक इस प्रकार है—

रण-भेरी

सम्पादक—सीताराम मूल्य एक पैसा

काशी, भादो बदी ५, गुरुवार, सं० १९८७ वि० ता० १४ अगस्त, १९३० ई०

विदेशी कपड़ा

खबर है कि काशी-नये चौकके विदेशी कपड़ेके कुछ व्यापारी कांग्रेस-की मुहर लगी गाँठोंको खोलकर विदेशी कपड़ा बेचनेकी फिक्रमें हैं। वे याद रखें कि इसमें उन्हें हरगिज़ कामयाबी न होगी। काशीसे देश-भक्ति अभी उठ नहीं गयी है। अपने स्वार्थके सामने देशके गलेपर छुरी चलानेवालोंको दण्ड देनेमें समाज समर्थ है। साथ ही स्वयंसेवक भी पिकेटिंग करते-करते जान तक दे देनेको तैयार हैं।

कपड़ेका बहिष्कार

रणभेरीके पाठकोंको मालूम है कि इस समय विदेशी कपड़ेका बहि-ष्कार ही हमारा सबसे बड़ा शस्त्र है। भारतवर्षका खून चूसकर यहाँके जुलाहोंके अँगूठे काटकर अंग्रेज़ोंने यह व्यापार हथियाया है और इसके ज़रिये हर साल साठ करोड़ रुपया इस देशसे ले जाते हैं। विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेसे हमारा बल बढ़ेगा और उनका घटेगा। हम आशा करते हैं कि इस समय कोई दूकानदार विलायती कपड़ा बेचकर देशद्रोह न करेगा।

मैजिस्ट्रेटके घरपर धरना

काशी चौक वार्डके बालसंघके सदस्योंने बुधवारसे सिटी मैजिस्ट्रेट बा. घनश्यामदासके द्वारपर अनशन करते हुए धरना देना शुरू कर दिया है। संघके अधिनायक बालक बदरीनाथ-को गिरफ़्तार हुए २४ दिन हो गये। धरना देनेवाले बाल-वीरोंका कहना है कि हमारे अधिनायकको सज़ा दे दो या छोड़ दो। बदरीनाथको राक्षस लोग हवालातमें सड़ा रहे हैं। उससे माफ़ी मँगानेके लिए उस-पर तरह-तरहके अत्याचार किये जा रहे हैं पर वीर बालक दृढ़ है। शाबास ! अभिमन्युकी मातृभूमि अभी निःसन्तान नहीं हुई है !

बहिष्कारका असर

कांग्रेसके विदेशी वस्तु बहिष्कार आन्दोलनका बम्बईपर ऐसा गहरा असर पड़ा है कि विदेशी कपड़ा, लोहा, और बर्तन, दवा, मोटरकार आदि बेचनेवाली बड़ी-बड़ी फ़र्मोंको मजबूर होकर अपने कर्मचारियोंको जवाब देना या उनकी तनख्वाह घटाना पड़ रहा है। यूरोपियन कर्मचारियोंमेंसे अधिकांश एक-एक महीनेकी तनख्वाह देकर बर्खास्त कर दिये गये हैं। कुछको इंग्लैंड तकका सफ़र खर्च देकर विदा कर दिया। इन फ़र्मोंके बर्खास्त यूरोपियन और हिन्दुस्तानी कर्मचारियोंकी बुरी हालत है। बेचारे मारे-मारे फिर रहे हैं। तो भी बम्बईमें अत्याचार घट नहीं रहे हैं।

हवालातमें स्वयंसेवकोंपर मार

बनारस-बड़ागाँवमें ब्रह्मचारी राम-देव झा, नायक महावीर सिंह और नायक देवीप्रसाद गिरफ़्तार कर लिये गये। दारोगाने उन्हें २४ घण्टे हवालातमें रखकर खूब पीटा।

पुलिस अधिकारियोंको चकमा

राउण्डटेबुल कानफरेन्सके अवसरपर रणभेरीका प्रकाशन बन्द हो गया। सन् १९३२ के अन्तमें इसके पुनः प्रकाशनकी योजना बनी। निश्चय हुआ कि साइक्लोस्टाइलके स्थानपर अब इसे एक छोटे-से प्रेसकी व्यवस्था कर प्रकाशित किया जाय। तदनुसार काशीके मैदागिन स्थित सत्यनाम

प्रेसकी एक ट्रेडिल मशीन पसन्द की गयी। जब 'आज' के तत्कालीन फोरमैन श्री सरजू महाराजको उक्त मशीन देखकर १५०)-२००) तक खरीद लेनेको कहा गया तो उन्होंने इसका निरीक्षण-परीक्षण किया। ट्रेडिलमें छपाईके समय आवाज होती देख एक हैण्ड प्रेस खरीदनेका निश्चय हुआ। ऐसा हैण्डप्रेस राजघाट स्थित जगन्नाथ प्रेस तथा ठठेरी बाज़ारके एक प्रेसको देख खरीदा गया। इस हैण्डप्रेसको बोरेमें भरकर तीन भागमें लाया गया। 'आज' कार्यालयसे दो टाइप केस रणभेरी छापनेके लिए भेजे गये। इलाहाबादका ढला पुराना टाइप संध्याको बोरेमें भरकर ले जाया गया। इस प्रकार प्रेसकी व्यवस्था कर काशीके प्रसिद्ध मणिकर्णिका घाटके कुण्डके ठीक ऊपर वाले तिलस्मी ढंगके मकानमें रणभेरी प्रेसकी स्थापना हुई। इसी मकानमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री चन्द्रशेखर 'आजाद' के दलके क्रान्तिकारी श्री के० एन० रामन्ना आदि रहते थे। इन दिनों रणभेरीके प्रकाशनका दायित्व श्री काशी विद्यापीठके श्री विश्वनाथ शर्मापर था। वे ही इस क्रान्तिकारी पत्रिकाके लिए लेख-सामग्री पराड़करजी आदिसे लेकर देते और कागज़की भी व्यवस्था करते थे। यह क्रम चल ही रहा था कि एक दिन रणभेरी प्रेसमें चेतावनी देते हुए कोई व्यक्ति द्वारपर एक पुरजा छोड़ गया। इसमें लिखा था—'तुम लोगोंका सारा हाल मालूम हो गया।' यह चेतावनी मिलते ही रणभेरी प्रेसका सारा सामान—मशीन, 'कम्पोज-मैटर' तथा टाइप श्री सरजू महाराजके घर लाया गया। बादमें यह प्रेस नन्दनसाहुकी गली स्थित श्री शिवप्रसादजी गुप्तके एक भुतहे मकानमें ले जाया गया। यहाँ रणभेरी तथा कांग्रेसके गुप्त परचे सोलह महीनों तक छपते रहे। यहाँ एक बार पुलिसकी तलाशी आयी पर अँधेरी कोठरीमें मिट्टीमें गाड़ा हुआ न तो हैण्डप्रेस कहीं दिखाई पड़ा और न बगलके कार्यालयमें छपी हुई रणभेरीकी प्रतियाँ ही पुलिस बरामद कर सकी। जब पुलिस विफल मनोरथ होकर लौटी तो गलीमें उसी समय ऊपरसे रणभेरीकी प्रतियाँ गिरायी गयीं।

सन् १९३२–३४ के राष्ट्रीय आन्दोलनके समय सरकारने काँग्रेस सम्बन्धी समाचारोंपर अनेक कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये थे। फलतः कांग्रेसी गश्ती चिट्ठी, गुप्त परचे, अध्यक्षीय भाषण तथा अन्य क्रान्तिकारी साहित्य छापनेके लिए एक गुप्त प्रेस खोला गया। इस प्रेसके लिए काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्ता श्री गौरीशंकर मिश्रने ब्रह्माघाटपर एक भुतहा घर ठीक किया। यहींसे 'शंखनाद' नामका एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता था जो 'रणभेरी' की पूर्ति करता था। इस पत्रके लिए भी पराड़करजी बराबर लिखते थे। एक बार 'शंखनाद' की खोजमें पुलिसने 'आज' कार्यालय स्थित ज्ञानमण्डल प्रेसपर धावा किया। कम्पोजिंग विभागके प्रत्येक कम्पोजिटरोंके पास दो-दो पुलिस तैनात कर दी गयी। 'आज' के तत्कालीन फोरमैन श्री सरयू महाराजके पास गुप्तचर विभागके इन्सपेक्टर तथा पुलिस दरोगा आ खड़े हुए और आज्ञा दी कि काम बन्द कर दिया जाय। इस पर श्री सरजू महाराजने कहा कि आप व्यवस्थापकजीके पास जाइए। जब उनका आदेश होगा तभी काम बन्द होगा। इतनेमें ही पराड़करजी वहाँ आ गये और उनसे कहा—'आप काम क्यों बन्द करते है ? आप अपना काम कीजिए और हमारा काम होने दीजिए। यदि आप हमारा काम बन्द ही कराना चाहते हों तो लिखकर दीजिए।' इसपर पुलिस अधिकारी चुप हो गये और इधर-उधर तलाशी लेकर चलते बने। संयोगकी बात। उस समय सरजू महाराजकी जेबमें पराड़करजीका 'शंखनाद' के लिए लिखा क्रान्तिकारी लेख तथा 'शंखनाद' की छपी प्रति दोनों ही मौजूद थी। 'आज' कार्यालयके विभिन्न कमरोंकी तलाशी लेती हुई पुलिसको इसका ध्यान तक न रहा।

सन् '४२ की क्रान्तिमें

सन् १९४२ में 'रणभेरी' के साथ-साथ देशके मूर्धन्य क्रान्तिकारियोंके गुप्त निवासकी जैसी व्यवस्था पराड़करजीने कर सन्' ४२ के क्रान्ति आन्दो-

लनको सफल बनाया, वह भारतीय स्वाधीनताके इतिहासमें चिरस्मरणीय है। ज्ञातव्य है कि सन्' ४२ की क्रान्तिमें भाग लेकर प्रसिद्ध नेता श्री जयप्रकाशनारायणने जेलसे गुप्त रूपमें निकलकर वाराणसीमें पराड़करजी तथा उनके सहयोगियों द्वारा क्रान्तिकारियोंके लिए नियत गुप्त मकानमें निवास किया था। प्रसिद्ध नेता बाबा राघवदास, श्री चन्द्रशेखर अष्ठानाके अतिरिक्त बिहार तथा उत्तरप्रदेशके पूर्वी जिलोंके दर्जनों क्रान्तिकारी और फ़रार लोगोंके गुप्त निवास एवं भोजनादिकी व्यवस्था पराड़करजीने की थी। इस निमित्त काशीकी भूल-भुलैया जैसी गलियोंमें अनेक मकान रहस्यमय ढंगसे लिये गये थे। कुछके विवरण इस प्रकार हैं—काशीके घासी टोला मुहल्लेमें एक मकान 'आज' के तत्कालीन कम्पोजीटर श्री शिवकुमारने बनारस काटन मिलके मजदूर सोहनसिंह बनकर किराये-पर लिया। इसी मकानमें सन्' ४२ में बहुत दिनों तक रणभेरी प्रेस रहा। चंवरगलियामें श्री मल्लीजी वैद्यका मकान गजेन्द्र सिंहके नामसे कि‍रायेपर लिया गया। जेलसे भागकर बनारस आनेपर प्रसिद्ध नेता श्री जयप्रकाश नारायण यहीं गुप्त रूपसे कुछ समय तक रहते थे। यह स्थान सन्' ४२ के क्रान्तिकारियोंका अड्डा था। बादमें यहीं बाबा राघव-दास, श्री चन्द्रशेखर अष्ठाना तथा अन्य बहुतसे फरार लोग रहते थे। इन दो मकानोंके अतिरिक्त पराड़करजीने अपने निवासस्थान पथरगलिया मुहल्लेका एक एकान्त बाड़ा भी क्रान्तिकारियोंके निवास तथा कार्यके लिए किरायेपर लिया था। यह बाड़ा श्री कन्हैयालालजी गोरका ही था जिनके मकानमें स्वयं पराड़करजी रहा करते थे। इसी बाड़ेमें बादमें घासीटोला वाले मकानसे रणभेरी प्रेस आ गया था और यहीं रणभेरी छपती थी। इन सभी स्थानोंमें सन्' ४२ में लगभग चालिस क्रान्तिकारी रहते थे। इनके निवासके अतिरिक्त उनकी भोजन व्यवस्थाका सारा भार पराड़करजी-पर ही था। क्रान्तिकारी कार्योंमें अपने पुराने सहयोगी श्री श्रीनिवास शास्त्रीसे पराड़करजी बीमार फ़रारोंकी चिकित्सा कराते। आशय यह

कि इन क्रान्तिकारियोंकी आवश्यकताओंकी प्रायः समस्त व्यवस्था स्वयं पराड़करजी करते थे।

सन् '४२ की क्रान्तिके दिनोंमें जब 'आज' का प्रकाशन सरकारी उग्र दमन नीतिके विरोधमें बन्द कर दिया गया था, रणभेरीके प्रकाशनसे कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं तथा सामान्य जनतामें स्वाधीनता आन्दोलनके कार्य और उत्साहको निरन्तर सजीव रखा गया। पुलिस अधिकारी क्षुब्ध होकर 'रणभेरी' का रहस्योद्‌घाटन करनेमें जी-जानसे लगे। बड़ी कोशिशके बाद उन्हें इसमें सफलता भी मिल गयी। सन्' ४२ में 'रणभेरी' प्रेसपर पुलिसने छापा मारा और सम्बद्ध लोगोंको गिरफ़्तार किया। पुलिस अधिकारियोंने बहुत प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पराड़करजीको भी—जो वस्तुतः इसके मुख्य कर्त्ता-धर्ता थे—इस मामलेमें फँसाकर गिरफ़्तार कर लिया जाय किन्तु प्रमाणके अभावमें सब कुछ जानते हुए भी, विवश रहे। जिस दिन 'रणभेरी' प्रेस पकड़ा गया, उसी दिन शामको 'रणभेरी' प्रकाशनके अन्यतम कार्यकर्ता श्री दुर्गाप्रसाद खत्रीने अपने लहरी प्रेससे 'रणभेरी'का अंक निकाला और घोषणा की कि 'रणभेरी' तो आज़ाद है। सदा आज़ाद रहेगी। रणभेरी बजती रहेगी। पुलिसने जिस रणभेरी प्रेसको पकड़ा वह हमारी एक शाखा है।'

अन्त तक रहस्य बना रहा

रणभेरी पकड़े जानेकी पृष्ठभूमिकी चर्चा करते हुए श्री कन्हैयालालजी गोरने—जो स्वयं इस मामलेमें गिरफ़्तार हुए थे—लेखकको निम्नलिखित विवरण बताया—सन् १९४२ के क्रान्तिकारी दिन थे। बलिया तथा बिहारसे क्रान्तिकारियोंका दल तोड़-फोड़कर काशी आया। उन दिनों पराड़करजी मेरे मकानमें ही रहते थे। इस मकानके सामनेकी गलीमें मेरा एक बाड़ा है। पराड़करजीने इसीमें क्रान्तिकारियोंके निवासकी व्यवस्था की थी। कुछ क्रान्तिकारी यहाँ थे और अन्य चँवरगलियावाले मकानमें

रहते थे। उक्त बाड़ेमें रणभेरी प्रेस था। दो-तीन व्यक्ति इसे छापते थे। इनके नाम थे—सर्वश्री शिवनाथ, सीताराम, मगनसिंह। श्री गौरीशंकरजी मिश्र रणभेरीके लिए कागज़की व्यवस्था करते और पराड़करजीसे लेखादि सामग्री लाकर देते थे। 'आज'का एक पुराना समाचारपत्र वितरक इसके वितरणकी व्यवस्था करता। खुफिया पुलिस रणभेरी प्रेस तथा उसके कार्यकर्त्ताओंको पकड़नेके लिए बराबर पीछे लगी रहती किन्तु कुछ पता न लग पाता था। एक दिन पुलिसने मुहल्लेके एक व्यक्तिको फोड़ लिया। श्री भाटिया और श्री ब्रह्मा सिंह उन दिनों बनारस खुफिया पुलिसके प्रसिद्ध अधिकारी थे। मुझे एक दिन पता लग गया कि आज पुलिसका छापा आनेवाला है। लोगोंको सतर्क किया गया। मैंने तत्काल पराड़करजीको सारी स्थिति बता दी। पण्डितजी उठे और झट लैम्प जलाकर रणभेरी तथा क्रान्तिदल सम्बन्धी सभी कागज़-पत्र तत्काल भस्म कर दिये। इतनेमें पुलिस आ चुकी थी। मुझे पुलिसने बुलाया। बाड़ेमें कौन रहते हैं और क्या करते हैं—यह पूछा गया। मैंने बताया कि मैंने मुहल्लेवालोंकी दो गवाही ले तथा कागज लिखवाकर और यह समझकर कि कलकत्तेसे भागकर आये हैं, इन्हें रहनेका स्थान दिया। मैं क्या जानूँ कि वे क्या करते हैं! पुलिस अधिकारियोंने बहुत चाहा कि पराड़करजीका नाम बता दिया जाय और स्वीकार किया जाय कि उन्हींकी प्रेरणासे रणभेरीका काम चलता रहा है। पर, मैंने इसे अस्वीकार किया। पहले ही बात तय हो चुकी थी कि पुलिसके हाथ पकड़ जानेपर क्या होगा। निश्चय किया गया था कि बलियाके एक श्रीसिंहका नाम बता दिया जाय और उन्हींपर रणभेरीका पूरा दायित्व डाला जाय। गोरजीने तदनुसार ही किया। बादमें बलियाके श्रीसिंह बहरे और गूँगे बन गये जिससे 'रणभेरी'के रहस्यका पता न चल सका। इसी प्रसंगमें श्री गौरीशंकर मिश्र भी पकड़े गये थे। गिरफ़्तार दो व्यक्तियोंने पुलिस अधिकारियोंके समक्ष बयान दिया कि यही हमें रणभेरी छापनेके लिए कागज़ लाकर देते थे। इसपर श्री गौरी-

शंकर मिश्र तथा मुझे पुलिसने गिरफ़्तार कर लिया और महीनों तक नज़रबन्द रखा। पराड़करजीको भी इस मामलेमें फँसानेके लिए प्रबल प्रयत्न हुआ, पर वे इसमें सफल न हो सके।

क्रान्तिकारियोंकी सहायता

इस प्रकार रणभेरी, शंखनाद आदि क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादन-लेखन तथा प्रकाशनकी गुप्त योजनाओंमें पराड़करजीकी वही मूल क्रान्तिकारी भावना कार्यरत थी, जो बीसवीं शताब्दीके प्रथम दशकसे उनके हृदयमें आन्दोलित हो रही थी। काशीमें 'आज'का सम्पादन करते हुए भी वे सदा क्रान्तिकारियोंकी सहायता करते थे और देशके क्रान्तिकारी आन्दोलनके विषयमें निरन्तर चर्चा करते। ऐसी ही एक चर्चाका संस्मरण काशी संस्कृत विश्वविद्यालयके प्राध्यापक श्री अनन्तशास्त्री फड़केके शब्दोंमें सुनिए—'जिस दिन पराड़करजीको ज्ञात हुआ कि मैं पूनासे आया हूँ और पूनाका ही हूँ, उसी दिनसे वे पूनाकी अनेक बातें मुझसे पूछा करते थे। रैंड साहब जिनकी गोलीके शिकार हुए उन चाफेकर बन्धु, नासिकके क्रान्तिकारी श्री अनन्त कान्हरे एवं श्री लोकमान्य तिलकके सम्बन्धमें वे साक्षात् दृष्ट बातोंको पूछा करते थे। श्री चाफेकर बन्धुके सम्बन्धमें कुछ वृद्धोंसे सुनी हुई बातें बताता था परन्तु श्री अनन्त कान्हरेका एक चचेरा भाई मेरे साथ पढ़ता था। उसने क्रान्तिकारियोंकी अनेक साक्षात् दृष्ट बातें बतायी थीं। उनकी ही बातें मैं उन्हें सुनाता था।'

पराड़करजी क्रान्तिकारियोंकी अत्यन्त हार्दिकतासे सहायता करते थे। इस सम्बन्धकी एक घटना पराड़करजीके साथ हजारीबाग जेलमें नज़रबन्द क्रान्तिकारी श्रीभूपेन्द्र चक्रवर्तीने मुझे इस प्रकार बतायी—सन् १९३४ की बात है। मैं दक्षिणेश्वर षड्यन्त्र केसमें सात वर्ष सजा काटकर जेलसे फरार था। उन्हीं दिनों मैं काशी आया। पराड़करजीसे मिलने मैं उनके चँवरगलिया स्थित मकानपर गया। पुलिस मेरे पीछे लगी थी। जब मैं

पहुँचा तो उस समय पराड़करजी पूजा कर रहे थे। मैंने अपना नाम बताकर तत्काल मिलनेकी इच्छा प्रकट की। मुझे भय था कि तनिक देर होते ही कहीं निरन्तर पीछा करनेवाली पुलिस मुझे गिरफ़्तार न कर ले। मेरा नाम सुनते ही पराड़करजी पूजा छोड़कर नीचे आये और मुझे ऊपर अपने साथ ले गये। पास बैठाया और चाय मँगवायी। मुझसे कहा—भाई पाँच मिनटमें पूजासे निवृत्त हो लूँ। जब तक मैंने चाय-जलपान किया; पराड़करजीकी पूजा समाप्त हो चुकी थी। जब उन्हें मैंने बताया कि मुझे आर्थिक सहायता चाहिए तो वे बोले—'थोड़ी बहुत हो तो मैं स्वयं कर सकता हूँ। अधिककी आवश्यकता हो तो उसकी व्यवस्था करनी होगी।' मैंने कहा—'आपको कष्ट न होना चाहिए।' फिर मेरी स्थिति समझकर वे बोले—मैं तुम्हें इस संकटमें खाली हाथ कैसे जाने दे सकता हूँ? मैं तुम्हें निराश्रित नहीं जाने दूँगा। थोड़ी देर बाद वे मुझे परदेवाले इक्केमें बैठाकर सेवा उपवन (नगवा) बाबू शिवप्रसादजी गुप्तके पास ले गये। वहाँ मैंने भोजन किया। श्री शिवप्रसादजी गुप्तने मुझसे क्रान्तिकारी आन्दोलनकी गतिविधि समझी और तत्सम्बन्धी अनेक बातें पूछीं। चलते समय उन्होंने चार सौ रुपये मुझे दिये। मैं उसी परदेवाले इक्केमें बैठकर सारनाथ आया। सन्ध्यावाली जिस गाड़ीसे मैं जाना चाहता था, वह छूट चुकी थी। मेरे सम्मुख एक कठिन प्रश्न था—रात कहाँ काटी जाय? कुछ विचारकर मैं स्टेशनसे सारनाथ संग्रहालयकी ओर चला। उन दिनों स्वर्गीय राखाल बाबूके पुत्र श्रीबनर्जी सारनाथ संग्रहालयके अध्यक्ष थे। वे नगरमें रहते थे। जब चपरासीसे मैंने उनके बारेमें पूछा तो उनका निकट सम्बन्धी समझकर उसने एक कमरेमें मेरे ठहरनेकी व्यवस्था कर दी। रात मैंने वहीं बितायी और सबेरेकी गाड़ीसे रवाना हुआ। ब्रिटिश सरकारके क्रूर दमन तथा राष्ट्रीय आन्दोलनके उन क्रान्तिकारी दिनोंमें पराड़करजीने जिस आत्मीयतासे मेरी सहायता की, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। उस दिन यदि पराड़करजीने मेरी रक्षा न की होती तो मैं पुलिसके चंगुलसे कदापि न

बच पाता। विदा होते समय पराड़करजीने कहा था—जब कभी आवश्यकता हो, हमें स्मरण कीजिएगा।' उनके शब्द भला कभी विस्मृत हो सकते हैं!

पराड़करजीने देशमें क्रान्तिकारी कार्योंमें योगदानके साथ-साथ प्रगतिशील विचारधाराके विकासार्थ न केवल लेख-टिप्पणियाँ ही लिखीं अपितु सक्रिय रूपमें व्यक्तिगत सहायता तथा मार्गदर्शन भी किया। सम्प्रति कम्युनिस्ट दल तथा मज़दूर आन्दोलनके देश-प्रसिद्ध नेता श्री एस० ए० डांगेके व्यक्तित्व निर्माणमें पराड़करजीका भी हाथ रहा है। श्री डांगेने काशीमें पराड़करजीके निर्देशन-निरीक्षणमें सन् १९२७–२८ में क़ानूनकी शिक्षा ग्रहण की थी और हिन्दीमें लेखन-प्रकाशनका कार्य किया था। आपने श्री डांगेकी किन परिस्थितियोंमें किस प्रकारकी सहायता की, इसका परिचय श्री डांगेके तत्कालीन मुख्य अभिभावक श्री वी० एम० जोशीके इस पत्रसे मिलता है—

२०–६–२७

प्रिय श्री बाबूराव पराड़कर,

गत महीनेके अन्तिम सप्ताहमें बम्बईके समाचारपत्रोंमें आपने श्री डांगेके विषयमें पढ़ा होगा। आपको स्मरण होगा कि जब हमारे पास श्री डांगेकी अपील करनेके लिए धन न था तो किस प्रकार श्री शिवप्रसादजी गुप्तने हमारी सहायता की थी। उस समय आपने भी हमें कुछ कम सहायता न की थी। इन्हीं कारणोंसे मैंने बनारस जानेपर श्री डांगेको आपसे मिलनेको कहा है। निकट भविष्यमें श्री डांगे दो काम करना चाहते हैं। एक तो हिन्दी प्रकाशनके बारेमें है जिसके सम्बन्धमें वे स्वयं आपसे मिलकर सब बातें समझायेंगे। दूसरी बात है उनके क़ानून सम्बन्धी अध्ययनकी। स्पष्ट है कि दूसरा कार्य व्यक्तिगत होते हुए भी प्रथमसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए मैंने श्री डांगेसे ज़ोर देकर यह कहा कि वे एक वर्षमें क़ानूनका अध्ययन पूर्णकर वकील बन जायँ। आप जानते ही हैं कि

यह कार्य कतिपय उदार लोगोंकी सहायतासे सरल एवं सुसाध्य हो जायगा। मेरा ख़याल है कि एक वर्षमें कुल छः सौ रुपयोंकी आवश्यकता पड़ेगी। मेरे कानपुरके मित्रोंने २००) का वचन दिया है। यदि आप और सम्पूर्णानन्द इस सम्बन्धमें कृपापूर्वक कुछ कर सकें तो मेरा ख़याल है कि बाबू शिवप्रसादकी सहायताके बिना ही २००)-३००) का प्रबन्ध हो सकेगा। यदि आप श्री डांगेको उनके कार्योंमें निर्देश कर सकें तो हम आपके बहुत आभारी होंगे। आपको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि श्री डांगे पहले कभी बनारस नहीं गये हैं। इसलिए उन्हें वहाँ एक सहायकके निर्देशकी आवश्यकता होगी। कुछ लोगोंने उन्हें तत्काल राजनीतिक कार्य प्रारम्भ करनेकी सलाह दी है किन्तु अन्तमें श्री डांगेने यही निश्चय किया है कि सर्वप्रथम वे आत्म-निर्भर स्वतन्त्र व्यक्ति बनें और बादमें राजनीतिक कार्यकर्त्ता। मुझे विश्वास है कि आप भी उनके इस निश्चयको उचित समझेंगे। आशा है, आप एक वर्ष तक—जो उनकी सजाकी अवधिकी तुलनामें कुछ नहीं—उन्हें तथा मुझे उक्त कार्यकी पूर्तिमें सहायता करेंगे।

आपका विश्वस्त—**वी० एम० जोशी**

राजद्रोहमें गिरफ़्तारी और दण्ड

१९ जून, सन् १९३१में पराड़करजी राजद्रोहके मामलेमें काशीमें गिरफ़्तार हुए और आपपर मुक़दमा चला। उन दिनों बाबा राघवदास वर्माका भ्रमण कर रहे थे। वे 'आज'के लिए 'वर्माकी चिट्ठी' लिखा करते थे। उन्हींकी एक चिट्ठीमें अँगरेज़ सैनिकोंके अत्याचार विषयक बड़ा ही रोमांचक विवरण 'आज'में प्रकाशित हुआ। बाबा राघवदासने तो वास्तविक स्थिति लिखकर भेजी किन्तु उसका प्रमाण उन्होंने न स्वयं अपने पास रखा और न पराड़करजीके पास ही भेजा। परिणामस्वरूप जब ब्रिटिश सरकारके अधिकारियोंने उक्त समाचार पढ़ा तो इसे राजद्रोह समझा और पराड़करजीकी गिरफ़्तारीका आदेश दिया। गिरफ़्तारीके दिनकी घटनाके सम्बन्धमें

'आज' से भूतपूर्व फोरमैन श्रीसरजू महाराज दीक्षितने जो संस्मरण सुनाया वह इस प्रकार है—'पण्डितजी नित्य प्रातः आठ बजे कार्यालय आ जाया करते थे। उस दिन आपके आनेके पूर्व ही आपको पूछती हुई कोतवालीसे पुलिस आयी। कार्यालय आनेपर पराड़करजीको यह बात बतायी गयी। पराड़करजी उसी समय कोतवाली पहुँचे। आप वहीं रोक लिये गये और गिरफ़्तार कर लिये गये। लगभग दस बजे आपने कोतवालीसे खबर भेजी कि मैं यहाँ गिरफ़्तार कर लिया गया हूँ। बारह बजे यहाँसे जेल भेजा जाऊँगा। इसके पहले ही मेरा बिस्तर, सुराही और पंखा भेज दो जिन्हें मैं अपने साथ ही लेता जाऊँगा, नहीं तो व्यर्थ ही किसीको दौड़ना पड़ेगा। यह समाचार सुनते ही पराड़करजीके छोटे भाई श्री माधव विष्णु पराड़कर बहुत घबड़ाये और स्वयं सब सामान लेकर पहुँचाने गये। जब पराड़करजी-ने समझाया तब उन्हें किसी प्रकार धैर्य हुआ।'

एक सप्ताह जेलमें रहनेके बाद पराड़करजी जमानतपर छोड़े गये। आपपर राजद्रोहका मुक़दमा चला। अदालतने आपको छः महीने कारावास या एक हज़ार रुपया जुर्मानेका दण्ड सुनाया। पराड़करजीने जेल जाना ही पसन्द किया था बशर्ते कि उनके घरका सामान आदि कुर्क न करानेका आश्वासन अधिकारियोंसे मिल जाय। बनारसके तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट श्रीओवेननने इस प्रकारका आश्वासन देनेसे इनकार कर दिया। साथ ही 'आज' तथा ज्ञानमण्डलके प्रधान व्यवस्थापक श्री श्रीप्रकाशजी आदिकी सलाह भी यही हुई कि जेल न जाकर जुर्माना ही दे दिया जाय। सन् १९४२ के क्रान्ति-आन्दोलनका जिस निर्ममता और पैशाचिकतासे ब्रिटिश अधि-कारियोंने दमन किया, उसे देखकर आपका खून खौल उठा था। काशीमें क्रान्तिकारी आन्दोलनके उनके पुराने साथी श्री श्रीनिवासजी शास्त्रीने मुझे बताया कि उस समय बनारसके एक अँगरेज उच्चाधिकारीकी नादिरशाही समाप्त करनेके निमित्त पराड़करजीने उसकी हत्या तथा रेलवे-पुल उड़ानेकी योजना बनाई थी। प्रायः सभी व्यवस्थाएँ पूरी हो चुकी थीं लेकिन कलकत्तेसे

ऐन मौक़ेपर एक वंगीय-क्रान्तिकारीके न पहुँचनेसे यह योजना सफल न हो सकी। 'आज'का सम्पादन करते हुए, यदा-कदा अवकाशके क्षणोंमें पराड़करजी अपने सहयोगियोंसे कहते—'कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि क्या मैं वही पराड़कर हूँ, जो कलकत्ताकी सड़कोंपर दोनों जेबोंमें पिस्तौल डाले घूमा करता था।' अपनी मृत्युके दो मास पूर्व इन पंक्तियोंके लेखकको अपने जीवन संस्मरण सुनाते हुए पण्डितजीने कहा था—'पत्रकारीके क्षेत्रमें मैं कैसे आया ?—आज जब सोचता हूँ तो लगता है, मैंने पत्रकारिता अपनायी नहीं अपितु पत्रकारिता मेरे गले पड़ी। मैं कलकत्ता पत्रकार होने नहीं, बल्कि देशको शीघ्र स्वतन्त्र देखने और क्रान्तिकारी समितियोंके साथ कार्य करनेके उद्देश्यसे गया था।'

• हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति

सन् १९३८ में पराड़करजी अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सत्ताईसवें शिमला सम्मेलनके सभापति निर्वाचित हुए। इसका सूत्रपात कहाँसे हुआ, इस सम्बन्धमें श्रद्धेय डाक्टर भगवानदासजीका यह संस्मरण, उस रोचक प्रसंगका सुन्दर चित्र उपस्थित करता है—'कई वर्ष हुए (ठीक स्मरण नहीं कौन वर्ष था) पराड़करजी, राय कृष्णदास और श्री जैनेन्द्रकुमार मेरे साम्प्रत वासस्थान 'शान्ति-सदन' में संध्या समय आये। जैनेन्द्र कुमार शिमलामें नागरी और हिन्दीके प्रचारके लिए एक समागम करना चाहते थे। उन्होंने मुझसे कहा—'सभापतिका कार्य कीजिए'। मैंने कहा—'वार्द्धक्य सुलभ रोगोंके विशेषकर एक उग्ररोगके कारण–जिसका प्रारम्भ शिमलामें ही हुआ जब मैं वहाँ केन्द्रीय विधान सभाका सदस्य था—मुझे गृहसे बाहर निकलना कठिन हो रहा है। शिमला कैसे जाऊँ ?' 'तो किसी दूसरेका नाम बताइए'—उत्तर था। मैंने कहा—'गोदमें बालक, नगरमें डिण्डिमकी कहावतके अनुसार आप पूछ रहे हैं। आपके समीप ही

पराड़करजी बैठे हैं। इनसे अधिक हिन्दीकी सेवा किसने की है?' पराड़कर-जीने नम्रतासे सिर झुका दिया। पर जैनेन्द्रकुमारजी और राय कृष्णदासजीके मनमें बात बैठी। 'माना, ठीक है'—उनका उत्तर था। वे इनको शिमला लिवा गये और समागमका सब कार्य बड़े समारोह, उत्साह और सफलतासे सम्पन्न हुआ'।[1]

नाम वापस लेनेकी सूचना

शिमला हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति पदके लिए हिन्दी जनताके प्रतिनिधियोंने पराड़करजीका नाम उन पाँच साहित्य-सेवियोंमें रखा जिनमेंसे एकका चुनाव होता है। संयोगवश उसी वर्ष बाबू शिवप्रसादजी गुप्तका नाम भी सम्मेलनके सभापतित्वके लिए लोगोंने प्रस्तावित कर दिया। यह स्थिति देख पराड़करजीने साहित्य सम्मेलनके तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री बाबूराम-जी सक्सेनाको पत्र लिखकर चुनावसे अपना नाम वापस लेनेकी सूचना दी। इसी आशयका पत्र बाबू शिवप्रसादजी गुप्तने भी लिखा। पराड़करजी चाहते थे कि श्री शिवप्रसादजी गुप्त सम्मेलनके सभापति बनाये जायँ और श्री शिवप्रसादजी चाहते थे कि उक्त पदके लिए पराड़करजी चुने जायँ। इन दोनों महानुभावोंके चुनावसे हटनेकी इच्छासे सम्मेलनके प्रधान मन्त्री बड़े धर्म-संकटमें पड़े। उनकी विषम स्थिति और पराड़करजी तथा श्री शिवप्रसादजी गुप्तकी चुनावसे हटनेकी दृढ़ भावनाका परिचय, सम्मेलनके प्रधान-मन्त्री श्री बाबूरामजी सक्सेनाके निम्नलिखित पत्रोंसे भली प्रकार हो जाता है—

सौर १४ श्रावण, १९९५

मान्यवर पराड़करजी, प्रणाम।

आपका ११ श्रावणका पत्र कल मिला। सभापतिके चुनावके विषयमें मेरा कर्त्तव्य तो नियमानुसार मतदाताओंसे सम्मतियाँ मँगानेका है। हिन्दी

---

१. 'आज' पराड़कर स्मृति अंक।

जनताके प्रतिनिधियोंने आपका नाम उन पाँच सृज्जनोंकी सूचीमें रखा है जिनमेंसे चुनाव होता है। कल अन्तिम तिथि सम्मतियाँ आनेके लिए हैं। बहुत सम्मतियाँ कार्यालयमें आ भी चुकी हैं, इसलिए मुझे तो अब यही करना है कि कुल सम्मतियाँ सम्मेलनकी स्थायी समितिकी बैठकके समय उपस्थित कर दूँ।

अपनी ओरसे मैं नम्रतापूर्वक प्रार्थना करनेकी धृष्टता करता हूँ कि सम्मतियोंकी गणनाका जो कुछ भी परिणाम हो उसे पूरा करनेमें आप सहायता करें। मेरा निवेदन है कि इसमें ही हिन्दीका हित और सम्मेलनका गौरव होगा।

विनीत—**बाबूराम सक्सेना**

श्री सक्सेनाजीका अनुरोध

३० जुलाई, १९३८ के पत्रमें श्री सक्सेनाजीने व्यक्तिगत रूपमें आग्रह कर पराड़करजीको समझाया कि वे चुनावसे अपना नाम वापस न लें। पत्रमें आपने इस बातपर विशेष बल दिया है कि इस समय सम्मेलनको उन्हीं जैसा निर्भीक नेता चाहिए। इसमें श्री शिवप्रसादजी गुप्तके पत्रका भी उल्लेख है। यह पत्र निम्नलिखित है—

३०—७—३८

प्रिय पराड़करजी,

आपका श्रावण ११ का पत्र मिला। इसके पूर्व गुप्तजीका भी पत्र कल सबेरे मिला था। मैं यह पत्र निजी तौरसे आपको लिख रहा हूँ, प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे नहीं। हिन्दीके हितके नाते आपको और गुप्तजी दोनोंको सम्मेलनसे प्रेम है। उसी नाते आप लोगोंपर सम्मेलनका कुछ अधिकार भी हैं। मुझे केवल इतना कहना है कि इस समय आप लोगोंका चुनावसे पीछे हट जाना सम्मेलनको एक अहितकर परिस्थितिमें डाल देगा। सम्मति-पत्र ३१ जुलाई तक मँगाये गये थे। इस समय यदि पत्रोंमें इस बातकी सूचना

भी दी जावे कि आप और गुप्तजी चुनावसे हट गये हैं तो उसका परिणाम कुछ नहीं होगा। सम्मति पत्र या तो कार्यालयमें आ चुके हैं या कुछ डाकखानेमें होंगे। ऐसी परिस्थितिमें आप लोगोंका पीछे हटना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता।

गुप्तजी तथा आपको शायद यह भ्रम है कि सम्मेलनका सभापति कोई धुरन्धर साहित्य-निर्माता ही होना चाहिए। परन्तु यदि आप कृपा कर सम्मेलनकी नियमावलीपर दृष्टि डालें तो आप तुरन्त अनुभव करेंगे कि कोरे साहित्य-निर्मातासे इस संस्थाका काम न चलेगा। हिन्दीके सामने जो लड़ाइयाँ इस समय छिड़ी हुई हैं, उनका सामना करनेके लिए हमें निर्भीक नेता चाहिए जो सालभर सम्मेलनकी बागडोर हाथमें लेकर उसे उच्चसे उच्च शिखरपर विजयी करे।

आपसे प्रार्थना है कि आप अपने पत्रपर पुनर्विचार करें। आपका उत्तर आनेपर मैं उचित काररवाई कर सकूँगा। कष्टके लिए क्षमा करें।

भवदीय भाई—**बाबूराम सक्सेना**

पराड़करजीने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रधानमन्त्री श्री बाबूराम सक्सेनाके अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों एवं सम्पादकोंको इस आशयका आग्रह-पत्र लिखा कि आप सभी श्री शिवप्रसादजी गुप्तको शिमला-सम्मेलनका सभापति चुनें। मुझमें उक्त पद ग्रहण करनेकी सामर्थ्य नहीं। ऐसे ही एक पत्रका उत्तर प्रसिद्ध साहित्यकार तथा 'सुधा' सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गवने इस प्रकार दिया—

प्रिय पूज्य पराड़करजी, २८–७–३८

आपका कृपापत्र ता० २६–७–३८ का मिला। मैंने भी 'सुधा' में यही नोट लिखा है कि पहिले बाबू शिवप्रसादजीसे ही सभापतिका आसन ग्रहण करनेके लिए आग्रह किया जाय। यदि वह न स्वीकार करें तो फिर

आपको सभापति बनाया जाय। यह तो आपकी सरलहृदयता है कि आप यह समझ रहे हैं कि वह पद ग्रहण करनेकी सामर्थ्य आपमें नहीं है। हिन्दी पत्रकारोंके आप शिरोमणि हैं और आप इस पदपर रहकर सम्मेलनका कार्य अग्रसर ही करेंगे। अभीतक इस पदको राजनीतिक आदमी ही ग्रहण करते आये हैं। आपके सभापति होनेसे साहित्यिक लोग भी आनन्दित हो जायँगे। भवदीय—**दुलारेलाल भार्गव**

निर्वाचित होनेकी सूचना और स्वीकृति

इधर पराड़करजी इस बातका पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे कि सम्मेलनके सभापति पदपर श्री शिवप्रसादजी ही चुने जायँ और दूसरी ओर श्री शिवप्रसादजीने सार्वजनिक रूपसे यह आग्रह किया कि पराड़करजी जो मेरे सम्माननीय हैं—उन्हें ही चुना जाय। अन्तमें पराड़करजीको सभीका आग्रह स्वीकार करना ही पड़ा। २२ अगस्त, १९३८ को रातमें ८ बजकर पाँच मिनटपर उन्हें 'सम्मेलन' का रोमन लिपिमें यह हिन्दी तार मिला—

श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, 'आज', बनारस।

आप शिमला अधिवेशनके सभापति निर्वाचित हुए हैं, कृपया स्वीकृति प्रदान कर कृतार्थ करिए और सम्मेलनका गौरव बढ़ाइए —**सम्मेलन**

पराड़करजीने सम्मेलनको स्वीकृति भेजते हुए २३ अगस्तको प्रातः सवा नौ बजे यह तार भेजा—'सम्मेलन, इलाहाबाद (यू० पी०) सधन्यवाद स्वीकृत। पत्र जाता है। —**पराड़कर**'

पराड़करजीने जो पत्र लिखा उसका उत्तर सम्मेलनके प्रधान मन्त्रीने इस प्रकार दिया—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
सौर ९–५–१९९५
२५–८–३८

प्रिय, पराड़करजी !

आपका २३–८–३८ का पत्र मिला। तार भी मिला था। आपने सभापति पदको स्वीकार कर सम्मेलनको कृतार्थ किया है। हिन्दीकी

जो सेवा आप वर्षोंसे कर रहे हैं उसे बिरला ही हिन्दी-प्रेमी न जानता होगा।

अपना भाषण आप वहीं छपा लें। मेरी समझमें पाँच हज़ार प्रतियाँ काफ़ी होंगी।

तिथियोंके विषयमें अन्तिम निर्णय स्थायी समितिके हाथमें होता है, स्वागत समिति इस विषयमें केवल सिफ़ारिश कर सकती है। अभी १४ अगस्तको स्थायी समितिकी बैठकमें यह प्रश्न फिर छिड़ा था। उस समय १६ ता० से रियायती टिकट मिलनेकी बात मालूम थी। परन्तु स्थायी समितिने तिथियाँ नहीं बदलीं। १६ को तूफ़ान मेल या पंजाब मेलसे चलकर मनुष्य १७ को दोपहरतक शिमला पहुँच सकेगा। इसलिए कोई विशेष कठिनाई नहीं मालूम पड़ी।

भवदीय—**बाबूराम सक्सेना**

हिन्दी-संसारमें प्रसन्नताकी लहर

पराड़करजी शिमला हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति चुने गये—यह समाचार प्रकाशित होते ही हिन्दी-संसारमें प्रसन्नताकी एक लहर दौड़ गयी और चारों ओरसे बधाईके पत्र आने लगे। इन पत्रोंमें पराड़करजीकी हिन्दी-सेवाकी चर्चा करते हुए आशा प्रकट की गयी है कि उनकी अध्यक्षतामें साहित्य एवं सम्मेलनकी सर्वांगीण उन्नति होगी। दर्जनों पत्रोंमेंसे चार-पाँच बधाईके पत्र इस प्रकार हैं—

पराड़करजीके अन्यतम सहयोगी तथा 'आज' के प्रथम सम्पादक श्री श्रीप्रकाशजीने (सम्प्रति राज्यपाल महाराष्ट्र) शिमलासे यह पत्र लिखा—

श्री बा० वि० पराड़करजी, ३९ ले उड होटल, शिमला
२०–८–१९३८

यहाँ सुननेमें आया है कि आप ही सम्मेलनके सभापति होकर अब आ रहे हैं। यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। आपका सम्मान कर सम्मेलन

अपना सम्मान कर रहा है और योग्य व्यक्तिको उपयुक्त स्थानपर बैठा कर उसकी सेवाओंको स्वीकार करता हुआ उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। आपका—**श्रीप्रकाश**

हिन्दी समाचारपत्रके इस समय सबसे पुराने तथा वयोवृद्ध सम्पादक पण्डित जगन्नाथ प्रसाद शुक्लने लिखा—

प्रिय बन्धु पराड़करजी, प्रयाग

भाद्रशुक्ल ६, सं० १९९५

सादर वन्दे!

आप इस वर्षके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति चुने गये हैं, इससे मुझ जैसे आपके पुराने मित्रोंको बहुत हर्ष हुआ है। वर्षोंकी अभिलषित इच्छा पूरी हुई। इसके लिए समझमें नहीं आता कि आपको बधाई दूँ या अपनेको। मैं बधाई देने या प्रसन्नता प्रकट करनेके लिए स्वयं आ रहा था। काशी गया भी, किन्तु जिस काममें गया उसीमें रातके ११ बज गये और मैं सीधे स्टेशन पहुँच मुगलसराय चला आया और आपसे न मिल सका।

आशा है, अपने भाषणमें आप हिन्दी संग्रहालयके सम्बन्धमें एक ज़ोरदार अपीलनुमा भाग रखेंगे। विशेष मिलनेपर।

भवदीय—**जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल**

'लोकमान्य' के सम्पादक श्री रामशंकर त्रिपाठीने अपने पत्रमें लिखा—

श्रीमान् पण्डित पराड़करजी, कलकत्ता २५-८-३८

सविनय प्रणाम!

आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके इस बार अध्यक्ष चुने गये हैं, इस संवादसे बड़ी प्रसन्नता हुई तथा इस आनन्दमय अवसरपर आपको तथा सम्मेलनको बधाई देते हुए एक नोट आजके 'लोकमान्य' में प्रकाशित हुआ है। आपकी सेवामें पत्रकी एक प्रति भेजी जा रही है। आप हिन्दी

पत्रकारोंके मूर्धन्य हैं। परमेश्वर आपके नेतृत्वमें सम्मेलनको यश तथा सफलता प्रदान करें। योग्य सेवा कार्योंसे सदैव अनुगृहीत करते रहें।

भवदीय—**रामशंकर त्रिपाठी**

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री भगवानदास हालनाका पत्र इस प्रकार है—

मान्य एवं प्रिय पराड़करजी, बुन्देलखण्डी

सप्रेम प्रणाम ! मिर्जापुर,

२९।८।३८

हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके सभापति चुने जानेपर आपको हृदयसे बधाई है। मेरी समझमें इस समयमें सम्मेलनको आप जैसा योग्य व्यक्ति मिलना बड़ा कठिन था। पूर्ण आशा है, आपकी अध्यक्षतामें सम्मेलन द्वारा हिन्दी और उसके साहित्यकी हर तरह वृद्धि होगी।

आपका—**भगवानदास हालना**

हिन्दी प्रेस सर्विस ऑव इण्डियाके संचालक श्रीविष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी'-ने लिखा—

आदरणीय पराड़करजी, शिमला,

२५।८।३८

सादर वन्दे। मुझे शिमलेमें होनेवाले साहित्य सम्मेलनके सभापतित्व-के लिए आपके चुनावके लिए बधाई देनेका अवसर दीजिए। मेरा यह विश्वास है कि इससे अधिक उचित चुनाव कोई और हो ही नहीं सकता था। हिन्दी संसारके लिए आपका सहयोग प्राप्त होना गौरवकी बात है।

विनीत—**विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्गी'**

शिमला साहित्य-सम्मेलनमें पराड़करजी

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सत्ताईसवाँ अधिवेशन शिमलामें सन् १९३८ की तारीख १७, १८, १९ और २० सितम्बरको

हुआ। शिमला सम्मेलनकी स्वागत समितिके अध्यक्ष डाक्टर सर गोकुलचन्द नारङ्गने १४ सितम्बरको पराड़करजीके पास तार भेजकर आनेकी तिथि तथा ट्रेन पूछी और आग्रह किया कि पराड़करजी उनके यहाँ ही ठहरें। १५ सितम्बरको पराड़करजीने श्रीनारङ्गको सधन्यवाद आमन्त्रणकी स्वीकृति भेज दी। १७ दिसम्बरको ढाई बजे बाजे-गाजेके साथ सम्मेलनके मनोनीत सभापति श्रीबाबूराव विष्णु पराड़करका जुलूस लोअर बाज़ार आर्य समाजसे स्टेशन होकर लक्खड़ बाज़ारके आर्य समाज भवनके पास समापन्न हुआ, जहाँ सम्मेलनके खुले अधिवेशनकी व्यवस्था की गयी थी। साढ़े चार बजे सम्मेलनकी बैठक प्रारम्भ हुई। 'बन्दे मातरम्' तथा स्वागत-गानके पश्चात् बघाट-नरेश श्रीदुर्गासिंहजीने प्रमुख स्वागताध्यक्षके पदसे अपना भाषण पढ़ा। तदनन्तर स्वागताध्यक्ष डाक्टर सर गोकुलचन्द नारङ्गने अपने भाषणके अन्तमें पराड़करजीका संक्षिप्त परिचय देते हुए प्रस्ताव पेश किया कि वे सम्मेलनके सभापति बनाये जायँ—जो 'आज' आजकल यू० पी० का सबसे बड़ा हिन्दी पत्र है, आप उसके सम्पादक हैं और बड़े ही ऊँचे दर्जेके राजनीतिज्ञ हैं।

राजर्षि टण्डनजी और श्रीसम्पूर्णानन्दजीके भाषण

पराड़करजीसे सभापतिका आसन ग्रहण करनेका अनुरोध करते हुए माननीय पुरुषोत्तमदासजी टण्डनने कहा—'यह बात हमारे लिए कितने गर्वकी है कि आज ऐसे एक पत्रकारको सभापति बना रहे हैं जिनकी मातृभाषा मराठी है। मातृभाषा उनकी मराठी है किन्तु संस्कार उनके हिन्दीके ही हैं। स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायणजी मिश्रकी भावग्राहक किन्तु कुछ लपेटदार भाषाका उनपर प्रभाव रहा है। लिखते-लिखते उनकी भाषा टकसाली हो गयी है। यहाँ तक कि उनके साथके कार्यकर्त्ता अन्य सम्पादक लोग तक उन्हींकी-सी भाषा लिखने लगे हैं।'

श्रीसम्पूर्णानन्दजीने (सम्प्रति मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेश) पराड़करजीकी हिन्दी भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी सेवाओंकी चर्चा करते हुए कहा—मैं इस प्रस्तावका समर्थन बड़े हर्षके साथ करता हूँ। मेरे हर्षका एक कारण यह भी है कि पराड़करजी जिस काशीके सम्मानित नागरिक हैं उसीके एक कोनेमें मैं रहता हूँ। पराड़करजी हिन्दीके बहुत बड़े मर्मज्ञ हैं और उनकी मर्मज्ञताका परिचय एक इसी बातसे हमको मिलता है कि जिस 'आज' पत्रका वह सम्पादन करते हैं, उसने हिन्दुस्तानके पत्रकार-जगत्‌में एक नयी शैली चलानेका श्रेय प्राप्त कर लिया है। केवल इतनी ही बात नहीं और भी कारण हैं, जिनसे हम समझते हैं कि पराड़करजीका इस साल चुना जाना सम्मेलनके लिए बहुत ही उचित है। इस समय हमारे देशमें यह प्रश्न बड़े ज़ोरोंसे सामने आ गया है कि हमारी भाषाका स्वरूप क्या हो। इस विषयमें बहुत कुछ वाद-विवाद चल पड़ा है। भाषाका स्वरूप क्या होना चाहिए—उस भाषाका—जो राष्ट्रभाषा होनेका गौरव रखती हो। इसका निर्णय केवल उन लोगोंकी, जो कोठी-कमरोंके भीतर बैठे रहते हैं, थोड़ेसे विषयोंपर लिखा करते हैं, करनेका अधिकार नहीं है। जिसको इस बातका पता है कि देशमें इस समय कैसा स्पन्द उठ रहा है वे ही इसका निर्णय कर सकते हैं। पराड़करजी उन लोगोंमें-से हैं, जो पत्रकार-कलाकी बातोंको जानते हैं। पत्रकारोंके लिए यह ज़रूरी है कि जो कुछ अख़बारोंमें निकालें उससे लाखों-करोड़ोंका फ़ायदा हो। आप लोगों-को प्रायः सबको मालूम है कि राजनीतिक बिचारोंके कारण पराड़कर-जी कई वर्षों तक जेलमें रह चुके हैं। इसलिए उनको मालूम है कि इस समय देशमें कैसी भाषाकी आवश्यकता है। वे यह जानते हैं कि किस भाषाके राष्ट्रभाषा होनेसे हमारी आवाज़ देशके कोने-कोनेमें पहुँच सकती है। इसलिए यहाँ पराड़करजीका चुना जाना हिन्दी साहित्यके लिए बहुत उपयोगी है। पराड़करजीकी मातृभाषा मराठी है लेकिन फिर भी वह हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेके सम्बन्धमें सम्मति देते हैं।

मालवीयजी तथा सेठ जमनालाल बजाजकी प्रशस्ति

श्रीकृष्णकान्त मालवीयने पराड़करजीको सभापति बनानेके प्रस्तावका हृदयसे स्वागत करते हुए कहा—इस समय हिन्दीकी जो देशमें परिस्थिति है, हिन्दीपर इस समय जो हमले-आक्रमण हो रहे हैं, उनसे रक्षा करनेमें पराड़करजी सर्वथा योग्य हैं। उनमें सभी वयोवृद्धकी बातें हैं। पराड़करजी-ने हिन्दीकी जो सेवा की है तथा सम्पादन-कलाकी जो बहुतसे भाइयोंको शिक्षा दी है, इससे उनका हिन्दी पत्रकार-कलापर सदा ऋण रहेगा। इसलिए यह जरूरी था कि हिन्दी-संसार उन्हें अपने सम्मेलनका सभा-पति चुनकर अपने कर्त्तव्यका पालन करे और अपनी कृतज्ञता प्रकट करे।

शिमला सम्मेलनके पहले सन् १९२७ में मद्रासमें हुए छब्बीसवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति सेठ जमनालाल बजाजने पराड़करज के व्यक्तित्व एवं कृतित्वकी अनेक महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश डालते हुए कहा—पराड़करजीने युवकोंको साहित्य-सेवा और राष्ट्र-सेवा सिखाई है। आपको यह जानकर खुशी होगी कि हमारे बहुतसे भाई यह कहा करते हैं कि हिन्दीका जो प्रचार किया जाता है, जिसकी मातृभाषा हिन्दी होती है, वही लोग हिन्दीका प्रचार कर सकते हैं। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि पराड़करजीकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। महाराष्ट्र परिवारमें जन्म होते हुए भी उन्होंने हिन्दीकी जो सेवा की है, वह आज हिन्दी संसारके लिए प्रशंसनीय है। उन्होंने हिन्दी-साहित्यकी सेवाके साथ-साथ हिन्दी राष्ट्रभाषा किस प्रकार हो सकती है, इसके बारेमें समय-समयपर बताया है। वे जिस पत्रके सम्पादक हैं, उस पत्रको अगर आप लोगोंने देखा हो तो आपको पता लगे कि वह किस शैलीमें लिखते हैं। वर्तमान पत्रोंके अन्दर बहुतसे हिन्दी-उर्दू या दूसरी भाषाओंमें जो पत्र निकलते हैं, उनको आवश्यक है कि अपना यह पत्र निकालते समय पराड़करजीके पास जाकर कुछ दिनों तक शिक्षण लें तो उनको इस बातका पता लगेगा कि वर्तमान

पत्र किस तरह चलाये जाते हैं। आजकल पराड़करजी जिस ऊँची नीतिसे अपने पत्रको चलाते हैं, उनसे आपको पता लग सकता है कि वे कितने विद्वान् और कितने ऊँचे दर्जेके साहित्यिक हैं और किस प्रकार हिन्दीका स्थान राजनीतिमें करते जा रहे हैं। सबके लिए यह बड़े गौरवकी बात है कि हमें ऐसे सुयोग्य सभापति मिले हैं।

ऐतिहासिक भाषणपर बधाई

शिमला साहित्य सम्मेलन पराड़करजीके सभापतित्वमें चार दिनोंतक सोत्साह वातावरणमें हुआ और उसमें अनेकानेक महत्त्वपूर्ण निश्चय किये गये। पराड़करजीका अध्यक्षीय भाषण अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक रहा। विद्वानों, साहित्य मर्मज्ञों और सम्पादकोंने उसकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की। प्रसिद्ध साहित्यकार एवं कोशकार श्री रामचन्द्र वर्मा (तत्कालीन प्रधान मन्त्री, काशी नागरी प्रचारिणी सभा) ने पराड़करजीको पत्र लिखकर निम्नलिखित शब्दोंमें उनके भाषणकी हृदयसे सराहना की—

प्रियवर, काशी

२३ सितम्बर, १९३८

आपका शिमले वाला भाषण बहुत ही मारकेका रहा। सभी लोग मुक्तकण्ठसे उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। मैं उसके लिए आपको शुद्ध हृदयसे बधाई देता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि आपका वह भाषण और सम्मेलनका इस सम्बन्धका निर्णय हिन्दुस्तानीके विरुद्ध एक ज़बरदस्त आन्दोलन खड़ा कर देगा। मैं इस सम्बन्धमें एक नोट नागरी प्रचारिणी पत्रिकाकी अगली संख्यामें दे रहा हूँ।

जिस वीरोचित साहससे आपने अपना भाषण तैयार किया था उसके लिए मैं फिर हृदयसे आपका अभिनन्दन करता हूँ। मैं पण्डित रामनारायण-

जीके साथ ही राजपूताने जा रहा हूँ, नहीं तो आपसे मिलकर और जी खोलकर आपकी प्रशंसा करता :

भवदीय—**रामचन्द्र वर्मा**

इस सम्मेलनमें हिन्दी भाषा तथा साहित्यके प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन-के निमित्त बीस प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पत्रकार सम्मेलन श्रीकृष्णदत्त पालीवालके, दर्शन-परिषद् आचार्य श्री काका कालेलकरके, साहित्य-परिषद् प्रोफेसर धीरेन्द्र वर्माके, विज्ञान-परिषद् प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा, महिला-सम्मेलन श्रीमती कमला बाई किबे तथा इतिहास-परिषद् श्री जयचन्दजी विद्यालंकारके सभापतित्वमें हुई। सम्मेलनके तीसरे दिन रातमें कविवर पण्डित गयाप्रसादजी शुक्ल 'सनेही' के सभापतित्वमें कवि-सम्मेलन हुआ जिसमें देशके प्रमुख हिन्दी कवियोंने अपनी रचनाएँ सुनायीं। इसी सम्मेलनमें 'प्रसाद' की 'कामायनी' पर मंगला प्रसाद पुरस्कार प्रदान किया गया था। श्री सम्पूर्णानन्दजीकी कृति 'समाजवाद' भी इसी अवसरपर पुरस्कृत हुई थी। सन् १९५३ में इन पंक्तियोंके लेखकको अपनी जीवन कथा सुनाते हुए इस बातका पराड़करजीने सगौरव उल्लेख किया था कि शिमला साहित्य सम्मेलनके अवसरपर मैंने स्वयं अपने हाथ आचार्य पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदीको साहित्यवाचस्पतिकी उपाधिका ताम्रपत्र प्रदान किया था। स्मरणीय है कि हिन्दीकी परिभाषा शिमला सम्मेलनमें परिवर्तित की गयी। पराड़करजी सदासे कांग्रेस भक्त थे। उस समय कांग्रेसी शीर्षस्थ नेता, मुसलमानोंको प्रसन्न करनेके लिए हिन्दुस्तानीके प्रबल समर्थक थे।

हिन्दीकी परिभाषा

पराड़करजी भाषा और साहित्यके सम्बन्धमें स्वतन्त्र तथा निर्भीक विचार रखते थे। सम्मेलनमें 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक अधिक संख्यामें थे और संस्कृतनिष्ठ हिन्दीवाले अल्पसंख्यामें। यह पराड़करजीका प्रभाव था

कि उन्होंने स्वयं हिन्दीकी परिभाषा सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित किया जो सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ। यह ऐतिहासिक प्रस्ताव निम्नलिखित है—इस सम्मेलनके विचारमें हिन्दीके आधुनिक साहित्य निर्माणके लिए ऐसी भाषा उपयुक्त है जिसका परम्परागत सम्बन्ध, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओंसे है, जिसकी शक्ति कबीर, तुलसी, सूर, मलिक मुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान और हरिश्चन्द्रकी कृतियोंसे आयी है, जिसका मूलाधार देशी और तद्भव शब्दोंका भण्डार है और जिसके पारिभाषिक शब्द प्राकृत अथवा संस्कृतके क्रमपर ढाले गये हैं, किन्तु जिसमें विदेशी रूढ़ सुलभ और प्रचलित शब्दोंका भी स्थान है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका शिमला-अधिवेशन २० सितम्बर १९३८ को पराड़करजीके निम्नलिखित भाषणके पश्चात् समाप्त हुआ—स्वागताध्यक्ष, प्रतिनिधियो, देवियो और सज्जनो, अब विदाईके समय इन शब्दोंमें आप लोगोंके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आपका हार्दिक स्वागत करनेके बाद मेरा यह निवेदन स्वीकार करें। इस सम्मेलनसे आज पंजाबके आप लोगोंको, हिन्दी-प्रेमियोंको यदि कुछ भी उत्तेजना मिली है तो इस दिवसको धन्य है। और कुछ ही समयमें, मैं समझता हूँ कि एक ही वर्षके भीतर, सारे पंजाबमें हिन्दी भाषाके लिए ऐसा संघटन किया जाय, ऐसा काम करके दिखाया जाय कि हम युक्तप्रान्तवाले, महाकोशलवाले और बिहारवाले कहें कि देखो—काम होता है तो ऐसा होता है, जैसा पंजाबवाले करते हैं। मैं आशा करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि यदि आप हृदयसे इस कामको उठायें तो आशा की जाती है कि आप हिन्दू-संस्कृतिको क़ायम रखेंगे। और यह बात लोग—सब भारतवर्षमें—याद रखें यह सम्भव है कि यदि आप चाहें तो फिर उसी वर्ष अपने परिश्रमसे, अपने प्रेमसे फिर बातें करें और फिर हमको पंजाबमें अपना आदर्श कहनेको बाध्य करें। यदि नहीं भी चाहें तो हम कहें कि पंजाबमें हिन्दीका कार्य आप लोगोंने किया है।

मैं जब काशीसे चला तो मुझे उस समय यह बात याद आयी कि इस वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिमालयमें हो रहा है, जहाँसे हमारे आर्योंका, हिन्दुओंका, बल्कि भारतवर्षकी संस्कृतिका जन्म हुआ। जहाँसे भारतवर्षको ही नहीं बल्कि सारी दुनियाकी सभ्यताको प्रकाश मिला। उसी जगह आज यह सम्मेलन होने जा रहा है। अतः जरूर हमको कुछ-न-कुछ मिल जायगा। तो मैं बिलकुल इस विषयमें निराश नहीं हुआ। इस समय इस विषयका हमारे हिन्दी साहित्य सम्मेलनने भी संघटन कर दिया है। इसकी नियमावलीमें भी परिवर्तन कर दिया है, जिसके अनुसार कार्य करनेसे राष्ट्रभाषाका प्रचार हो, उसी रूपमें उसे सभ्यता प्राप्त हो सकती है। इसका श्रेय यहाँके अन्य लोगोंको है, यहाँके स्वयंसेवकोंको है, यहाँकी स्वागत समिति और आप सज्जनोंकी अनुवृतिको है। बस अब मैं आप-लोगोंसे विदाई लेता हूँ।

सम्मेलनका काशी अधिवेशन और पराड़करजी

हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका २८वाँ अधिवेशन काशीमें १५, १६, १७, १८ अक्तूबरको पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीकी अध्यक्षतामें हुआ। स्वागताध्यक्ष पण्डित मदनमोहन मालवीय थे और उपाध्यक्ष एवं स्वागत समितिकी कार्यकारिणीके अध्यक्ष थे पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर। स्वागताध्यक्षके भाषण पढ़नेके बाद 'हरिऔध'जीने पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीको सभापति बनानेका प्रस्ताव उपस्थित किया। इसका अनुमोदन और समर्थन देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद, बाबू श्यामसुन्दरदास तथा पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करने किया। पराड़करजीने कहा—पण्डित अम्बिका-प्रसाद वाजपेयीने साहित्यिक ही नहीं बल्कि राजनीतिक दृष्टिसे भी हिन्दीकी बड़ी सेवा की है। साहित्यकी दृष्टिसे देखिए तो वाजपेयीजीने हिन्दीमें नये ढङ्गका व्याकरण 'व्याकरण कौमुदी' के नामसे लिखा है। राजनीतिक दृष्टिसे देखिए तो भी आप वाजपेयीजीको ही ऐसा पावेंगे, जिन्होंने पहले-

पहल हिन्दीमें उग्र राजनीतिक मतका मासिकपत्र 'नृसिंह' निकाला था। और उस समय जब कि लोग यह भी नहीं जानते थे कि राजनीति क्या है। 'भारतमित्र' में आपके साथ काम करते हुए मैंने देखा था कि उस समय दैनिक पत्रके प्रकाशनके लिए आपको रोज़-रोज़ आर्थिक प्रबन्ध भी करना पड़ता था। इस समय जब कि हिन्दी भाषाकी रक्षा करना है तो हम व्यावहारिक, साहित्यिक और राजनीतिक दृष्टिसे वाजपेयीजीको ही ऐसा पाते हैं, जो हमारा सफलतापूर्वक नेतृत्व कर सकते हैं। इसके बाद हर्षध्वनिके मध्य पूज्य मालवीयजीने पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीको सभापतिके आसनपर बैठाया और साहित्य सम्मेलनके पिछले वर्षके सभापति पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करने उन्हें माला पहनायी। इस अधिवेशनमें राष्ट्रभाषा परिषद्—देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद, कहानी सम्मेलन—श्री 'सुदर्शन' साहित्य परिषद्—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पत्रकार-सम्मेलन श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी, दर्शन-परिषद् डाक्टर भगवानदासजी, समाजशास्त्र सम्मेलन—आचार्य नरेन्द्रदेव, महिला-सम्मेलन श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहानकी अध्यक्षतामें हुआ। इसी सम्मेलनमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लको 'चिन्तामणि' पर १२००) का मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया गया था। राष्ट्रभाषा, उसका प्रचार और उसकी योजनाके सम्बन्धमें सम्मेलनकी क्या नीति हो, इसे निर्धारित करनेके लिए सम्मेलनने सर्वश्री राजेन्द्रप्रसाद, पुरुषोत्तमदास टण्डन, रामचन्द्र शुक्ल, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्रीनारायण चतुर्वेदी और बाबूराम सक्सेना (संयोजक) की जो समिति संघटित की थी उसमें पराड़करजी भी वरिष्ठ सदस्य थे। सम्मेलनके अन्तिम दिन स्वागत समितिके उपाध्यक्ष पराड़करजीने समितिकी ओरसे प्रतिनिधियोंके प्रति आभार प्रकट किया तथा त्रुटियों एवं असुविधाओंके लिए क्षमा माँगी। इस प्रकार साहित्य सम्मेलनके २८ वें काशी अधिवेशनमें भी पराड़करजीने सम्मेलनके भूतपूर्व सभापति तथा स्वागत समितिकी कार्यकारिणी परिषद्के अध्यक्षकी हैसियतसे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

• प्रेमचन्द और पराड़कर

मई, १९३७ में पराड़करजीने 'प्रेमचन्द स्मृति अंक'का सम्पादन किया था। 'हंस' का प्रेमचन्द स्मृति अंक हिन्दी साहित्यकी स्थायी महत्त्वकी सामग्री हैं। इसके सम्पादनके सम्बन्धमें स्वयं पराड़करजीने लिखा है—'मैं बीमार अस्पतालमें पड़ा था जब जैनेन्द्रकुमाजीने आकर कहा—'हंस' का प्रेमचन्द स्मृति अंक आपको निकालना होगा। समय नहीं था, शक्ति भी नहीं, पर अनुरोध टाल न सका। स्वीकार कर लिया। पर जो शंका थी वही हुआ। छः महीनेसे विघ्न परम्परा घेरे है। अभी तक छुट्टी नहीं पाई है। इसी अवकाशमें जैसे मन आया, अंक तो निकाल दिया। पर सबसे अधिक खेदकी बात यह है कि प्रेमचन्दजीकी उज्ज्वल कीर्तिकी तुलनामें यह अंक किसी कामका नहीं हुआ।' प्रेमचन्द स्मृति अंकके लेखोंका सम्पादन तथा सम्पादकीय लिखनेके अतिरिक्त पराड़करजीने स्वयं भी प्रेमचन्दजीके सम्बन्धमें इसी विशेषांकमें एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा। इस लेखका शीर्षक है—'प्रेमचन्दकी कृति'। यह लेख सभी लेखोंके अन्तमें है। इसका अन्तिम अंश प्रेमचन्दजीके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका मूल्यांकन है और है हिन्दी साहित्यके इतिहासमें स्वर्णवर्णांकित करने योग्य। यह इस प्रकार है— × × × 'हमारा साहित्य प्रेमचन्दका सदैव कृतज्ञ रहेगा। हरिश्चन्द्र-के बाद वह अन्धकारमें टटोल रहा था, अपने पड़ोसियोंसे अपच खाद्य लेकर उदरपूर्ति कर रहा था। रसना विकृत हो रही थी। प्रेमचन्दने उसे अपना घर दिखाया—जीवनसे उसका सम्बन्ध कर दिया। हमारी भाषाको स्वाभाविकता प्राप्त करा दी। वह अपने बच्चोंके मुँहसे निकलने लगी। हिन्दी हिन्दकी हुई। यह प्रेमचन्दकी हिन्दीको देन है। उसका भावी विकास भावी लेखकोंपर निर्भर है पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दने हिन्दी साहित्यको जनताका साहित्य बना दिया। उसके निर्मल जीवनमें जनवर्गके प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगे हैं। प्रेमचन्दके

पात्र जनवर्गके प्रतिबिम्ब हैं, प्रेमचन्दके विचार वर्गोंको उठाने और मिलानेके भगीरथ प्रयत्नके द्योतक हैं। स्वयं प्रेमचन्द जनताके प्रतीक हैं। उनका स्थूल देह अदृश्य हो गया है पर उनका यह उज्ज्वल प्रतीक तबतक रहेगा जबतक हिन्दी रहेगी और उसके बोलनेवाले रहेंगे।'[१] पराड़करजीने उपर्युक्त पंक्तियोंमें प्रेमचन्दजीकी हिन्दीको महान् देन और उसके ऐतिहासिक महत्त्वको सुस्पष्ट करते हुए उसके समुज्ज्वल भविष्यका जैसा संकेत किया था, वह आज सत्य एवं साकार हो रहा है।

प्रेमचन्दजी और पराड़करजी दोनोंका साहित्य साधना स्थल काशी ही रहा है। दोनों साहित्य महारथी एक-दूसरेसे परिचित थे पर एक-दूसरेकी साहित्यिक साधनाके माध्यमसे। साक्षात्कारका अवसर बहुत दिनोंके बाद आया। वह किस प्रकार आया, इसकी छोटी-सी कहानी है। इसके लगभग ग्यारह वर्ष पूर्व अर्थात् १९२१ ई० में 'आज' के प्रकाशनके प्रारम्भिक वर्षोंमें प्रेमचन्दजीकी अनेक कहानियाँ 'आज' में प्रकाशित हुई थीं। 'आज'-में प्रेमचन्दजीकी सबसे पहली कहानी 'दफ़्तरी' प्रकाशित हुई, जो २४ अप्रैल, १९२१के अंकमें छपी। २६ मई, १९२१ को प्रेमचन्दजीकी जो दूसरी कहानी छपी, उसका शीर्षक 'आत्माराम' है और जो बड़ी होनेके कारण दो अंकोंमें प्रकाशित हुई। उन दिनों 'आज'में प्रेमचन्दजीकी कहानियाँ बराबर प्रकाशित हुआ करती थीं। आपकी 'दुस्साहस', 'अनिष्ट-शंका' और 'विध्वंस' शीर्षक कहानियाँ क्रमशः 'आज'के १८ जून, २७ जून और २५ जुलाई, १९२१ ईस्वीके अंकोंमें प्रकाशित हुईं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पराड़करजी और प्रेमचन्दजीका सम्पर्क सन् १९२१ से ही रहा। यह संयोगकी बात है कि काशीमें रहते और एक-दूसरेके सम्पर्कमें होते हुए भी दोनोंमें-से किसीको सन् १९३२के पूर्व मिलनेका अवसर न मिला।

---

१. 'हंस' प्रेमचन्द स्मृति अंक : पृष्ठ संख्या, ९७३।

साहित्यके ये युग-निर्माता कब और कैसे मिले, उसका घटना प्रसंग यों है। सन् १९३२के नवम्बरमें हिन्दीके प्रसिद्ध कहानीकार श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार बनारस आये। प्रेमचन्दजी और प्रराड़करजीकी प्रथम भेंट उन्हींके द्वारा ही हुई थी। उनके ही शब्दोंमें सुनिए[1]—बात यह हुई थी कि मैं प्रेमचन्दजीके यहाँ ठहरा हुआ था। उनके घरसे जब मैं मित्रोंसे मेल-मुलाक़ातके लिए चलने लगा तो उन्होंने पूछा—कहाँ जा रहे हो? मैंने उनसे कहा—'आज' कार्यालयमें श्री पराड़करजीसे मिलने। तब उन्होंने कहा—चलो, मैं भी साथ ही चलूँगा। हम लोग जब 'आज' कार्यालयमें पहुँचे, तो यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि पराड़करजीने मेरे साथ आये श्री प्रेमचन्दजीकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। केवल उनके नमस्कारका उत्तर-भर दिया। प्रेमचन्दजीने बहुत स्नेहके साथ उन्हें नमस्कार किया था। मैंने अत्यन्त आश्चर्यसे कहा—'आपलोग एक-दूसरेको नहीं जानते?' और यह कहकर मैंने प्रेमचन्दजीका परिचय श्री पराड़करजीको दिया। तब हिन्दी-साहित्यके ये दोनों महारथी अत्यन्त स्नेहके साथ एक-दूसरेसे मिले। प्रथम परिचयकी रस्मोंके बाद पराड़करजीने प्रेमचन्दजीसे कहा—पिछले पन्द्रह वर्षोंसे मेरी आपसे मिलनेकी ज़बरदस्त इच्छा थी। आज आपने बड़ी कृपा की। प्रेमचन्दजीने मुसकराकर कहा—मेरा भी यही हाल था। वर्षोंसे इच्छा थी और आज इनकी मेहरबानीसे चला ही आया।[2] मेरे आश्चर्यका ठिकाना न था। प्रेमचन्दजी खिलखिलाकर हँस पड़े वही पवित्र और सरल हँसी। पराड़करजीने कहा—काम-काजके जंजालमें इतना फँसा रहता हूँ कि कभी कहीं आने-जानेकी फ़ुरसत ही नहीं मिलती।

सन् १९३६ में 'हंस' तथा 'जागरण'के सम्बन्धमें हानि-लाभके

---

१. श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारके २ नवम्बर, १९५७ के पत्रसे।

२. 'हंस' प्रेमचन्द स्मृति-अंकमें श्री चन्द्रगुप्तजीके लेखसे।

प्रश्नको लेकर प्रेमचन्दजी तथा श्रीप्रवासीलाल वर्मामें कुछ विवाद हो गया था। इसके निबटारेके लिए पराड़करजी तथा दुर्गाप्रसादजी खत्रीने प्रयत्न किया। प्रेमचन्दजीको लिखे निम्नलिखित पत्रसे तत्सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट होती है—

प्रिय महाशय—श्री प्रवासीलालजी वर्मा और आपके झगड़ेके सम्बन्धमें हमने आप लोगोंके दिये हिसाब देखे। मुख्य झगड़ा 'हंस' और 'जागरण' के सम्बन्धके हानि-लाभका है; यद्यपि कुछ और भी झगड़े निकल सकते हैं। और यदि हमें इसका निबटारा करना पड़ा तो हमें मुख्य प्रयत्न इसी बातका पता लगानेका करना पड़ेगा कि इनके प्रकाशनके लिए आप दोनों सज्जन समान रूपसे दायी हैं अथवा आपमें कोई एक ही दायी है। पर यह प्रयत्न करनेके पहले हम आपसे स्पष्ट शब्दोंमें यह जानना चाहते हैं कि यदि हमने निर्णय किया कि केवल आप अथवा प्रवासीलालजीके साथ अंशतः आप भी दायी हैं और आपसे इस सम्बन्धमें अथवा किसी और बातके लिए प्रवासीलालजीको कुछ रकम देनेको कहा तो हमारे निर्णयको आप स्वीकार करेंगे अथवा नहीं। यदि यह स्वीकार्य न हो और अन्तमें मामला कोर्टमें ही जाय तो हम समझते हैं कि हमलोगोंका इसमें न पड़ना ही उचित होगा। कृपया उत्तर दीजिएगा।

इसी आशयका पत्र श्रीप्रवासीलाल वर्माको भी लिखा गया। इसके बाद प्रेमचन्दजीने हानि-लाभका एक चिट्ठा तैयार किया और भेजा। प्रवासीलालजीने भी हिसाब दिया। ३० जून, १९३६ को पराड़करजीने हिसाब देखकर प्रेमचन्दजीका पत्र लौटा दिया। इस प्रकार पराड़करजी तथा प्रेमचन्दजीका सम्बन्ध एवं सहयोग बना रहा। यह घटना प्रेमचन्दजीके जीवनके अन्तिम वर्षकी है।

सन् १९३७ में पराड़करजीने अस्वस्थ तथा अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी 'हंस'के प्रेमचन्द-स्मृति-अंकका सम्पादन किया था। इस स्मृति-अंकके सम्पादनके सिलसिलेमें प्रेमचन्दजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री श्रीपतरायने पराड़करजी-

को अनेक पत्र लिखे। इनमें दोनों साहित्य-महारथियोंके हार्दिक सम्बन्धका परिचय तो मिलता ही है, साथ-साथ यह भी विदित होता है कि प्रेमचन्दजीके निधनके बाद पराड़करजीकी इच्छा थी कि 'हंस'की अधिकाधिक उन्नति हो। इस निमित्त आपने सहयोग करनेका भी निश्चय किया था।

इस सम्बन्धके कुछ पत्र इस प्रकार हैं—

[१]

मान्यवर,　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　१०-४-३७

मेरे पास जो तसवीरें हैं, उन्हें भेज रहा हूँ। जिन्हें आप उचित समझें, अपने ही यहाँ ब्लाक बननेके लिए दे दें। तसवीरें बहुत थोड़ी-सी ही मेरे पास हैं। तसवीरोंके लिए यदि 'आज'में आप एक टिप्पणी लिख सकते तो शायद कुछ और तसवीरें मिल सकतीं। जैसा ब्लाक उचित होगा आप बनवा लें। ये तसवीरें कैसे छपेंगी, यह भी आप 'सजेस्ट' करेंगे।

सप्रणाम विनीत—**श्रीपतराय**

[२]

१२ अप्रैल, १९३७ के पत्रमें श्रीपतजीने स्मृति-अंकके लिए विशेष लेखोंके लिए पत्र लिखने तथा 'हंस'की सामग्री देखकर देनेका निवेदन किया। पत्र इस प्रकार है—मान्यवर, आपने आज 'हंस'के लिए सामग्री देखकर देनेको कहा था। भेज दीजिए। आज जो चार-पाँच लेख आये हैं, उन्हें भेज रहा हूँ। उर्दू-अँग्रेजीके लेख यदि आप जल्दी देख लें तो उन्हें अनुवादके लिए भेज दूँ। कुछ सज्जनोंको यदि आप आखिरी दफ़ा लिख सकें, तो अच्छा हो। वे ये लोग हैं—सर्वश्री जयचन्द विद्यालंकार, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, राहुल सांकृत्यायन, बनारसीदास चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीगुलाबरायजी। मेरी माँ मेरठ गई थीं। वहाँ जैनेन्द्रजी भी आये थे। वे यहाँ तीन-चार रोज़में आयेंगे।

विनीत—**श्रीपतराय**

[३]

प्रेमचन्दजीके निधनपर उर्दू लेखकोंने बहुत-से लेख लिखे। स्मृति-विशेषांकके लिए भी उर्दूके अधिक लेख आये। दिनांक २३ अप्रैलके पत्रमें श्रीपतजीने पराड़करजीको पत्र लिखा—उर्दूके अधिक लेखोंकी बात आते ही मैं शर्मसे गड़ जाता हूँ। वे लोग हिन्दीवालोंकी अपेक्षा सौ गुने अधिक उत्साही हैं। लेख आप जो भी अस्वीकृत करें, कर दें। उसमें मैं व्यक्तिगत बातोंकी शरण लेना नहीं चाहता। १२ मईके पत्रमें उन्होंने लिखा—मान्यवर, आपने एक दफ़ा यह कहा था कि 'आज'के एजेण्टोंके नाम 'हंस'की प्रतियाँ भेजकर देखूँ। आपने एक पत्र भी उन लोगोंके लिए कार्यालयसे लिखनेको कहा था। क्यों न अंक इसी माससे भेजा जाय ? पत्र आप मेरे पास भिजवा दें तो मैं उसे छपाकर फिर आपके पास भेज दूँ। विज्ञापन दाताओंके पते भी यदि आप भिजवा सकें तो उन्हें भी पत्र लिखवा दें। —श्रीपतराय

'कमला' तथा 'संसार'का सम्पादन

दैनिक 'आज'के प्रधान सम्पादक तो पराड़करजी थे ही, सन् १९३८ की ११ जुलाईसे साप्ताहिक 'आज'का जो प्रकाशन हुआ, उसके सम्पादक-मण्डलके भी आप ही प्रधान थे। साप्ताहिक 'आज' अपने समयका हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक समझा जाता था। इसमें पराड़करजीके प्रभावसे तत्कालीन हिन्दीके प्रायः सभी उच्चकोटिके साहित्यकारोंका सहयोग था।

दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रोंके साथ-साथ पराड़करजीने स्त्रियोपयोगी मासिक पत्रिका 'कमला'का सम्पादन मार्च, १९३८से किया। इस मासिक-पत्रिकाका सम्पादन केवल सम्पादककी भाँति ही आप न करते थे अपितु इसके पीछे देशमें महिला जागरण, परिवार नियोजन आदि समाजोपयोगी

आन्दोलनकी भावना प्रधान थी। 'कमला'का उद्देश्य यह था—महिलाओंमें भारतीय संस्कृतिके प्रति आदर उत्पन्न करते हुए अन्य विश्वासों और कुसंस्कारोंका नाश करके उन्हें आदर्श माता, आदर्श भगिनी और आदर्श पत्नी बनाना है। इसके प्रथम पृष्ठपर डाक्टर गंगानाथ झा शर्मा रचित संस्कृतका यह आदर्श-निर्देशात्मक पद्य प्रकाशित होता था—

'कमला' विमला भूयादार्यसँस्कारसंस्कृता।
सफला सत्कुलीनानां धर्मकल्याणरक्षणे॥

'कमला'का प्रकाशन भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारससे होता था। इस संस्थाके अध्यक्ष श्रीजगन्नाथप्रसाद भार्गवने 'कमला'का सम्पादन पराड़करजीको सौंपते हुए अपने निवेदनमें लिखा है[1].....'सौभाग्यवश इसके लिए सुयोग्य सम्पादक भी मिल गये। 'आज'के प्रधान सम्पादक और अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके इस वर्षके सभापति श्रीबाबूराव विष्णु पराड़करके सुयोग्य हाथोंमें 'कमला'का भार सौंपकर मैं निश्चिन्त हो रहा हूँ। इसकी सफलताके लिए भार्गव पुस्तकालयके सब साधन उपस्थित हैं, मैं हूँ, कमलाके भाई हैं। इस कार्यसे लाभकी कोई आशा नहीं है। प्रत्येक गृहस्थका घर कमलालय हो, यही सर्वशक्तिमान् परमेश्वरसे प्रार्थना है।' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पराड़करजीके सहायक थे।

कहना न होगा कि 'कमला' हिन्दी भाषामें अपने ढंगकी अनोखी और सर्वश्रेष्ठ महिला मासिक पत्रिका निकली। इसके लेखकोंमें तत्कालीन प्रथम श्रेणीके सभी साहित्यकार तथा नयी पीढ़ीके लेखक रहे हैं।

इस पत्रिकामें महिलोपयोगी अनेक ऐसे स्तम्भ थे, जो प्रथम बार महिला-मासिक पत्रमें आये। प्रसिद्ध मराठी लेखिका और विदुषी श्री कमलाबाई किवे तथा सुप्रसिद्ध हिन्दी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा, श्रीमती

---

१. 'कमला', अप्रैल १९३९, प्रथमांक।

शिवरानी प्रेमचन्द आदि इसमें नियमित रूपसे लिखतीं। सर्वश्री हरिऔधजी, माखनलाल चतुर्वेदी, जैनेन्द्रकुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि भी इसके प्रमुख लेखकोंमें रहे हैं। आशय यह कि 'कमला' मासिक साहित्य और महिला-साहित्य, दोनों दृष्टियोंसे बहुत उच्चकोटिकी पत्रिका थी। इसी पत्रिकाके माध्यमसे पराड़करजीने सन् १९३९ में जन्म निरोध आन्दोलनका श्रीगणेश किया था। इस सम्बन्धमें आपने प्रमुख महिलाओंसे भी सहयोग माँगा था। संयुक्तप्रान्तके बोर्ड आँफ रेवेन्यूके सदस्य तथा वाराणसीके भूतपूर्व लोकप्रिय जिलाधीश श्री मेहताने भी इस आन्दोलनकी महत्ता स्वीकार की थी। पराड़करजीको अपनी पत्नीके सहयोगका आश्वासन देते हुए उन्होंने लिखा था—'कमला' तथा पत्र भेजनेके लिए बहुत धन्यवाद। मेरी पत्नी जैसे ही यू० पी० लौटेंगी, मैं उनसे आप द्वारा चलाये आन्दोलनमें योग देनेको कहूँगा। जन्म निरोध आन्दोलनके सम्यक् संचालनपर ही भविष्य निर्भर करेगा।

आपका विश्वस्त—**बी० एन० मेहता**

सन् १९३३ में पण्डित कमलापति त्रिपाठी (सम्प्रति उत्तरप्रदेश सरकारके सूचना, शिक्षा एवं गृहमन्त्री) के 'आज' सम्पादक मण्डलमें सम्मिलित तथा सम्पादक नियुक्त होनेपर पराड़करजी 'आज' के प्रधान सम्पादक पदपर नियुक्त किये गये। इस पदपर आप सन् १९४२ तक कार्य करते रहे। अगस्त, १९४२ की राष्ट्रीय क्रान्तिमें 'आज' का प्रकाशन सरकारी दमन नीतिके विरोधमें—पूर्वकी भाँति राष्ट्रीय आन्दोलन कालमें—स्थगित कर दिया गया। सन् १९४३, जनवरीमें जब 'आज' पुनः प्रकाशित हुआ तो उसकी व्यवस्थामें परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तनके कारण 'आज' के अनेक पुराने कार्यकर्त्ता ज्ञानमण्डलसे चले गये और उन्होंने काशीसे ही 'संसार' नामका दैनिक पत्र निकाला। यह समय पराड़करजीके बड़े धर्म-संकटका था। 'आज' के नये प्रबन्धक तथा बाबू शिवप्रसाद गुप्तके तत्कालीन सेक्रेटरी श्री अन्नपूर्णानन्दजीने भरसक प्रयत्न किया कि पराड़करजी 'आज' छोड़कर न जायँ पर ज्ञानमण्डलसे हटे पुराने कार्यकर्त्ता बिना

पराड़करजीके सहयोगके नया दैनिक किस प्रकार निकाल सकते थे। उभय पक्षकी खींचातानी और घटना परम्परासे बाध्य होकर पराड़करजीने 'आज' से अलग होकर 'संसार' के प्रधान सम्पादकका पद स्वीकार किया।

दो वर्ष बाद जब सन् १९४५ में 'आज' की रजत जयन्ती मनायी गयी तो पराड़करजीने उस अवसरपर प्रकाशित 'आज' रजत जयन्ती विशेषांकमें अपने उक्त सम्बन्ध विच्छेदकी घटनाका उल्लेख करते हुए 'आज' के प्रति अपना हार्दिक प्रेम व्यक्त किया है[1]। ८ कार्तिक, २००२ विक्रम (नवम्बर, १९४५) को शुभ कामना प्रकट करते हुए पराड़करजीने लिखा—'आज' की इस रजत जयन्तीके शुभ अवसरपर जितना हर्ष मुझे हो रहा है उतना अन्य किसीको होता होगा या नहीं, इसमें सन्देह है। सम्भवतः यह मेरा अभिमान है पर सत्य। यद्यपि घटना परम्परासे बाध्य होकर, जिसके लिए वस्तुतः कोई दोषी नहीं है, मुझे 'आज'से शारीरिक सम्बन्ध विच्छेद कर लेना पड़ा पर हृदय जितना 'संसार' के लिए उतना ही 'आज' के लिए भी स्पन्दन करता है। काशीमें दो दैनिकोंके लिए स्थान हो गया है और मैं आशा करता हूँ कि भविष्यमें दोनों भाइयोंकी तरह फलते-फूलते रहेंगे। स्वभावतः मेरा प्रेम जो 'आज' से पहले था वही आज भी है और मेरे अन्तकाल तक बना रहेगा। परमात्मा उसे हीरकादि अन्य जयन्तियाँ मनानेके भी अवसर दें और वह अपने स्वर्गीय जन्मदाता श्री शिवप्रसाद गुप्तके उज्ज्वल देशप्रेम और हिन्दी प्रेमका झण्डा बनकर भारतीय आकाशमें सदा फहराता रहे।

लगभग तीन वर्षों तक (सन् १९४३ से १९४५ तक) पराड़करजी 'संसार' के प्रधान सम्पादक रहे। इस बीच उनकी लेखनीके चमत्कार, प्रौढ़ सम्पादकीय अनुभव एवं असाधारण प्रतिभाके कारण 'संसार' नया

---

१. 'आज' रजत-जयन्ती-विशेषाङ्क, पृष्ठ संख्या २९।

पत्र होनेपर भी हिन्दी संसारमें देखते-देखते ही चमक उठा। उनके 'संसार' के अग्रलेखोंने 'आज' की ही भाँति जनतामें एक नवीन जागृति उत्पन्न की, राष्ट्रीय संग्राममें मर मिटनेकी भावना उत्पन्न की और देशकी शासक विदेशी सत्ताको दहलाकर उसका सिंहासन दोलायमान कर दिया। बादमें 'संसार'का साप्ताहिक संस्करण भी निकलने लगा जिसके सम्पादक-मण्डलमें पराड़करजी प्रधान थे। सन् १९४५ में पराड़करजीने 'संसार' के प्रधान सम्पादक पदसे अवकाश ग्रहण किया और उसके संरक्षक बनाये गये। इस पदपर आप १५ अगस्त, सन् १९४७ तक रहे और बादमें पुनः 'आज' के प्रधान सम्पादक पदपर चले आये। 'संसार' के संरक्षक पदपर रहते हुए भी आप ही प्रायः सम्पादकीय लेख लिखा करते थे। सन् १९४७ में 'आज' के प्रबन्ध संचालक श्री सत्येन्द्रकुमारजी गुप्तके विशेष आग्रह-अनुरोध तथा 'आज' के प्रति अपने सहज स्नेहके कारण पराड़करजी, लगभग साढ़े तीन वर्षके अल्प व्यवधानके बाद अपने पुराने पदपर आ गये। 'आज' से अपना पुराना नाता जोड़नेके लिए कई महीने तक पराड़करजीकी अभ्यर्थना की गयी थी जिसमें दैनिक 'आज' के तत्कालीन फोरमैन श्री सरजू महाराजने उल्लेख्य योगदान दिया था। सन् १९४७ के अगस्तसे अपने निधन दिवस १२ जनवरी, १९५५ तक पराड़करजी 'आज' के सम्पादक तथा ज्ञानमण्डल संचालक मण्डलके अध्यक्ष पदपर रहे।

• स्वागताध्यक्ष, सभापति तथा सम्मान

संयुक्त प्रान्तीय चतुर्थ प्रेस कानफरेन्स, काशीमें ९ फरवरी, १९४७में हुई। पराड़करजी इस सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष थे। सम्मेलनका सभापतित्व प्रसिद्ध पत्रकार श्री वी० शिवरावने किया था और सम्मेलनका उद्घाटन सर महाराज सिंहने। इस सम्मेलनका एक विशिष्ट महत्त्व इसलिए भी है कि इसीमें विधान उपसमितिकी रिपोर्टपर विचार किया गया और यह

सिद्धान्त स्थिर किया गया कि कानफरेन्सको ट्रेड यूनियनका रूप दिया जाय और इसके सदस्य वे सभी श्रमजीवी पत्रकार बनाये जायँ, जिनका मुख्य धन्धा पत्रकारी है। प्रेस कानफरेन्सका नाम बदलकर फेडरेशन ऑव वर्किंग जर्नलिस्ट रखनेका निश्चय भी यहीं हुआ था। संयुक्त प्रान्तीय चतुर्थ प्रेस कान्फरेन्समें स्वागताध्यक्ष पदसे पराड़करजीने जो भाषण किया, उसका पत्रकारिता और हमारे पत्रकार-संघटन दोनों दृष्टियोंसे विशेष महत्त्व है। अपने भाषणमें आपने पत्रकारिताके क्षेत्रमें काशीके योगदानकी चर्चा करते हुए कहा कि जिस काशीमें सन् १९२० में किसी भी दैनिक या साप्ताहिककी पचाससे अधिक प्रतियाँ नहीं बिकती थीं, उसी काशीमें आज जब कि तीन-तीन दैनिक पत्र निकल रहे हैं, एक-एक पत्रकी हजार-हजारसे भी अधिक प्रतियाँ बिक रही हैं। यही नहीं, आपने यह विश्वास प्रकट किया कि समय सुधरते ही काशीमें समाचारपत्रोंकी खपत आजसे दुगुनी हो जायगी। केवल प्रचार ही नहीं, विषय, सम्पादन, समाचार आदि सब बातोंमें काशीके पत्रोंने अन्य हिन्दी पत्रोंको मार्ग दिखाया है। पत्रकारोंकी वृत्तिके परिवर्तित स्वरूप, पत्रकार संघटनके विकास और उसके भावी रूपकी चर्चा करते हुए, पराड़करजीने कहा कि प्रधान नागरिकों, औद्योगिकों और राजनीतिक केन्द्रोंसे कुछ दूर रहनेपर भी हिन्दी पत्रकारीके लिए काशीने जो कुछ किया है, वह हमारे लिए कम गौरवकी बात नहीं है।[1]

मराठी पत्रकार सम्मेलनके सभापति

सन् १९५०में पराड़करजी मराठी साहित्य सम्मेलनके तैंतीसवें अधिवेशनके वृत्तपत्र-वाङ्मय परिषद्के अध्यक्ष चुने गये। इस सम्मेलनकी अध्यक्षता करने आप काशीसे १० मईको बम्बई मेलसे गये। इस सम्मे-

---

१. पूरा भाषण पत्रकारिता खण्डमें देखिए।

लनका आयोजन बम्बईमें १५ मई १९५० को हुआ था। मराठी साहित्य-सम्मेलनकी पत्रकार-परिषद्के अध्यक्ष पदसे किया हुआ आपका भाषण भारतीय पत्रकारिताके ऐतिहासिक संस्मरण प्रस्तुत करता है और प्रस्तुत करता है भारतीय साहित्यमें वर्तमान गद्य-साहित्यका विकास विषयक नवीन अनुसन्धान। अपने इस भाषणमें पराड़करजीने बताया है कि सर्वप्रथम समाचारपत्र उन्होंने कब देखा तथा किन परिस्थितियोंमें पत्रकारिताके क्षेत्रमें कार्य प्रारम्भ किया। भारतीय समाचारपत्रोंके विकासकी रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए आपने कहा—'मेरा अनुभव यह है कि गद्य किसी प्रकारका हो, इसकी साधारण रूपरेखा सब प्रान्तोंमें पत्रकारोंने ही निश्चित की और बादमें साहित्यिकोंने उसे अधिक स्पष्ट, अधिक उज्ज्वल और अधिक शुद्ध किया।'[1] पराड़करजीका यह भाषण पत्रकारिताके क्रमिक विकासपर प्रकाश डालता हुआ गद्य-साहित्यके उद्भवपर अभिनव एवं मौलिक विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

महात्मा गाँधी-पुरस्कार

पराड़करजीने हिन्दी भाषा तथा साहित्यके प्रचार-प्रसार, प्रणयन, परिमार्जन एवं संवर्धनके निमित्त, जो असाधारण सेवा की उसके प्रति आदर प्रकट करनेके लिए आप हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति बनाये गये तथा सम्मेलनने आपको 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि भी प्रदान की। अहिन्दी भाषी होते हुए भी राष्ट्रभाषाकी जीवन पर्यन्त सतत साधना एवं संवर्धनाके लिए १० नवम्बर, १९५३ को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाने अपने पाँचवें नागपुर सम्मेलनमें पराड़करजीको १५०१) का महात्मा गाँधी पुरस्कार प्रदान किया। यह सम्मेलन श्री न० वि० गाडगिल (सम्प्रति राज्यपाल, पंजाब) की अध्यक्षतामें हुआ था तथा पराड़करजीके

१. पूरा भाषण पत्रकारिता खण्डमें देखिए।

पुराने सहयोगी एवं तत्कालीन मद्रासके राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजीने इसका उद्घाटन किया था। सम्मेलनमें मध्यप्रदेशके तत्कालीन राज्यपाल पट्टाभि-सीतारमैया भी उपस्थित थे। सम्मेलनके अध्यक्ष "श्री गाडगिलने पुरस्कार प्रदान करनेके पूर्व पराड़करजीका चन्दन-रोरी लगा तथा माला पहनाकर पूजन किया। इस अवसरपर सुप्रसिद्ध साहित्यकार कविवर पण्डित माखन-लाल चतुर्वेदीने पराड़करजी सम्बन्धी संस्मरण सुनाते हुए उनकी अभ्यर्थना की। समारोहका उद्घाटन करते हुए श्री श्रीप्रकाशजीने अपने भाषणमें पराड़करजीके साथ पिछले ३३ वर्षोंके अपने सहयोगका उल्लेख करते हुए कहा कि आपने हम हिन्दी भाषियोंको अपनी ही भाषा सीखनेके लिए उत्साहित किया। सम्मेलनके अन्तिम अधिवेशनमें राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके प्रधान मन्त्री श्रीमोहनलाल भट्टने घोषणा की कि समितिके पुस्त-कालयके साथ बर्धामें एक संग्रहालय शीघ्र स्थापित किया जायगा जिसका नाम रहेगा—'श्रीपराड़कर हिन्दी संग्रहालय'। पराड़कर हिन्दी संग्रहालयके लिए पहली भेंटके स्वरूप भदन्त आनन्द कौशल्यायनने पराड़करजीके पाँच अग्रलेखों तथा पाँच टिप्पणियोंकी पाण्डुलिपियाँ समर्पित कीं। इसी सम्मे-लनके अवसरपर 'कर्मवीर' के सम्पादक, प्रख्यात साहित्यकार तथा पराड़कर-जीके अभिन्न साहित्यिक मित्र पण्डित माखनलाल चतुर्वेदीने पराड़करजीके गौरवका ओजस्वी शब्दोंमें उल्लेख करते हुए बताया कि पराड़करजीने केवल हिन्दी भाषाकी सेवा ही नहीं की, वरन् सन् १९०३ से एक हाथमें गीता और दूसरेमें पिस्तौल लेकर स्वर्गीय सखाराम गणेश देउस्करके साथ रहकर राजनीतिक युद्ध भी किया।

संस्थाओं द्वारा अभिनन्दन

नागपुर जानेपर पराड़करजीके स्वागतार्थ एवं अभिनन्दनके लिए वहाँकी साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओंमें होड़-सी लग गयी। १३ नवम्बर, १९५० को पराड़करजी, राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके निमन्त्रणपर बर्धा

गये। समितिके हिन्दी प्रचार-प्रसारके विभिन्न कार्यों एवं विभागोंको देखकर आपने प्रसन्नता प्रकट की। समितिके सदस्योंके स्वागतका उत्तर देते हुए पराड़करजीने कहा—राष्ट्रभाषा सबकी है केवल हिन्दी भाषियोंकी नहीं है। अतः उसके विकासके लिए सबको प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दी भाषाके विकासके लिए प्रादेशिक भाषाओंसे उत्तमोत्तम शब्द और मुहावरे हिन्दीमें समाविष्ट करना चाहिए। पारिभाषिक शब्दोंके लिए आपको संस्कृतको आधार बनाना होगा। मैंने स्वयं मराठी, गुजराती और बंगला भाषाओंसे दो सौसे अधिक शब्द हिन्दीमें ग्रहण किये हैं। हिन्दी भाषाका शब्दसंग्रह विशाल करने और उसका संवर्धन करनेके लिए प्रादेशिक शब्दोंको ग्रहण करना आवश्यक है। यह विशेष संयोगकी बात थी कि १६ नवम्बर, १९५३को जब पराड़करजीने अपनी सतत साधना और सेवामय जीवनके ७० वर्ष पूर्ण किये तो आप उस दिन नागपुरमें ही थे। इसका पता वहाँकी साहित्यिक संस्थाओंको पराड़करजीके नागपुर स्थित मित्रों एवं सम्बन्धियोंसे लग गया। स्वागत-समारोहों तथा आत्मप्रचारसे दूर रहकर, शान्त-एकान्त साधना करनेवाले पराड़करजीको १६ नवम्बर, १९५३ को विदर्भ साहित्य संघ, नागपुर साहित्य सम्मेलन तथा 'नरकेसरी' प्रकाशन द्वारा आयोजित साहित्यिक समारोहोंमें सम्मिलित होना पड़ा। विदर्भ साहित्य संघ तथा नागपुर साहित्य सम्मेलनकी ओरसे पराड़करजीकी ७० वीं जयन्ती संयुक्त रूपसे समारोहपूर्वक मनायी गयी। इसमें पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्र, श्री प्रभाकर माचवे, श्री हृषीकेशजी शर्मा आदिने पराड़करजीके महान् कृतित्वकी चर्चाकर उनका अभिनन्दन किया। पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्रने कहा—पराड़करजीने हिन्दीकी जो सेवा की है उसके लिए प्रत्येक हिन्दी भाषीको कृतज्ञ होना चाहिए। आज हिन्दी समाचारपत्र-जगत्में सर्वश्रेष्ठ स्थान पराड़करजीके 'आज' का ही है। आपने इसे अपने रक्तसे सींचकर बढ़ाया है तथा अपने लेखों द्वारा देशका मार्गदर्शनकर उत्कृष्ट राष्ट्रभक्तिकी भावना फैलायी। इस समादरके प्रति आभार प्रकट करते हुए पराड़करजीने

कहा—नागपुर जैसे भारतीय भाषा संगम स्थानमें मेरी ७० वीं वर्षगाँठ मनायी जा रही है, यह मेरा अहोभाग्य है। आपने मेरी जो प्रशंसा की है, उसका पात्र मैं अपनेको नहीं समझता। यहाँ श्री गणेशशंकर विद्यार्थी-जीकी चर्चा हुई है उनका मेरा सम्बन्ध सन् १९०६ से है। जब मैं कलकत्तेमें था उसी समय मैंने गणेशशंकर विद्यार्थीजीका प्रथम लेख 'हितवार्त्ता' में प्रकाशित किया था। उनमें ज्ञानार्जनकी अपूर्व तेजस्विता थी और उस समय वे विद्यार्थीकी भाँति कलकत्तेमें अध्ययन कर रहे थे।

• समाज और परिवारमें

पराड़करजीका महान् व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनका स्वभाव अत्यन्त स्नेही प्रकृतिका था। देशकी स्वाधीनताके लिए क्रान्तिकारी रूपमें उनका कार्य हम देख चुके हैं। हिन्दी साहित्य तथा भाषाके उन्नयनमें भी उनका असाधारण योग रहा है और आधुनिक हिन्दी पत्रकारिताके तो वे जनक ही माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त सामाजिक कार्योंमें उनका सदा सहयोग रहता था। राज्य तथा नगर कांग्रेसके अनेक महत्त्वपूर्ण दायित्वोंका उन्होंने वहन किया था। काशी विद्यापीठके प्रमुख कार्यसंचालकोंमें उनका स्थान-विशेष था। सन् १९३७ में वे कोतवाली वार्ड पंचायतके सभापति थे। उन्होंने पराधीनता कालमें कांग्रेस स्वदेशी प्रदर्शनीका आयोजन किया था और टाउनहालमें तिरंगा झण्डा फहराया था। उत्तर प्रदेश सरकारकी अनेक कमेटियोंके वे सदस्य थे। भारत सरकारकी परराष्ट्र-नीति परामर्श समिति-के भी वे सदस्य थे।

चिकित्सक पराड़करजी

पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर होमियोपैथीके विशेषज्ञ भी थे। होमियोपैथिक चिकित्साका उन्हें बहुत ही सूक्ष्म परिज्ञान था। कलकत्तेकी जीवनचर्यामें ही उन्होंने इस चिकित्सा-विज्ञानका गहन अध्ययन किया था।

वे न केवल इस चिकित्सा-पद्धतिके सिद्धान्त मर्मज्ञ थे अपितु उनमें सटीक औषध निर्वाचनकी असाधारण योग्यता थी। इस प्रसंगमें सम्पादकाचार्य पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीका निम्न संस्मरण पराड़करजीकी विशेषता प्रकट करता है—'सन् १९१५ में जब हम बाहर गये हुए थे, तब छोटे लड़केको बाल-विसूचिकाका कष्ट हो गया। पिताजीने तुरन्त बाबूरावजीको बुलाया। उन्होंने होमियोपैथिक चिकित्सा करनेका अभ्यास कर रखा था। तुरत रोगकी रोकके लिए दवा दी और दो घण्टेमें बच्चा स्वस्थ हो गया।'

प्रसिद्ध विद्वान् श्री रामदास गौड़, पराड़करजीके घनिष्ठ मित्रोंमें थे। उन्हें मालूम था कि पराड़करजी होमियोपैथीकी बड़ी अच्छी औषधियाँ देते हैं। उन दिनों गौड़जी 'प्लेनचेट' चलाकर आत्माओंसे बात किया करते थे। एक बार उनकी छोटी पुत्री बीमार पड़ गयी। इस कारण उन्होंने 'प्लेनचेट' पर पराड़करजीकी आत्माको बुलाकर होमियोपैथीकी दवा पूछी। जो दवा उन्होंने बतायी, वह मँगायी गयी और उससे गौड़जीकी बालिका शीघ्र स्वस्थ हो गयी। इस घटनाका उल्लेख करते हुए श्री रामदासजी गौड़ने पराड़करजीको बधाईका पत्र लिखा तो स्वयं पराड़करजी आश्चर्य-चकित रह गये।[1] पराड़करजीके अन्य साहित्यिक मित्रोंको भी यह बात भली-भाँति विदित थी कि वे अचूक होमियोपैथिक औषधि देते हैं। इसी कारण लोग उन्हें इस सम्बन्धमें बराबर पत्रादि लिखते थे। १ अक्तूबर, १९३९ के एक पत्रमें सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदीने पराड़करजीको लिखा—'········एक बात और। मुझे नींद ठीक तौरपर नहीं आती और चाय बन्द नहीं होती! कोई होमियोपैथिक दवाई है क्या? रात तीन बजेका उठा हुआ हूँ।[2] विनीत—**बनारसीदास**

---

१. 'आज' के भूतपूर्व फोरमैन श्री सरजू महाराजसे ज्ञात।

२. यह पत्र टीकमगढ़से उसी वर्ष काशीमें होनेवाले हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके अवसरपर पत्रकार सम्मेलनकी अध्यक्षताके प्रसंगमें लिखा गया था।

इससे स्पष्ट है कि पराड़करजी सन् १९१५ के पूर्वसे ही इस कलामें दक्ष थे और यह बात चतुर्दिक् प्रसिद्ध हो गयी थी कि वे अचूक होमियोपैथिक दवा देते हैं। उनके पास होमियोपैथी सम्बन्धी अत्यन्त मूल्यवान् तथा दुर्लभ साहित्य रहा है। होमियोपैथिक औषधियोंका बक्स उनके घर तथा 'आज' कार्यालयमें उनकी मेजकी दराजमें रहता था। 'आज' कार्यालयमें वे चुनी हुई होमियोपैथिक औषधियोंका छोटा बक्स भी रखते थे।

परलोक-विद्या और पराड़करजी

सन् १९१६ से १९१९ तक अपनी नज़रबन्दीके दिनोंमें पराड़करजीकी रुचि आध्यात्मिक साधनाकी ओर प्रवृत्त हुई और वे योग-साधना करनेका अभ्यास करने लगे। योगके साथ मृत्युके बाद आत्मा अथवा जीवके अस्तित्वके सम्बन्धमें भी उनको बड़ी दिलचस्पी थी। श्रीरामदास गौड़की मैत्री तथा परलोक-विद्याविशारद श्री बी० डी० ऋषिके परिचयने उन्हें बादमें इस ओर और भी आकृष्ट किया। श्रीगौड़ अपने घरपर 'प्लैनचेट' चलाकर जीवात्माओंसे बात किया करते थे। इस सम्बन्धमें उन्होंने तत्कालीन 'माधुरी' मासिक पत्रिकामें अनेक लेख भी लिखे थे। उनके बारेमें प्रसिद्ध है कि वे जीवित तथा मृत दोनों प्रकारकी जीवात्माओंको 'प्लैनचेट' चलाकर बुलाते और प्रश्नोत्तर करते थे। एक दिन जब पराड़करजी, गौड़जीके यहाँ गये और 'प्लैनचेट' चलानेपर उनके प्रश्नोंका ठीक उत्तर मिलने लगा तो वे इससे बहुत प्रभावित हुए और अपने घर भी इसका प्रयोग करने लगे। इस ओर आपका विशेष झुकाव उस समय हुआ जब परलोक विद्याके विशेषज्ञ श्री बी० डी० ऋषि और उनकी पत्नी काशी आये। यों छात्र जीवनमें पराड़करजीको एक ऐसे चमत्कारकी अनुभूति हुई थी और वे इस सम्बन्धमें प्राय: चिन्तन करते। जब वे भागलपुरमें पढ़ते थे तो उसी समय उनका एक छोटा भाई गंगामें डूबकर मरा। जिस दिन यह दुर्घटना बनारसमें हुई ठीक उसी दिन सन्ध्याको जब पराड़करजी कालेजसे पढ़कर

आये तो घरके तीन-चार वर्षके बालकने उनकी पीठपर चढ़कर बताया कि छोटा भाई डूब गया। यह एक विचित्र बात थी ! यह आश्चर्य चार-पाँच दिन बाद उस समय सत्य सिद्ध हुआ जब काशीसे उनके पास पत्र आया कि अमुक दिन छोटा भाई गंगामें डूब गया।[1]

श्री बी० डी० ऋषिसे पराड़करजीका परिचय सन् १९२६ से रहा है। दोनोंमें यथेष्ट घनिष्ठता थी। पराड़करजीके घरमें ऋषि-दम्पतिने प्लैनचेट प्रयोग किये थे। प्लैनचेट बादामके आकारका तीन पहियेका एक या सवा बालिश्तका छोटा-सा टेबुल होता था। इसपर कई आदमी हाथ रखते थे। अपने संकेत रखकर लोग प्रश्न पूछते थे। आत्मा जब आती थी तो टेबुल हिलने लगता था। श्री बी० डी० ऋषिके काशीसे जानेके बाद भी ये प्रयोग, पराड़करजी तथा श्रीरामदासजी गौड़के यहाँ बराबर होते रहे। इन प्रयोगोंमें पराड़करजीके मित्र श्रीनिवास शास्त्री भी सम्मिलित रहते। एक दिन पराड़करजीके घरपर प्लैनचेटपर आत्माओंका आवाहन किया जा रहा था। पराड़करजीने अपनी पत्नीको बुलाया किन्तु वे न आयीं। इसके बाद श्रीनिवास शास्त्रीने अपने मृत भाईका स्मरण किया। कुछ ही क्षणोंके बाद ठक-ठक जैसा संकेत मिला। इसके बाद भी अनेक बार प्रयोग हुए। इसकी चर्चा चारो ओर फैल गयी और अनेक लोग पराड़करजीसे प्लैनचेट प्रयोग दिखाने तथा सिखानेकी जिज्ञासा प्रकट करने लगे।

१२ जनवरी, १९५५ को ब्राह्म मुहूर्तमें पराड़करजीका निधन हुआ। आप प्रायः दो महीनेसे अस्वस्थ थे। जीवनकी अन्तिम रातको भी आपको हिन्दीका ध्यान था। महानिद्राके पूर्व आपका अन्तिम कार्य था—हिन्दू-विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके अध्यक्ष डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदीके नाम एक अहिन्दी भाषी छात्रको शोधकार्यमें सहायता देनेके लिए पत्र

---

१. श्री श्रीनिवास शास्त्रीसे ज्ञात।

लिखना। काशीमें आपके निधनसे शोककी लहर फैल गयी। नगरके मुख्य बाजार तथा शिक्षा-संस्थाएँ बन्द हो गयीं। पराड़करजीका अन्तिम संस्कार मणिकर्णिका घाटपर चरणपादुकापर हुआ। आपके निधनपर राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजीने भी शोक प्रकट किया। देशके विभिन्न भागों तथा विदेशोंमें भी आपके लिए शोक व्यक्त करते हुए आपके महान् कार्यों-का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया गया।

पराड़करजी अपने पीछे सम्पादकों और साहित्यकारोंकी बहुत बड़ी शिष्यमण्डली छोड़ गये हैं। इनमें कुछ तो सम्प्रति मन्त्रिमण्डलमें हैं और अनेक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार, सम्पादक तथा पत्रकार देशके विभिन्न साहित्यिक संस्थानोंमें, पत्रोंमें अथवा स्वतन्त्र रूपसे साहित्य और पत्रकारिता-की सेवामें संलग्न हैं। पराड़करजीको पारिवारिक सुख कभी नहीं मिला और इसकी प्रतिक्रिया उनके उत्तरार्ध जीवनमें दृष्टिगोचर हुई। जीवनके अन्तिम दिनोंमें उन्हें शारीरिक दुर्बलताके साथ ही आर्थिक कष्ट भी बना रहा। सम्प्रति उनके परिवारमें उनके दो भतीजे सर्वश्री कृष्ण माधव पराड़कर, मंगल माधव पराड़कर तथा पोष्य पुत्र श्री अशोक पराड़कर हैं।

साहित्य-खण्ड

हिन्दी भाषा तथा साहित्यको देन

आधी शताब्दीसे भारत, भारती और भारतकी सतत साधनामें संलग्न रहनेवाले तथा देशमें क्रान्ति एवं अनेकानेक युग-परिवर्तनके स्रष्टा और द्रष्टा सम्पादकाचार्य पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर राष्ट्रकी प्रमुख विभूतियोंमें रहे हैं। विचारों-द्वारा देशमें जिन महापुरुषोंने नव-जागरण और राष्ट्रीय चेतनाका स्फुरण किया, उनमें श्रद्धेय पराड़करजीका विशेष एवं विशिष्ट स्थान है। शब्दोंके इस जादूगरने देशके लक्ष-लक्ष जनोंको मानवताका पाठ पढ़ाया, अपने लेखों तथा टिप्पणियों द्वारा उन्हें अपने अधिकारोंका बोध कराया और बताया है उन्हें दासत्व-श्रृंखलासे मुक्त होनेका मन्त्र! बीसवीं सदीके प्रारम्भसे कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होकर अपने जीवनकालमें लाखों मानवोंकी विचारधाराको उत्तेजित-आन्दोलित करनेवाले इस साहित्य-महारथीका जितना महान् व्यक्तित्व था, उतना ही महान् है उसका कृतित्व। देशके समाज, राजनीति, साहित्य और संस्कृतिपर इस महान् तपस्वीकी लेखनीने अपनी अमर छाप अंकित की है। पराड़करजी न केवल आधुनिक हिन्दी पत्रकारिताके जनक थे अपितु हिन्दी भाषा और साहित्यके भी अनन्य उन्नायक थे। दैनिक पत्रोंके सम्पादन तथा नित्य सम्पादकीय लेखोंके लिखनेके बाद उन्हें अवकाश ही कहाँ मिला कि वे पुस्तकोंका प्रणयन करते। 'आज' तथा 'संसार' आदि पत्रोंमें लिखे उनके लेख तथा अनेकानेक टिप्पणियाँ हिन्दी साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं, जिनकी ओर अबतक बहुत कम लोगोंका ध्यान गया है।

हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेमें योग

हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनानेका जो आन्दोलन देशमें चला, उसके प्रमुख कर्णधारोंमें पराड़करजीकी गणना होती है। देशकी स्वतन्त्रताके लक्ष्यको

सम्मुख रखनेके साथ ही आपने 'आज'के माध्यमसे आन्दोलन किया कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनायी जाय। सन् १९३८में इसी महान् कृतित्वके परिणामस्वरूप पराड़करजी, शिमला साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्षपदसे आपने जो भाषण किया, वह हिन्दी भाषा और साहित्यके इतिहासमें स्मरणीय रहेगा। महाराष्ट्रीय होते हुए भी आपने हिन्दीके प्रचार और विकासके निमित्त जो योगदान किया, वह अभूतपूर्व है। हिन्दीकी विशेषता बताते हुए आप प्रायः कहा करते थे कि सभी भारतीय भाषाओंमें दूसरी भाषावालोंके लिए घृणा व्यक्त करनेवाले शब्द हैं पर हिन्दीमें नहीं। उदाहरणस्वरूप आप मराठीका 'रांगड़ा', बँगलाका 'खोट्टा' आदि शब्द सम्मुख रखते। पराड़करजीने हिन्दी भाषाको सैकड़ों नये शब्द दिये। व्याकरण सम्बन्धी आपकी अनेक मौलिक मान्यताएँ रही हैं। इस सम्बन्धमें आपने गहन अध्ययन भी किया था। एक समय जब इन पंक्तियोंका लेखक उनके सानिध्यमें बैठा था तो व्याकरणकी ही चर्चा चल पड़ी। पराड़करजीने बताया कि हिन्दीमें 'कर्म'में 'को' कब होता है और कब नहीं, इसपर कम विचार हुआ है। कर्मणि'को' कहाँ होता है और कहाँ नहीं, इसका ज्ञान बहुत थोड़ोंको होता है। इसी कारण भाषामें व्याकरणकी अनेक भूलें आये दिन देखनेमें आती हैं। आपने उदाहरण देते हुए बताया कि मनुष्यवाचक, जीववाचक आदि कर्ममें 'को' लगता है। निर्जीवमें 'को' नहीं लगता। सजीवमें कभी लगता है और कभी नहीं लगता पर मनुष्यमें अवश्य लगता है। लोग प्रायः कहते हैं—(१) मैंने रास्तेमें श्यामको देखा (२) घरको देखा। इसमें प्रथम तो ठीक है पर द्वितीय प्रयोग ठीक नहीं। उक्त सिद्धान्तको स्पष्ट करते हुए आपने दूसरा उदाहरण यह दिया कि (१) रामने रावणको मारा तो ठीक है किन्तु (२) कसाईने बकरीको मारा, ठीक प्रयोग नहीं। इसी प्रकार 'घर गिराया', ठीक है, 'घरको गिराया' कहना ठीक नहीं। व्याकरण पराड़करजी-का बड़ा प्रिय विषय था और वे व्याकरण सम्बन्धी एक पुस्तक लिखना भी

चाहते थे पर उनकी यह इच्छा परिस्थितियोंके कारण मनकी मनमें ही रह गयी।

दैनिक पत्रका सम्पादन, पारिवारिक संकट तथा दैनिक पत्रमें नित्य ही लिखनेके बाद पराड़करजीके पास कौन-सी शक्ति और समय शेष रहता था कि वे स्वतन्त्र रूपसे साहित्यका निर्माण करते। उन्होंने जीवन-भर अपनी समस्त शक्ति और प्रतिभा पत्रकारिताकी श्रीवृद्धिके निमित्त समर्पित कर दी थी। इतना होनेपर भी साहित्य-निर्माणका प्रश्न आपकी दृष्टिसे कभी ओझल न था, अपितु 'आज' के माध्यमसे वे सदा साहित्य तथा साहित्यकारोंकी समस्याओंपर स्वयं लिखा करते और अन्य विद्वानोंसे भी लिखवाया करते। एक समय था जब हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति तथा सम्मेलनकी अन्य परिषदोंके अध्यक्षोंके पूरे भाषण 'आज' में प्रकाशित होते थे।

हिन्दी-जगत्‌में पराड़करजी साहित्य, भाषा तथा पत्रकारिताके आचार्य-रूपमें समादृत हैं। यही कारण रहा है कि तत्कालीन साहित्यकार अपनी पुस्तकोंकी भूमिकाएँ उनसे लिखवानेके लिए उत्सुक रहते थे। पराड़करजीने कितनी पुस्तकोंकी भूमिकाएँ लिखीं, यह कहना तो कठिन है किन्तु उनकी लिखी छः पुस्तकोंकी भूमिकाओंकी चर्चा—उनकी शैलीगत विशेषताओं तथा विभिन्न विषयोंके उनके गहन अध्ययनके निदर्शन-स्वरूप संक्षेपमें यहाँ की जा रही है। ज्ञातव्य है कि जिन अनेक पुस्तकोंकी भूमिकाएँ उन्होंने लिखी हैं, उनपर वे वस्तुतः स्वतन्त्र पुस्तकें ही लिखना चाहते थे। हिन्दी व्याकरणकी पुस्तकके सम्बन्धमें ऊपर चर्चा हो चुकी है। प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीरामचन्द्र वर्माकी 'अच्छी हिन्दी' की प्रस्तावनामें व्याकरण तथा हिन्दी प्रयोग सम्बन्धी ऐसी पुस्तकके लिखनेका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है। वे लिखते हैं—'दैनिक पत्रका सम्पादन कार्य करते समय कई बार मेरे मनमें आया कि नये लेखकोंसे प्रायः होनेवाली भूलोंकी एक सूची बनाकर उनसे बचे रहनेकी सलाह अपने सहकारियोंको दूँ। कई सहकारियोंने भी

अनेक बार इसके लिए मुझसे अनुरोध किया। पर जो काम टाला जा सके, उसे टालते रहनेकी अपनी प्रवृत्तिके कारण मैं अपनी इच्छा और भ्रातृ-तुल्य सहकारियोंके अनुरोधकी रक्षा कभी न कर सका।[1]

'अच्छी हिन्दी'की प्रस्तावना

'अच्छी हिन्दी'की प्रस्तावनाके माध्यमसे पराड़करजीने, स्वर्गीय आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लकी परम्परामें हिन्दी भाषा, व्याकरण तथा हिन्दी प्रयोगोंके सम्बन्धमें व्याप्त अराजकताकी स्थितिका सिंहावलोकन किया। भाषा तथा साहित्यके क्षेत्रमें फैली अव्यवस्था एवं उच्छृङ्खलताकी आपने न केवल आलोचना ही की अपितु स्थिति-सुधारके रचनात्मक सुझाव भी दिये हैं। यह प्रस्तावना पराड़करजीके हृदयगत भावोंकी दिग्दर्शक तो है ही, उनके भाषा पाण्डित्य-की भी परिचायक है। इसमें सबसे पहले आपने उस भारतीय शिक्षा-प्रणालीको आलोचना की है, जिसमें प्राधान्य विदेशी साहित्यको और गौणत्व मातृभाषाके साहित्यको दिया जाता है—जिसमें अपनी भाषामें हृदयके भाव या विचार प्रकट करनेकी शिक्षा दी ही नहीं जाती। इस उपेक्षाके राष्ट्रघातक प्रभावकी चर्चा करते हुए आपने विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीकी शिक्षाविषयक उदासीनताकी कठोर आलोचना की है। आप लिखते हैं—'इधर स्कूलोंमें अन्य विषयोंकी शिक्षा मातृभाषा द्वारा देनेका नियम बनाया गया है। इसके लिए इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषयोंकी पुस्तकें भी हिन्दीमें तैयार की गयी हैं। पर उन पुस्तकोंको पढ़नेका अवसर जिन्हें मिला है, वे यदि मातृभाषा-प्रेमी हों तो अवश्य हिन्दीके भाग्यको रोते होंगे। क्या भाषा है। लेखकोंको हिन्दी व्याकरणका भी ज्ञान नहीं है,

---

१. 'अच्छी हिन्दी' की पराड़करजी लिखित प्रस्तावना : पृष्ठ संख्या ८५।

मुहावरों यानी वाक्य-सम्प्रदायोंकी तो बात ही जाने दीजिए। यह देखकर सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हिन्दीका शिक्षा-विभागमें इस प्रकार प्रवेश पा जाना वस्तुतः वर है अथवा अभिशाप। पहले हमारे बालक मातृभाषा जानने ही न पाते थे। अब जानने पाते हैं तो विकृत और भ्रष्ट रूपमें। क्या अशुद्ध जाननेकी अपेक्षा न जानना ही अच्छा नहीं है? ऐसी दशामें हमारे नवीन लेखकोंको न मातृभाषाका पूरा ज्ञान होता है, न वे उसकी परम्परासे परिचित होते हैं, और न शुद्ध, सरल भाषामें अपने हृद्गत भाव प्रकट कर सकते हैं। × × × विद्यालयों और विद्यापीठोंमें हिन्दीकी उपेक्षाका यदि केवल अभावात्मक परिणाम ही हमें भोगना पड़ता तो भविष्यमें उसकी पूर्तिकी आशा करके हम आत्म-सान्त्वना कर लेते। पर परिणाम 'दुर्भावात्मक' हो रहा है। भाषा बिगड़ रही है, साहित्य ओजहीन, प्राणहीन हो रहा है। उसके शब्दों और वाक्यों-में जातिकी प्रकृति नहीं दिखायी देती। वह पर-जातिके हृदयका—उसकी भावनाओं और आकांक्षाओंके प्रकाशनका—साधन हो रही है। यह दोष हमारे नवीन लेखकोंका नहीं, उनकी शिक्षाका है, जिसने उन्हें अपने आप-को व्यक्त करने योग्य नहीं बनाया।[1]

उपर्युक्त प्रस्तावनामें आगे पराड़करजीने अंग्रेजी शिक्षित युवकों द्वारा हिन्दी लिखनेके प्रयत्नोंके परिणामों और परिस्थितियोंका विवेचन-विश्लेषण करते हुए भाषा एवं साहित्य क्षेत्रकी वर्तमान स्थितिका अत्यन्त अनुभूतिपूर्ण विवरण उपस्थित किया है। अन्तमें आपने हिन्दीके लेखकों, अध्येताओं तथा पत्रकारोंका ध्यान भाषाके शुद्ध और व्याकरण सम्मत प्रयोगकी ओर आकृष्ट किया है। शब्द-प्रयोग, वाक्य-विन्यास, क्रियाएँ और मुहावरे, लिङ्ग और वचन, अनुवाद तथा हिन्दीकी प्रकृतिकी ओर लेखकोंको विशेष ध्यान देना चाहिए, यह पराड़करजीका मत रहा है। आपका कथन था कि

---

१. श्रीरामचन्द्र वर्मा लिखित 'अच्छीहिन्दी'की प्रस्तावना देखिए।

क्रियाओंके प्रयोगमें अच्छे-अच्छे लेखक भी भूल कर जाते हैं, कुछ अभ्यास-वश, कुछ असावधानताके कारण। यदि हमें हिन्दीका साहित्य बढ़ाना है, उसे पुष्ट और भावव्यंजक करना है तो इस ओर ध्यान देना ही पड़ेगा। यह विषय इतना व्यापक है कि इसपर एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखी जा सकती है। आशा है, कोई विद्वान् इधर ध्यान देंगे, अथवा काशी नागरी प्रचारिणी सभा या हिन्दी साहित्य सम्मेलन ही यह कार्य अपने हाथमें लेगा।[1]

'काम-दर्शन'की भूमिका

इसी प्रकार पराड़करजीका काम-शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन भी अत्यन्त गहन था। आपने अपने मित्रों तथा सम-सामयिक साहित्यकारोंसे इस सम्बन्धमें अनेक बार इसकी चर्चा भी की थी। सुप्रसिद्ध दार्शनिक स्वर्गीय डाक्टर भगवानदासजीसे भी इस विषयमें आपका विचार-विनिमय होता था। अपने व्यस्त जीवनकालमें आप काम-शास्त्रपर पुस्तक तो नहीं किन्तु अपने मित्र श्री हरिहरनाथजीकी 'काम-दर्शन'की भूमिका लिख गये हैं। इस भूमिकासे आपका तत्सम्बन्धी सूक्ष्मज्ञान प्रकट होता है। आपने काम-शास्त्रके अध्ययनकी आवश्यकतापर बल देते हुए लिखा है—'धर्मका जो आजकल व्यापक अर्थ किया जाता है—जीवन और उसके बादके यच्चयावत् कार्य उसके शासनाधीन माने जाते हैं—वह यदि सत्य हो और ग्रन्थकार इसे सत्य मानते हैं, तो काम भी धर्मका एक अंग है, अर्थात् धर्म ही है। इस शास्त्रके कर्त्ता और टीकाकारको अपने विषयको विशद करनेका उतना ही अधिकार है जितना योगाचार्य और आयुर्वेदाचार्यको है। यदि धर्मका उद्देश्य पारलौकिक कल्याण ही हो तो वह अपने स्थानपर वन्द्य है और काम-शास्त्र अपने स्थानपर आदरणीय है। इसका भी विचार होना चाहिए। इसके ज्ञानसे ही वैसी सन्तान उत्पन्न हो सकती है जो धर्मकी

१. वही।

ध्वजा सारे संसारमें उड़ानेमें समर्थ हो। इसके अध्ययन और मननसे मनुष्यकी पाशविकता नष्ट होकर वह स्वर्गीय प्रेमका अधिकारी हो सकता है। इसके सुप्रयोगसे आजके भारतवासी ऐसी सन्तान उत्पन्न कर सकेंगे जो उन ऋषियोंका तर्पण करने योग्य होगी, जिनका ज्ञान आज भी संसारको मुग्ध कर रहा है। धर्म वन्द्य और आचरणीय, अर्थ उपार्जनीय, काम सम्पादनीय है। इस त्रिवर्गकी समान पुष्टिसे ही मनुष्यत्वका पूर्ण विकास हो सकता है। इनमें-से किसी एकपर जितना अतिरिक्त ज़ोर दीजिएगा, दूसरे दो उतने ही निर्बल होंगे और मनुष्यत्व उतना ही न्यून रह जायगा। त्रिवर्ग सिद्धिसे पुष्ट मनुष्य यदि चतुर्थावस्थामें चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्षका साधन करे तो निश्चय ही नरका नारायण हो जाय[1]।'

अपनी इस भूमिकामें पराड़करजीने विवाहित जीवनको सुखमय बनानेके लिए काम-शास्त्रके अध्ययनके विविध महत्त्वोंका, तत्सम्बन्धी प्राच्य एवं पाश्चात्त्य विद्वानोंकी सम्मतियों सहित विवेचन किया है। आपने धर्मकी या नीतिकी दोहाई देकर काम-शास्त्रकी अवहेलना करनेवालोंकी कटु आलोचना की है। पराड़करजी इस शास्त्रके अध्ययनको वैज्ञानिक और अनिवार्य मानते हैं। आप कहते हैं—'जीवके दो नैसर्गिक गुण हैं—आत्मरक्षा और आत्मवृद्धि। बड़े खेदकी बात है कि आत्मरक्षाके अन्तर्गत असंख्य विषयोंपर असंख्य ग्रन्थ लिखे जायँ और उनपर विचार करना शिष्ट सम्प्रदाय बुरा न माने पर आत्मवृद्धिके—सन्तान वृद्धिके (**आत्मा वै पुत्रः**) उपकरणों और साधनोंपर मुँहसे एक बात निकालना भी बुरा समझा जाय। वस्तुतः यह विषय पवित्र है और हमारे पूर्वज जनन-साधनोंके रूपमें भी प्रकृति-पुरुषकी, शिव-शक्तिकी उपासना करके इसका परिचय दे गये हैं।[2] 'पराड़करजीने इस बातपर भी बल दिया है कि वात्स्यायनके 'कामसूत्रम्'

---

१. पराड़करजी लिखित 'काम-दर्शन'की भूमिका।

२. वही।

की संस्कृत टीकाके साथ ही, इस बातकी आवश्यकता है कि पाश्चात्य ग्रन्थोंका अध्ययन किये हुए विद्वान् इसपर भाष्य करें। इस प्रकार आप प्राचीन भारतीय और आधुनिक पाश्चात्य 'काम-सिद्धान्तों एवं तत्सम्बन्धी अन्वेषणोंके समन्वयके समर्थक थे। आशय यह है कि अन्य शास्त्रों तथा विज्ञानोंके अध्यय्न-मननके साथ पराड़करजी, देशके युवक-युवतियोंको काम-शास्त्रकी शिक्षा देनेके प्रबल समर्थक थे। यही नहीं, आजसे बीसों वर्ष पूर्व आपने देशमें 'परिवार-नियोजन'को आवश्यक बतलाया था और 'आज', 'कमला' आदिके माध्यमसे तत्सम्बन्धी आन्दोलन भी चलाया था।

'दार्शनिक-विचार' तथा अन्य भूमिकाएँ

पराड़करजीकी बहुमुखी प्रतिभाका परिचय हमें उनकी लिखित इन भूमिकाओंसे मिलता है। श्रीरामदास गौड़ लिखित 'हिन्दुत्व'का प्राक्कथन आपने ही लिखा है। इसमें 'हिन्दुत्व'को पराड़करजीने हिन्दूधर्मके विश्व-कोषकी संज्ञा दी है और इसे संस्कृतिके ज्ञानका परिचायक ग्रन्थ कहा है। आपने लिखा है—इसमें ऐसी भूमिका आवश्यक थी जिसमें हिन्दूधर्मका इतिहास होता और उपलब्ध धार्मिक ग्रन्थोंकी समालोचना भी होती। निश्चय ही यह बड़ी विद्वत्ता तथा परिश्रमका कार्य है। 'हिन्दुत्व'के महत्त्व को बतलाते हुए आपका कथन है कि वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, इतिहास, पुराण, तन्त्र, सम्प्रदाय, पन्थ आदिके सम्बन्धमें व्यापक ज्ञातव्यता देने वाला हिन्दीमें ही नहीं, प्रत्युत समस्त भारतीय साहित्यमें यही एकमात्र ग्रन्थ है। 'हम सौ वर्ष कैसे जीवें' नामकी पुस्तककी भूमिका संक्षिप्त है किन्तु है सारगर्भ। इसमें पराड़करजीने लिखा है कि 'भारतकी हीनावस्थाका यह भी एक प्रमाण है कि स्वास्थ्यरक्षा और शारीरिक उन्नतिकी आवश्यकता उन लोगोंको समझानेका समय आ गया है जिनके पूर्वज बल-वीर्यके लिए प्रसिद्ध थे।'

राजा बलदेवदास बिरला लिखित 'दार्शनिक-विचार'की भूमिकामें

पराड़करजीकी वेद, वेदान्त, उपनिषद्, गीता तथा प्राचीन भारतीय दार्शनिक विचारधारा विदित होती है और ज्ञात होती है—उनकी लेखनशैलीकी वह असाधारण क्षमता जिसके द्वारा वे वेद और वेदांगके गूढ़ सिद्धान्तोंको भी साधारण मनुष्योंके लिए बोधगम्य बना देते हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न दार्शनिक विचारोंका आपने जो तुलनात्मक विवेचन किया है, वह आपके प्राचीन शास्त्रोंके गहन पाण्डित्यका परिचायक है। इस भूमिकामें पराड़करजीकी प्रभावोत्पादक और बोधगम्य शैली देखिए—'वेद ही धर्मका मूल है।'[1] वेद 'सर्वज्ञानमय' है। यह हम मानते हैं पर समझते नहीं। मानना व्यर्थ है यदि जानते ही नहीं कि क्या मानते हैं। हिन्दू मात्रका विश्वास है कि वेदसे ही सब धर्मोंकी उत्पत्ति हुई है। **'नाऽसौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्'** इस लोकोक्ति द्वारा बताया गया है कि प्रत्येक मुनि अर्थात् मननशील-विचारशील पुरुषके मन भिन्न-भिन्न होते हैं। पर सब इस बातमें एकमत हैं कि धर्मका मूल वेद है। मतभेद उस ज्ञानमय वेदके तात्पर्यके सम्बन्धमें होते रहे हैं और होते रहेंगे। पर वेदका प्रामाण्य हमारे लिए निर्विवाद है। वह वेद क्या है, यह जानना आवश्यक है। ब्रह्म और आत्माका ज्ञान ही वेद है। वेद बाहर भी है और अपने भीतर भी। हम उसका ग्रहण कान और आँखसे करते हैं यही नाम-रूपमयी सृष्टि है। जब हम कानसे उसको भीतर लेते हैं तो उसको रूप देते हैं और जब मुखसे दूसरोंपर व्यक्त करते हैं तब उसे नाम देते हैं। हमारा वेद हमारे भीतर है। प्रत्येक मनुष्यका वेद उसके भीतर है। और वही बाहर सर्वत्र व्याप्त है। जो हमारे भीतर है वह वेद है और जो बाहर है वह ज्ञान है क्योंकि हम उसे जानते हैं। हमारा ज्ञान हमारा वेद है, बाहर परमात्मा है, भीतर आत्मा। शरीरमें स्थित वेदके तीन प्रकार हैं। अन्तरेन्द्रियकी तीन वृत्तियों और तीन कालके कारण ये तीन भेद होते हैं। जैसे चित्तमें

---

१. राजा बलदेवदास बिरला : दार्शनिक विचार, प्राक्कथन पृष्ठ—ख।

भूतकालका ज्ञान, जो शरीरका कारण होता है। मनमें भूतके ज्ञानके साथ भविष्यका भी ज्ञान होता है; वर्तमानके भावमें वर्त्तमान कालका ज्ञान। ये ही तीन ज्ञान जन्म लेनेके, जीवित रहनेके और भावी शरीरकी उत्पत्तिके कारण हैं। था, है और होगा—इन तीनोंका समन्वय शरीरमें होता है और तीनोंका ज्ञान समष्टि रूपसे वेद है। इसलिए वेदको त्रयी भी कहा है।'

अमेरिकाकी स्वाधीनताका इतिहासकी[1] भूमिका, पराड़करजीकी काव्यमयी शैली तथा राजनीतिक सिद्धान्तोंकी अभिव्यक्तिका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह भूमिका विषय प्रतिपादनके अतिरिक्त भावाभिव्यंजन और शैलीगत विशेपताओंकी दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें (१) अमेरिकाके स्वातन्त्र्य-संग्राम तथा सन् १९३० ईसवीमें चलनेवाले भारतीय अहिंसा आन्दोलनके लक्ष्यकी समानता दिखाते हुए उनके गतिभेद-का स्वरूप बड़ी कलापूर्ण, तर्कयुक्त और प्रभावोत्पादक शैलीमें परिलक्षित करा दिया गया है। (२) दोनों देशोंके स्वातन्त्र्य-आन्दोलनोंकी गति-विशेषको, इसमें नदियोंके रूपकमें दिखा तथा अन्ततक उसका सफल निर्वाह कर गद्य काव्यका एक उत्कृष्ट निदर्शन उपस्थित किया गया है। (३) इसमें छोटे-छोटे अर्थगर्भित वाक्य, ओजपूर्ण शब्दोंसे युक्त हैं और उनमें यमककी छटा अपने प्रकृत रूपमें प्रस्फुटित हो उठी है। (४) भाषा संस्कृत-गर्भित होते हुए भी सरल एवं बोधगम्य है। दोनों देशोंकी इतिहास-धाराओंके प्रकृति साम्य और गतिभेदको स्पष्ट करते हुए, दोनोंके महत्त्वका सन्तुलन तथा उनका समर्थन जिस शैलीमें किया गया है वह काव्यमय और प्रभावपूर्ण तो है ही—है राजनीतिक दूरदर्शितासे भी ओत-प्रोत। सन् १९३०में जब भारतमें स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था, उस समय जन-जागरण तथा राष्ट्रीय प्रेरणा एवं शक्ति-स्फुरणके निमित्त राष्ट्रभाषामें

---

१. श्री देवकीनन्दन 'विभव' द्वारा लिखित।

ऐसे साहित्यके प्रकाशनका विशेष महत्त्व स्पष्ट है। पराड़करजीकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तिका परिचय भी इससे मिल जाता है। अमेरिकाने युद्ध तथा रक्तपात कर स्वतन्त्रता हस्तगत की, किन्तु भारत अहिंसा आन्दोलनसे ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त करे, अब आप इसके पक्षपाती थे। ये छः भूमिकाएँ, पराड़करजीकी बहुविज्ञता स्पष्ट करनेके साथ ही, विभिन्न विषयोंके ग्रन्थोंकी भूमिका—लेखनके आदर्श भी उपस्थित करती हैं।

आधुनिक हिन्दी गद्यका विकास और पराड़करजी

पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करका अभिमत है कि सम्पादकों तथा पत्रकारोंने ही भारतीय भाषाओंका गद्यांग प्रारम्भ और पुष्ट किया। सन् १९५० में मराठी साहित्य सम्मेलनके वृत्तपत्र वाङ्मय परिषद्के अध्यक्ष पदसे आपने इस सम्बन्धकी मान्यता स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार रखी है—'साधारणतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओंका गद्यांग समाचारपत्रोंसे ही प्रारम्भ और पुष्ट हुआ है। प्राचीन कालमें वाङ्मय या साहित्यका अर्थ पद्य ही समझा जाता था। संस्कृतमें हर्ष, वाण, दण्डी जैसे कुछ थोड़े कवियोंने गद्यका उपयोग काव्य-रचनामें तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य जैसे दार्शनिकोंने दर्शन-शास्त्रकी व्याख्या करनेमें किया और उसी कारण हमें आज संस्कृत गद्य वाङ्मय देखनेको मिलता है। कहा जा सकता है कि मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगला आदि भाषाओंमें डेढ़ सौ साल पहले गद्य साहित्य बिलकुल नहीं था। इन भाषाओंमें गद्य लिखनेका आरम्भ समाचार चलानेकी आवश्यकताके कारण ही हुआ, ऐसा मैं मानता हूँ। पुराने पत्रकार समाचारपत्र निकालने लगे तब उनके सामने दो भाषाओंका साहित्य था—संस्कृत और अंगरेज़ी। उस समय अंगरेज़ी साहित्य मेकाले, स्काट, डिक्वेंसी जैसे लेखकोंकी रचनाएँ और संस्कृत साहित्य हर्ष, बाण और दण्डी जैसे संस्कृत कवियोंके काव्योंका था। बाण कविने गद्यकी विशेषताका वर्णन इस श्लोकार्धमें किया है—'**ओजः समासः**

भूतकालका ज्ञान, जो शरीरका कारण होता है। 'मनमें भूतके ज्ञानके साथ भविष्यका भी ज्ञान होता है; वर्तमानके भावमें वर्त्तमान कालका ज्ञान। ये ही तीन ज्ञान जन्म लेनेके, जीवित रहनेके और भावी शरीरकी उत्पत्तिके कारण हैं। था, है और होगा—इन तीनोंका समन्वय शरीरमें होता है और तीनोंका ज्ञान समष्टि रूपसे वेद है। इसलिए वेदको त्रयी भी कहा है।'

अमेरिकाकी स्वाधीनताका इतिहासकी[1] भूमिका, पराड़करजीकी काव्यमयी शैली तथा राजनीतिक सिद्धान्तोंकी अभिव्यक्तिका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह भूमिका विषय प्रतिपादनके अतिरिक्त भावाभिव्यंजन और शैलीगत विशेषताओंकी दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें (१) अमेरिकाके स्वातन्त्र्य-संग्राम तथा सन् १६३० ईसवीमें चलनेवाले भारतीय अहिंसा आन्दोलनके लक्ष्यकी समानता दिखाते हुए उनके गतिभेद-का स्वरूप बड़ी कलापूर्ण, तर्कयुक्त और प्रभावोत्पादक शैलीमें परिलक्षित करा दिया गया है। (२) दोनों देशोंके स्वातन्त्र्य-आन्दोलनोंकी गति-विशेषको, इसमें नदियोंके रूपकमें दिखा तथा अन्ततक उसका सफल निर्वाह कर गद्य काव्यका एक उत्कृष्ट निदर्शन उपस्थित किया गया है। (३) इसमें छोटे-छोटे अर्थगर्भित वाक्य, ओजपूर्ण शब्दोंसे युक्त हैं और उनमें यमककी छटा अपने प्रकृत रूपमें प्रस्फुटित हो उठी है। (४) भाषा संस्कृत-गर्भित होते हुए भी सरल एवं बोधगम्य है। दोनों देशोंकी इतिहास-धाराओंके प्रकृति साम्य और गतिभेदको स्पष्ट करते हुए, दोनोंके महत्त्वका सन्तुलन तथा उनका समर्थन जिस शैलीमें किया गया है वह काव्यमय और प्रभावपूर्ण तो है ही—है राजनीतिक दूरदर्शितासे भी ओत-प्रोत। सन् १९३०में जब भारतमें स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था, उस समय जन-जागरण तथा राष्ट्रीय प्रेरणा एवं शक्ति-स्फुरणके निमित्त राष्ट्रभाषामें

---

१. श्री देवकीनन्दन 'विभव' द्वारा लिखित।

ऐसे साहित्यके प्रकाशनका विशेष महत्त्व स्पष्ट है। पराड़करजीकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तिका परिचय भी इससे मिल जाता है। अमेरिकाने युद्ध तथा रक्तपात कर स्वतन्त्रता हस्तगत की, किन्तु भारत अहिंसा आन्दोलनसे ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त करे, अब आप इसके पक्षपाती थे। ये छः भूमिकाएँ, पराड़करजीकी बहुविज्ञता स्पष्ट करनेके साथ ही, विभिन्न विषयोंके ग्रन्थोंकी भूमिका—लेखनके आदर्श भी उपस्थित करती है।

आधुनिक हिन्दी गद्यका विकास और पराड़करजी

पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करका अभिमत है कि सम्पादकों तथा पत्रकारोंने ही भारतीय भाषाओंका गद्यांग प्रारम्भ और पुष्ट किया। सन् १९५० में मराठी साहित्य सम्मेलनके वृत्तपत्र वाङ्मय परिषद्के अध्यक्ष पदसे आपने इस सम्बन्धकी मान्यता स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार रखी है—'साधारणतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओंका गद्यांग समाचारपत्रोंसे ही प्रारम्भ और पुष्ट हुआ है। प्राचीन कालमें वाङ्मय या साहित्यका अर्थ पद्य ही समझा जाता था। संस्कृतमें हर्ष, वाण, दण्डी जैसे कुछ थोड़े कवियोंने गद्यका उपयोग काव्य-रचनामें तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य जैसे दार्शनिकोंने दर्शन-शास्त्रकी व्याख्या करनेमें किया और उसी कारण हमें आज संस्कृत गद्य वाङ्मय देखनेको मिलता है। कहा जा सकता है कि मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगला आदि भाषाओंमें डेढ़ सौ साल पहले गद्य साहित्य बिलकुल नहीं था। इन भाषाओंमें गद्य लिखनेका आरम्भ समाचार चलानेकी आवश्यकताके कारण ही हुआ, ऐसा मैं मानता हूँ। पुराने पत्रकार समाचारपत्र निकालने लगे तब उनके सामने दो भाषाओंका साहित्य था—संस्कृत और अंगरेज़ी। उस समय अंगरेज़ी साहित्य मेकाले, स्काट, डिक्वेंसी जैसे लेखकोंकी रचनाएँ और संस्कृत साहित्य हर्ष, बाण और दण्डी जैसे संस्कृत कवियोंके काव्योंका था। बाण कविने गद्यकी विशेषताका वर्णन इस श्लोकार्धमें किया है—'**ओजः समासः**

भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' ओज और समासबाहुल्य यही गद्यका जीवन है। मेरा अनुभव यह है कि हमारे गद्यके जनक इस संस्कृत गद्य-शैलीका और अपने समय अथवा उसके पहलेके सुप्रसिद्ध अंगरेज़ी लेखकोंकी रचनाओंका अनुकरण कर मराठी, हिन्दी, बंगला आदि गद्योंका स्वरूप निश्चित करते थे! कमसे-कम मेरे हिन्दी शिक्षा गुरु (स्वर्गीय) गोविन्द-नारायण मिश्र तो बाणभट्टके इतने भक्त थे कि उन्हींकी शैलीपर हिन्दी गद्य स्वयं लिखते थे और हम लोगोंको भी लिखनेको कहते थे। मैं उस समय दैनिक 'भारतमित्र'में अग्रलेख लिखता था। उन लेखोंको आज पढ़कर हँसी आती है। एक-एक वाक्य कम-से-कम २०-२५ पंक्तियोंका होता था।'

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि स्वयं पराड़करजीने सन् १९०६ से सन् १९५४ तक—पूरे पचास वर्षों—हिन्दी भाषा तथा गद्यके विकासमें महत्त्व-पूर्ण योग दिया। 'आज' के अग्रलेखों तथा टिप्पणियोंके माध्यमसे आपने न केवल तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक जागरणमें महान् योगदान किया अपितु हिन्दी भाषाको नयी शैली दी और नये-नये शब्द देकर राष्ट्र-भाषाका भण्डार समृद्ध किया। आपने हिन्दी गद्यको नयी अभिव्यञ्जना दी और उसको प्रेरणामय बनाया। आप भारतीय स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थानके प्रेरक साहित्यके ही केवल सर्जक न थे वरन् आधुनिक हिन्दी साहित्यके अनेक प्रथम पंक्तिके साहित्यकारोंके निर्माता एवं प्रेरणा-केन्द्र भी थे। 'आज' में लिखे आपके अग्रलेख तथा टिप्पणियाँ हिन्दी साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं। वस्तुतः पराड़करजीका स्थान आधुनिक हिन्दी भाषाके निर्माताओंमें प्रमुख है। 'हिन्दीकी जो अपूर्व सेवा उन्होंने की है वह सदा याद की जायगी। उनकी एक विशेषता यह थी कि वे स्वतन्त्र विचारक थे और कभी उन्होंने इस विशेषताको नहीं छोड़ा।[1] आचार्य शिवपूजन

---

१. आचार्य नरेन्द्रदेव : 'आज' पराड़कर स्मृति अंक, पृष्ठ-६।

सहायने पराड़करजीकी साहित्य सेवाके सम्बन्धमें लिखा है—'हिन्दी' संसारमें ही आदर्श सम्पादक-प्रकाशकका मणिकांचन संयोग देखनेमें आया। एक श्री चिन्तामणि घोष और आचार्य द्विवेदीजी तथा दूसरे श्रद्धेय शिव-प्रसाद गुप्त और पराड़करजी। इसीलिए भाषा और साहित्यके निर्माण तथा अभ्युदयके निमित्त जो महत्त्वपूर्ण कार्य 'सरस्वती' ने किया, वही काम राष्ट्र और समाजकी मुक्ति तथा उन्नतिके लिए 'आज' ने किया। पराड़-करजी हिन्दीके पत्रकारोंमें बहुत अच्छे चिन्तक, अनुभवी विचारक, संयमी लेखक, दूरदर्शी सम्पादक और वयोवृद्ध साहित्य-महारथी हैं। 'आज' उनके पत्रकार-जीवनका दर्पण है, इतिहास है। पूज्य आचार्य द्विवेदीजी और 'सरस्वती' दोनों परस्पर अभिन्न थे। श्रद्धेय बाबू श्यामसुन्दर दास और काशी नागरी प्रचारिणी सभा दोनों पर्यायवाची बन गये थे। 'आज' और पराड़करजीका वही अनन्य सम्बन्ध है। इस तरह जब किसी सम्पादकका किसी पत्रके साथ दूध मिसरीका मेल हो जाता है तभी उस पत्रमें साहि-त्यिक आनन्द मिल पाता है। पराड़करजीकी लेख-टिप्पणियाँ साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं।'[1] पराड़करजीकी साहित्य-सेवाका उल्लेख करते हुए (स्वर्गीय) आचार्य श्री श्यामसुन्दरदासने लिखा है—'आपके विद्वत्तापूर्ण लेखोंके कारण 'आज' की कैसी उन्नति हुई है, यह किसीसे छिपा नहीं है। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका २७ वाँ अधिवेशन शिमलामें आपके ही सभापतित्वमें हुआ था।'[2]

जब हम हिन्दी साहित्यके इतिहासमें गद्यके प्रसारका क्रम देखते हैं तब पराड़करजीकी यह मान्यता—कि सम्पादकों तथा पत्रकारोंने ही भारतीय भाषाओंके गद्य साहित्यका प्रारम्भिक निर्माण किया और उसके स्वरूपको

---

१. वही, पृष्ठ संख्या, ११।

२. बाबू श्यामसुन्दरदास : हिन्दीके निर्माता, भाग—२, पृष्ठ संख्या-४९।

पुष्ट किया—एक यथार्थके रूपमें हमारे सम्मुख उपस्थित होती है। हिन्दी गद्य शैली तथा साहित्यके विकासका अनुक्रम स्पष्ट बताता है कि कतिपय गद्य लेखकोंके अपवादको छोड़कर अधिकांशतः हिन्दी गद्यका आरम्भ पत्रकारों द्वारा ही हुआ। पराड़करजीका कथन है कि डेढ़ सौ साल[1] पहले हिन्दीमें गद्य साहित्य बिलकुल नहीं था अर्थात् हिन्दी गद्यका प्रारम्भ काल सन् १८०० ईस्वीके बाद ही मानना चाहिए। यही तथ्य आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लके इतिहाससे भी विदित होता है। आपका कथन है—संवत् १८६० (सन् १८०३ ईस्वी) के लगभग हिन्दी गद्यका प्रवर्त्तन तो हुआ पर उसके साहित्यकी अखण्ड परम्परा उस समयसे नहीं चली। इधर-उधर दो-चार पुस्तकें अनगढ़ भाषामें लिखी गयी हों तो लिखी गयी हों पर साहित्यके योग्य स्वच्छ सुव्यवस्थित भाषामें लिखी कोई पुस्तक संवत् १९१५ (सन् १८५८ ई०) के पूर्वकी नहीं मिलती।'[2] 'हिन्दी बंगवासी तथा 'हितवार्ता', 'भारतमित्र' तथा 'आज' पत्रोंने जिनका सम्पादन पराड़करजीने किया था, हिन्दी गद्यके स्वरूपको अधिकाधिक सुन्दर, सुस्पष्ट और शुद्ध बनानेमें ऐतिहासिक योग दिया है।

हिन्दी भाषा सम्बन्धी आन्दोलन

हिन्दी भाषा तथा साहित्यके शुद्ध तथा शास्त्रीय स्वरूपको स्थिर करनेके निमित्त बीसवीं शताब्दीके प्रथम दशकमें अनेक ऐतिहासिक तथा स्मरणीय आन्दोलन और साहित्यिक विचार-विमर्श हुए। उनमें पराड़करजीका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष योग रहा है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती'में भाषाकी अनस्थिरता शीर्षक लेखमें 'अनस्थिरता' शब्दके

---

१. उक्त भाषण पराड़करजीने बम्बईमें मराठी साहित्य सम्मेलनमें सन् १९५० में किया था।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ ३८७-३८८।

कारण सन् १९०६ में भारी साहित्यिक विवाद छिड़ गया। श्री बालमुकुन्द गुप्तने 'आत्माराम'के नामसे 'भारतमित्र'में द्विवेदीजीकी बड़ी कड़ी आलोचना की। हिन्दी भाषा तथा साहित्यके अनेक विद्वान् भी उस समय श्री बालमुकुन्द गुप्तजीके ही पक्षका समर्थन कर रहे थे। उनके विरुद्ध लेखनी उठानेका साहस किसीको नहीं हो रहा था। ऐसे समयमें आचार्य पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रने 'हिन्दी बंगवासी'में—जिस पत्रके सम्पादक मण्डलमें पराड़करजी थे—'आत्मारामकी टें-टें' शीर्षक लेखमालासे आचार्य द्विवेदीजीका पक्ष समर्थन किया। पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रकी प्रत्यालोचनासे श्री बालमुकुन्दजी गुप्तको चुप रहना पड़ा।

इसी सम्बन्धमें आचार्य पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र तथा आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीके मध्य जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसमें तत्कालीन साहित्यिक गतिविधिपर भी प्रकाश पड़ता है। कुछ पत्रोंके अंश इस प्रकार हैं[1]—

[१]

जुही, कानपुर,
४ मार्च, ०६

मधुपाधार सहकार-शिरोमणे,

आपके प्रेमामृत-सिंचित पत्रको पाकर परमानन्द हुआ। आपने अपने सौजन्य गुणग्राहकत्व, न्यायशीलत्व, भाषा-प्रेम और विद्वत्त्वसे हमको ही नहीं, जहाँ तक हम जानते हैं, सभी हिन्दीके पाठकोंको मोह लिया है। आपकी एक-एक उक्तियोंको पढ़कर तर्क-प्रणाली रूप आपके खरतर खड्गकी धाराको देखकर परोत्कर्षासहिष्णु अज्ञ अहंमानीजनोंपर आपकी भैमी गदाके प्रहारोंका प्रकार बार-बार स्मरण करके हमारी वह हालत हो रही है कि हमारा मन ही जानता है। वह स्वसंवेद्य है। कही नहीं

१. गोविन्द-निबन्धावलीसे।

जा सकती। हमें अफसोस इस बातका है कि आप ऐसे महानुभाव महात्माओंसे हम अभी तक अपरिचित रहे। हमने समझ लिया था कि हिन्दी जाननेवालों और हिन्दी लिख सकनेवालोंमें न्यायका नाश हो गया, पाण्डित्य डूब मरा, गुण-ग्राहकता अस्त हो गई, लेखन शक्तिका उच्छेद हो गया पर अन्तमें आपने हमारे इस नैराश्यपूर्ण भ्रमको दूर कर दिया—धन्यो भवान् !'

विनयावनत—**महावीर**

[२]

दौलतपुर (रायबरेली)
१३–३–०६

'········आत्मारामके प्रलापोंसे हम खिन्न नहीं। हमारी खिन्नताका कारण समझदार लेखकोंका मौनावलम्बन है। हमने फरवरीकी 'सरस्वती'-में जो·······किया उसका कारण केवल यह है कि और लोग कुछका कुछ न समझ जायँ। 'हितवार्त्ता'में किसी समझदार महात्माने यह स्पष्ट कह दिया कि हमारे मौनका कारण यही अनुमान किया जा सकता है कि हमारे पास कोई उत्तर नहीं। आपके लेखने बड़ा काम किया। देहात तकमें उसकी धूम है। यहाँ कई जगह 'वंगवासी' आता है। उसे बड़े चावसे पढ़ते हैं और आपके लेखकी प्रशंसा करते हैं। जब नीरस और मूर्खप्राय ग्रामीणों-की यह दशा है तब औरोंकी क्या कहना ? आपके लेखने आपका उद्देश्य पूर्ण कर दिया। और हम क्या विनय करें—कृपा बनाये रखिए, अपने आशीर्वादका पात्र हमें समझते रहिए—यही प्रार्थना है।

विनयावनत—**महावीर**

'भाषाकी अनस्थिरता' सम्बन्धी विचार आन्दोलनके कई वर्ष पश्चात् पराड़करजीके गुरु तथा मामा पण्डित सखाराम गणेश देउस्करने विभक्तिका आन्दोलन छेड़ा। उन्होंने आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीसे पूछा था कि बंगला, मराठी आदि भाषाओंमें तो शब्दके साथ विभक्ति मिलाकर

लिखी जाती है, पर हिन्दीमें क्यों अलग लिखी जाती है। इसपर द्विवेदीजी मौन रहे। 'उन्होंने समाचार पत्रोंमें तो इसका कोई उत्तर नहीं दिया, पर बातचीतमें हमसे कहा कि हम तो काशी नागरी प्रचारिणी सभाके निर्णयसे बँधे हैं। वह आज मिलाकर लिखने लगे, तो हम भी वैसा ही करें। जो हो, इसपर समाचारपत्रोंमें बड़ा आन्दोलन खड़ा हुआ। हम समझते हैं कि हिन्दीकी लिखा-पढ़ीमें इतना बड़ा आन्दोलन पहले कभी नहीं हुआ था। ऐसा कोई नामी पत्र न था, जिसमें पक्ष वा विपक्षमें लेख न निकले हों। 'हितवार्त्ता' में शायद सबसे अधिक लेख निकले। इसमें पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रके विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हुए। 'विभक्ति-विचार' और 'प्राकृत-विचार' शीर्षक उनकी लेख-मालाएँ 'हितवार्त्ता'में ही प्रकाशित हुईं।[1] पराड़करजी इस समय 'हितवार्त्ता'के सम्पादक थे। 'इन दोनों लेख-मालाओंके प्रकाशनका श्रेय 'स्वतन्त्र' सम्पादक पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा तत्कालीन 'हितवार्त्ता' सम्पादक पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करजीको ही है, जो पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रसे लेख लिखाकर बराबर ले जाया करते थे।'[2]

पण्डित गोविन्दनारायणजी मिश्रकी इन लेखमालाओंने तत्कालीन साहित्य-जगत्में एक नवीन धाराके प्रवर्त्तनके साथ ही, हिन्दी भाषाके शास्त्रीय आधारको सुस्पष्ट कर उसे नया मानदण्ड दिया। हिन्दी भाषा तथा साहित्यके इतिहासमें इन लेखोंका विशेष महत्त्व है। 'यह माननेमें कोई विवाद नहीं है कि मिश्रजीने व्याकरण सम्बन्धी नियमनमें बड़ा उद्योग किया था। यही तो समय था जब लोगोंका ध्यान व्याकरणके औचित्यकी ओर खिंच रहा था और अपनी भाषा सम्बन्धी त्रुटियोंपर विचार करना

१. पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : समाचारपत्रोंका इतिहास, पृष्ठ संख्या, २४३।

२. गोविन्द-निबन्धावली, पृष्ठ संख्या, २३, परिचय अध्याय।

आरम्भ हो रहा था। इन्होंने विभक्तियोंको शब्दोंके साथ मिलाकर लिखने-का प्रतिपादन किया और स्वयं उसी प्रणालीका अनुसरण किया।[1] हिन्दी-का घनिष्ठ सम्बन्ध संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओंसे ही है। इसलिए मिश्रजीने 'प्राकृत-विचार' शीर्षक लेखमाला लिखी। 'प्राकृत-विचार' लेखमाला, पराड़करजीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाली 'हितवार्ता'में ३ जनवरी, १९०९ से प्रकाशित होने लगी और उसी वर्ष २ दिसम्बरको समाप्त हुई। इस लेखमालामें सब मिलाकर सोलह लेख प्रकाशित हुए। इसके प्रथम लेखका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—"भूमण्डलकी आदि भाषा देववाणीसे ही प्राकृत तथा वर्तमान प्राकृत इस हिन्दीका विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध है; परन्तु अपने ही मुँहसे अपनी विशेष विद्वत्ताकी डींग हाँकते दूकानदारी फैलाते इस समय कई एक ऐसे भी महानुभाव सज्जनोंने अवतार लिया है कि जिनका आन्तरिक उद्देश्य सत्यके अन्वेषण या तत्त्व निर्णयसे सम्बन्ध न रखकर, अपनी भ्रान्तिको लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंककर अभ्रान्त प्रतिपन्न करनेकी चेष्टामें ही परिसमाप्त होता है। भ्रमवश पारसीके मरा, तुरासे मेरा तेरा या हमारा तुम्हारा आदि शब्दोंकी उत्पत्ति सिद्ध करनेवाले महानुभाव जब निरुत्तर कोटिमें पहुँच गये, तो उपायान्तर न देख विशेष आडम्बरसे कमर कसकर अन्तको यही सिद्ध करनेकी चेष्टामें पूरी तत्परतासे नियुक्त हुए कि प्राकृत कोई भाषा ही नहीं। अज्ञ और अल्पज्ञोंकी आँखोंमें धूल झोंककर इस विषयमें उनकी बुद्धियोंको कुण्ठित कर देना कठिन नहीं है परन्तु शास्त्रदर्शियोंको और भाषा तत्त्वज्ञोंको बहकाकर कुपथगामी बनानेकी इच्छा करना, निरा लड़कपन ही है, इसमें सन्देह नहीं। जिस प्राकृतके विविध व्याकरण और अनेकों भेद बहुत दिनोंसे प्रचलित हैं और जिस प्राकृत भाषाके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी प्रशंसा महाकवि दण्डी आदि कर

१. डाक्टर जगन्नाथप्रसाद शर्मा : हिन्दीकी गद्य-शैलीका विकास, पृष्ठ संख्या, ६०।

गये हैं तथा साहित्यदर्पणादि ग्रन्थोंमें भी जिनके भेदोंसे नाटकके पात्रोंकी भाषाका विशेष तारतम्य किया जाता है वैसी सुप्रसिद्ध प्राकृत भाषाको संस्कृतसे भिन्न भाषा रूपमें न मानकर फूँकसे पहाड़ उड़ानेकी चेष्टा भी अपनी धुनके अन्धाधुन्ध स्पेशल ट्रेनपर सवार हुए लोगोंने कर दिखायी। इसलिए इस स्थलपर उनकी उक्तिके सारांशकी परीक्षाके साथ ही प्राकृत-की उत्पत्ति, परिवार वृद्धि आदिसे कालान्तरमें इस वर्त्तमान प्राकृत हिन्दी भाषाका जन्म किस रीतिसे हुआ आदि बातोंका विचार अवश्य कर्त्तव्य है।

आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी साहित्यके इतिहास'में गद्य-साहित्यके प्रसार प्रकरणमें लिखा है—'व्याकरणकी ओर इस प्रकार ध्यान जानेपर कुछ दिनों व्याकरण सम्बन्धिनी बातोंकी चर्चा भी पत्रोंमें अच्छी चली। विभक्तियाँ शब्दोंसे मिलाकर लिखी जानी चाहिए या अलग, इसी प्रश्नको लेकर कुछ काल तक खंडन-मंडनके लेख जोर-शोरसे निकले। इस आन्दोलनके नायक हुए थे—पण्डित गोविन्द नारायणजी मिश्र, जिन्होंने 'विभक्ति-विचार' नामकी एक छोटी-सी पुस्तक द्वारा हिन्दीकी विभक्तियों-को शुद्ध विभक्तियाँ बताकर लोगोंको उन्हें मिलाकर लिखनेकी सलाह दी थी।[1] हम पहले ही लिख आये हैं कि 'विभक्ति-विचार' सम्बन्धी लेख-माला सर्वप्रथम पराड़करजी द्वारा सम्पादित 'हितवार्ता'में प्रकाशित हुई। तदनन्तर लोगोंके अनुरोधपर इसका प्रकाशन पुस्तकाकार हुआ। इसका कुछ अंश देखिए[2]—

'साहित्यका परम सुन्दर लेख लिखनेवाला यदि व्याकरणमें पूर्ण अभिज्ञ न होगा तो उससे व्याकरणकी अनेकों अशुद्धियाँ निस्सन्देह होंगी। वैसे ही उत्तम वैयाकरणसे विशुद्ध लेख लिखनेपर भी अलंकार शास्त्रके दूषणोंसे

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ संख्या–४५०।

२. गोविन्द-निबन्धावलीसे।

अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता है। अलंकार भूषित साहित्य रचनाकी शैली स्वतन्त्र है। इसकी अभिज्ञता उपार्जन करनेके शास्त्र भिन्न हैं, जिनके परमोत्तम विचारमें व्याकरणका अशुद्धि विशिष्ट लेख भी साहित्यमें सर्वोत्तम माना जाता है। सारांश यह कि अत्यन्त सुविशाल शब्दारण्यके अनेकों विभाग वर्तमान हैं। उनमें एक विषयकी योग्यता वा पाण्डित्यके लाभ करनेसे ही कभी कोई व्यक्ति सब विषयोंमें अभिज्ञ नहीं हो सकता है। परन्तु अभागी हिन्दीके भाग्यमें इस विषयका विचार ही मानो विधाताने नहीं लिखा। जिन महाशयोंने समाचारपत्रोंमें स्वनामांकित लेखोंका मुद्रित कराना कर्त्तव्य समझा और जिनके बहुतसे लेख प्रकाशित हो चुके हैं, सर्व-साधारणमें इस समय वे सबके सब हिन्दीके भाग्यविधाता और सब विषयोंके ही सुपण्डित माने जाते हैं! मैं इस भेड़ियाधसानको हिन्दीकी उन्नतिमें सबसे बढ़कर बाधक और भविष्यमें विशेष अनिष्टोत्पादक समझता हूँ। अनधिकार चर्चा करनेवालेसे बात-बातमें भ्रम प्रमाद संघटित होते हैं। नामी लेखकोंके भ्रमसे अशिक्षित समुदायकी ज्ञानोन्नतिकी राहमें विशेष प्रतिबन्धक पड़ जाते हैं। यह ही कारण है कि तत्त्वदर्शी विज्ञपुरुष अपने भ्रमका परिज्ञान होते ही उसे प्रकाशित कर सर्वसाधारणका परमोपकार करनेमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं करते, बल्कि विलम्ब करनेको महापाप मानते हैं।

साहित्य और साहित्यकारोंके सम्बन्धमें

पराड़करजी साहित्यकी गतिविधिपर दृष्टि रखनेके साथ ही साहित्य-कारोंकी समस्याओंका भी ध्यान रखते थे। इस सम्बन्धमें वे प्रायः अपने विचार लेख अथवा टिप्पणी रूपमें प्रकट किया करते थे। जून, १९३९ में सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री बनारसीदास चतुर्वेदीने पराड़करजीको 'साहित्य-सेवियोंसे' शीर्षक एक लम्बा और महत्त्वपूर्ण पत्र लिखा। चतुर्वेदीजीने लिखा—प्रियवर, आपसे कुछ निवेदन करना है, एक बन्धुकी हैसियतसे।

साहित्य क्षेत्रमें २५ वर्ष तक काम करनेके बाद मेरा यह कर्त्तव्य है, और शायद अधिकार भी, कि अपने अनुभव आपके सम्मुख उपस्थित करूँ। सम्भवतः अन्य भाइयोंके अनुभव मुझसे भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक मधुर हुए हों, पर उनके बारेमें मैं कुछ नहीं कह सकता। वे अपनी राम-कहानी खुद सुनावें। देशों तथा समाजोंके जीवनमें एक ऐसा वक़्त आता है जब दिल खोलकर बात कहना जरूरी हो जाता है और जब चिकनी-चुपड़ी या लगा-लेसीकी बातें अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होती हैं। मेरी समझमें हिन्दी-लेखक-समाजके लिए वक़्त आ गया है, जब हमें खरी-खरी सुनने और सुनानेके लिए तैयार हो जाना चाहिए।........पराड़करजीने हिन्दी साहित्यकारों-सम्बन्धी इस पत्रको 'कमला'में प्रकाशित किया तथा अन्तमें टिप्पणी लिखा—पत्रका महत्त्व स्वयं सिद्ध है। अगले अंकमें इसपर अपना विचार प्रकट करनेका यत्न करूँगा।[1]

तदनुसार पराड़करजीने 'साहित्य-सेवियोंका प्रश्न' शीर्षक लेख लिखा जो हिन्दीके साहित्य साधकोंकी स्थितिपर तो प्रकाश डालता ही है, उनकी समस्याओंके समाधानकी दिशाका संकेत भी प्रस्तुत करता है। श्री बनारसी-दास चतुर्वेदी द्वारा उठाये गये प्रश्न और पराड़करजी द्वारा दिये गये उनके उत्तर, आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा हिन्दी साहित्यकारोंके लिए मूल्यवान् एवं मननीय हैं। पराड़करजीका लेख इस प्रकार है—[2]गतांकमें सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदीका 'साहित्य-सेवियों'-से निवेदन प्रकाशित किया गया था। वह निवेदन एक निःस्वार्थ साहित्यिक-की आन्तरिक वेदनाकी प्रकट ध्वनि है। साधारणतः उन सज्जनोंका समाज कम आदर करता है जो अपनी धुनके पक्के होते हैं और अपने ही सिद्धान्त-पर चलते हैं। सच्चे साहित्यिकोंका यह पुराना रोना है कि समाज उनकी

१. 'कमला', जून, १९३९, पृष्ठ संख्या–२१४।

२. कमला, जुलाई-अगस्त, १९३९, पृष्ठ संख्या–२१३।

दाद नहीं देता। ऋषियों और सूर-तुलसी जैसे भक्त कवियोंकी बात जाने दीजिए, क्योंकि वे सांसारिक सुखको लात मारकर आत्मसन्तोष और लोककल्याणार्थ ही साहित्य-निर्माण किया करते थे। सच तो यह है कि सांसारिक सुख-सुविधाओं और मान-सम्मानकी जो उपेक्षा नहीं कर सकता वह सच्चा साहित्य निर्माण भी नहीं कर सकता। धनी वा लोक भी आदर उसीका करते हैं जो उनके मनकी कहता है। बिहारी, केशव, भूषण, जैसे कवियोंको भी मुँहदेखी कहनी पड़ी थी, फिर साधारण लोगोंकी बात ही क्या है। सरस्वती और लक्ष्मीका विरोध जो कहा जाता है वह यही है। सरस्वती जब तक लक्ष्मीकी उपेक्षा नहीं करती तब तक सुप्रसू नहीं होती, यह अनुभव सिद्ध बात है। मेरा यह सौभाग्य है कि अब तक मुझे ऐसे ही लोगोंके साथ काम करना पड़ा है जिनसे मेरा मत प्रायः मिलता रहा है इसलिए जिस कटु अनुभवकी बात मेरे मित्रने कही है, वह अभी तक मुझे नहीं मिला है, फिर भी समय-समयपर मुझे उनके और उन्हें मेरे मनके सम्मानार्थ अपनापन कुछ मात्रामें त्यागना ही पड़ा है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे यह दोष हो सकता है पर कठोर व्यवहार-क्षेत्रमें इससे बेलाग रहना सम्भव नहीं है। कम-से-कम मेरा तो यही अनुभव है।

पण्डित बनारसीदासजीका यह कथन सर्वथा उचित है कि हमें किसी संस्था, व्यक्ति वा नेतासे सहायताकी आशा न करके 'हमारे पास धेलेका जो मिट्टीका दीपक है और पैसेका उसमें तेल, उसीके प्रकाशमें हमें अपने रास्तेको तलाश करना है।' नेताओंपर भरोसा नहीं किया जा सकता, इसका कारण दृष्टिकोणका पार्थक्य है। उनका दृष्टिकोण राजनीतिक सुविधाका और दलोंके संघर्षसे उत्पन्न कार्याकार्यका होता है और हमारा साहित्यिक अथवा वैयक्तिक। यही कारण है कि आज हम कांग्रेसी नेताओंको हिन्दुस्तानीका समर्थन करते और हिन्दीकी दुर्दशा देखकर भी उसके सम्बन्धमें मौनावलम्बन करते देखते हैं। यह बात नहीं कि उनमें मातृभाषाका अभिमान न हो, पर उनके सामने तो मुख्यतः कांग्रेसकी सुविधा-असुविधाका

प्रश्न है, अतः मुसलमानोंको असन्तुष्ट करनेका साहस वे नहीं कर सकते। इस दशामें कोई साहित्य-सेवी, जिसकी सारी समस्या साहित्यकी समस्या है, राजनीतिक नेताको सहायतापर भरोसा कर ही नहीं सकता। अतः यदि अपनी कृतियों द्वारा अपना व्यक्तित्व परिस्फुटित करना हमारा ध्येय हो तो हम किसीसे सहायता पानेका भरोसा नहीं कर सकते। यह भी तो सोचनेकी बात है कि यदि हम दूसरेके लिए अपने व्यक्तित्वका आंशिक भी त्याग नहीं कर सकते तो दूसरा हमारे लिए क्यों करे। हमें अपना व्यक्तित्व जितना प्रिय है एक धनीको उसका धन उससे अधिक नहीं तो उतना ही प्रिय हो सकता है। वस्तुतः धनीका व्यक्तित्व धनोपार्जनमें, नेताका राजनीतिक लाभमें और हमारा अव्यक्त भावको व्यक्त स्वरूप देनेमें प्रकट होता है।

बनारसीदासजीकी दूसरी बात यह है कि किसी लेखकको सरकारका भी भरोसा नहीं करना चाहिए। यह भी ठीक ही है। पर चतुर्वेदीजीकी लिखावटसे यह ध्वनि निकलती है वे सरकारको इसके लिए दोषी ठहराते हैं। यह बात कुछ अंशमें सत्य है, सर्वथा नहीं। यह दोष यदि है तो लोक-तन्त्र पद्धतिका है जिसमें सरकारको लोकमत अपने अनुकूल कर लेनेका यत्न करते रहना पड़ता है, अन्यथा वह सरकार ही न रहे। इसके लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह उन लेखकोंको प्रोत्साहित करती रहे, जो उसके समर्थक हैं अथवा अन्य लेखकोंको कुछ देकर समर्थक बनावे। यह कठोर राजनीतिक आवश्यकता है जिसकी उपेक्षा लोकतन्त्रमें वही कर सकता है जिसमें राजनीतिक उच्चाभिलाषा न हो। पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि राजनीतिक क्षेत्रके बाहर सत्साहित्यके निर्माताओंकी सहायता करना प्रत्येक सरकारका कर्त्तव्य होना चाहिए। यह अभी तक नहीं हुआ है। हो सकता है कि वर्तमान शासकोंके सामने अन्य महत्त्वके और अत्यन्त आवश्यक विषय इतने अधिक हैं कि वे ग़रीब साहित्य-सेवियोंकी ओर ध्यान ही नहीं दे सकते। फिर भी यह दोष है और इसका मार्जन

करना उनका कर्त्तव्य है। जब तक यह नहीं होता तब तक लेखकोंको सरकारका भरोसा भूलकर भी न करना चाहिए।

बनारसीदासजीकी तीसरी बात है डिक्टेटरशिप उर्फ़ तानाशाही उर्फ़ अनियन्त्रित एकाधिपत्यसे होनेवाला खतरा। शायद इस खतरेको मैं ठीक उसी दृष्टिसे नहीं देखता जिस दृष्टिसे मेरे माननीय मित्र देखते हैं। यह तो निर्विवाद है कि स्वतन्त्र लेखकको उस बातका समर्थन न करना चाहिए जिसे वह बुरा समझता हो, फिर उसे करनेवाला अनियन्त्रित अधिनायक, नियन्त्रित राजा अथवा प्रतिनिधि-मन्त्रिमण्डल हो। पर एकाधिपत्यका विरोध सिर्फ़ इसलिए मैं नहीं करता कि किसी अधिनायककी किसी बातसे मैं असहमत हूँ। मैं तो एकाधिपत्यका ही विरोधी हूँ और समझता हूँ कि, अपनी दृष्टिसे उसकी नीति अच्छी हो या बुरी, स्वातन्त्र्य प्रेमी लेखकको उसका विरोध ही करना चाहिए, क्योंकि एकाधिपत्य ही बुरा है। सत्य और अहिंसाका कायल होनेपर भी मैं महात्मा गाँधीके एकाधिपत्यको, जो कांग्रेसमें हो गया है, भारतके भविष्यके लिए बुरा समझता हूँ। किसीका एकाधिपत्य यही दिखाता है कि औरोंमें स्वतन्त्र व्यक्तित्वका लोप हो गया है। मैं हृदयसे चाहता हूँ कि प्रत्येक सुलेखक एकाधिपत्यका विरोध ही करता रहे—उसकी नीतिसे सहमत होनेपर भी करता रहे। एक महान् वृक्षकी छायामें जैसे अन्य वृक्ष पनपने नहीं पाते उसी तरह एकाधिपत्यमें देशका मनुष्यत्व विकसित नहीं होने पाता।

हमारी त्रुटियोंके सम्बन्धमें बनारसीदासजीने जो कुछ लिखा है और उन्हें दूर करनेके जो उपाय बताये हैं उनसे असहमत कोई नहीं हो सकता। हम साहित्य-सेवियोंमें त्याग और तपका अभाव है, इसलिए कि हम सच्चे साहित्य-सेवी नहीं हैं। यदि हम साहित्यका 'मिशन' लेकर संसारमें आये होते तो तप और त्याग हमारा चिर सहयोगी होता। हिन्दीका यह दुर्भाग्य है कि इस युगमें अभी तक उसे बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ जैसा कोई साहित्यिक गुरु नहीं मिला है जिसका पदानुसरणकर, जिसके ग्रन्थोंका

अध्ययनकर हमारे युवक सुलेखक हो सकें। ऐसा पुरुष दैवसे ही मिलता है, बनाया नहीं जा सकता। अतः इसके लिए यत्न करना व्यर्थ है। पर एक काम हम कर सकते हैं, यदि करें। कुछ आदर्शवादी साहित्य-सेवी यदि अपनी छोटी-सी संस्था बना लें, जिसका उद्देश्य सदस्योंकी संख्या बढ़ाना न हो प्रत्युत बढ़ने न देना हो, और यदि ये चुने हुए सज्जन साहित्य-परीक्षण और निरीक्षणका भार अपने ऊपर लें—दुनिया माने अथवा न माने ये स्वयं एक दूसरेकी तथा अन्योंकी कृतियोंके समालोचक बनकर भी परस्पर प्रेमकी रक्षा करें, तो इस छोटेसे गुटका प्रभाव साहित्य-पर पड़े बिना न रहेगा। इनके योगक्षेमका प्रश्न कुछ सच्चे सहृदय धनिकों-की सहायतासे हल हो सकता है, ऐसा मेरा विश्वास है।

साहित्यकारोंकी समस्याओं तथा उनके विविध प्रश्नोंके साथ ही पराड़करजीकी दृष्टि प्रकृत साहित्य निर्माणकी ओर विशेष थी, इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। हिन्दी भाषा तथा साहित्यके प्रचार-प्रसारके कार्यका तो महत्त्व था ही उससे भी बढ़कर कार्य आप उच्चकोटिके साहित्य ग्रन्थोंके प्रणयन और प्रकाशनका मानते थे।

साहित्य-निर्माणका रचनात्मक सुझाव

सन् १९२५ में जब हिन्दी-साहित्यके बहुमुखी विकासका मार्ग उतना प्रशस्त नहीं हुआ था, आपने 'सम्मेलन' का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। तत्कालीन हिन्दी साहित्यकी प्रवृत्तियोंकी समालोचना करते हुए पराड़करजीने तत्सम्बन्धी रचनात्मक सुझाव इस प्रकार दिये—

सम्मेलनका कार्य दो भागोंमें विभक्त है साहित्य और प्रचार। इसमें सन्देह नहीं कि परीक्षा और शिक्षा द्वारा प्रचार कार्यमें सम्मेलनने बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है तथा और भी करेगा। पर प्रकृत साहित्य क्षेत्रमें इसने अबतक कुछ भी उल्लेखनीय कार्य नहीं किया है। सम्मेलनके जन्मके समय हिन्दी साहित्यकी जो दशा थी आज उससे कहीं सुधरी हुई

है। लेखकोंकी संख्या बढ़ गयी है और पुस्तकें भी भिन्न-भिन्न विषयोंपर प्रकाशित हो चुकी हैं तथा हो रही हैं। पाठकोंकी रुचिमें भी परिवर्तन हो गया है। यह सब हुआ है, पर कहना पड़ता है कि साहित्यकी दृष्टिसे आजकलके लेखक पन्द्रह साल पहलेके लेखकोंसे निम्नकोटिके ही ठहराये जायँगे। कारण यह है कि साहित्यका अध्ययन बहुत कम लोग करते हैं। अँग्रेज़ी साहित्य अथवा अन्य किसी विषयमें विश्वविद्यालयका प्रमाणपत्र पा जाना ही हिन्दीके लेखक बननेकी योग्यताका द्योतक हो गया है। फलतः दिन-दिन हमारी पुस्तकोंके शब्द तो हिन्दी और संस्कृत पर वाक्य अंग्रेज़ी बनते चले जाते हैं। भाषामें न ज़ोर रह गया है, न हृदयग्राहिता। अच्छे-अच्छे मासिकोंकी पृष्ठ संख्या और विषयोंकी विविधता बढ़ती जाती है और उस परिमाणमें रचना-कौशल घटता जा रहा है। अच्छा हो यदि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अब इस ओर भी ध्यान दे। सम्मेलनका एक स्थायी अंग साहित्य-परिषद् होना चाहिए। इसका मुख्य कर्त्तव्य यह हो कि प्रति-वर्ष हिन्दी भाषामें प्रकाशित अच्छी-अच्छी पुस्तकोंकी समालोचना प्रकाशित किया करे, नवीन और होनहार लेखकोंको उत्साहित करे और आजकलके लेखकोंके दोष भी दिखाया करे। कार्य कठिन है पर साहित्य-सम्मेलनके ही योग्य भी है।

कवि-सम्मेलनकी तो आजकल धूम है। प्रकृत काव्यका अभाव आज-हिन्दीमें जितना ही अधिक हो रहा है कवियोंकी संख्या भी उतनी ही बढ़ती चली जाती है। समस्यापूर्तियों और पुरस्कारोंसे वस्तुतः कहाँतक काव्य-स्फूर्ति हो सकती है, इसका निर्णय करनेमें हम तो असमर्थ हैं। हम इतना जानते हैं कि वर्षमें शायद ही एक कविता ऐसी दिखाई देती हो जो भाषा और भावकी दृष्टिसे अच्छी कही जा सके। भाषामें तो मानो शक्ति रह नहीं गयी है और भाषा केवल रचयिता ही समझ सकते हैं। भाव पुराने ही क्यों न हों वे यदि नये ढंगसे प्रकट किये जायँ, रचनामें कोई चमत्कार हो, तोभी पद्य अच्छे लगते हैं, पर यहाँ दोनोंका अभाव

है। सम्मेलन यदि इस ओर ध्यान दे तो शायद कुछ काम हो जाय। क्या यह नहीं हो सकता कि वर्ष-भरमें जो-जो अच्छी कविताएँ बनी हों उनका संग्रह सम्मेलन प्रकाशित कर दे और उनकी विशेषताओंपर टीका भी करे? काव्यमें तुलनात्मक टीकाकी बड़ी आवश्यकता है। टीकासे कवि उत्पन्न नहीं हो सकते पर काव्यका मर्म समझनेकी योग्यता पाठकोंमें आ जा सकती है। इधर प्राचीन हिन्दी काव्यपर कई टीकात्मक ग्रन्थ अच्छे निकले हैं और हमारा अनुमान है कि कवि-सम्मेलनोंकी अपेक्षा ऐसे ग्रन्थोंसे, काव्यरुचि बढ़ने और सुसंस्कृत होनेमें अधिक सहायता मिलेगी। वैसे तो कविसम्मेलन वर्षभर कहीं-न-कहीं होते ही रहते हैं। समस्या, पूर्तियोंके समाचार और समस्या भेजनेवालोंकी शिकायतोंके मारे सम्पादकोंके नाकोंदम है। क्या इससे काव्यको उत्तेजन मिल रहा है? हमें सन्देह है। हम चाहते हैं कि कवि-सम्मेलनमें इस वर्ष इस विषयपर विशेष रूपसे विचार किया जाय कि काव्य और सुकवियोंको उत्तेजन देनेके लिए—और व्यर्थकी तुकबन्दियाँ करनेवालोंको निरुत्साह करनेके लिए भी—क्या किया जा सकता है? कविसम्मेलनको हम अनावश्यक नहीं समझते। इसकी बहुत आवश्यकता है। सम्मेलन कवियोंका हो, पद्यरचकोंका न हो, काव्य-मर्मज्ञोंका हो—केवल यमकानुप्रासोंके प्रेमियोंका न हो यही हमारा निवेदन है। हिन्दी गद्य और पद्य दोनोंमें उच्चकोटिके हास्य, मज़ाक या ह्यूमरका बिलकुल अभाव-सा हो रहा है, इसका कारण क्या है? यह भी विचारणीय है।[1]

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके एक स्थायी अंग 'साहित्य-परिषद्' के संघटनका सुझाव देते हुए श्रेष्ठ पुस्तकोंके वार्षिक समालोचन और लेखकों-को प्रोत्साहन देनेकी जो बात पराड़करजीने आजसे पैंतीस वर्ष पूर्व कही थी, वह वर्तमानकालमें भी कितनी उपयोगी है! आपका यह कथन कितना

---

१. 'आज' : २६ अक्तूबर, १६२५ के अग्रलेखसे।

मार्मिक रहा है कि किसी विषयमें विश्वविद्यालयका प्रमाणपत्र पा जाना ही हिन्दीके लेखक बननेकी योग्यताका जो द्योतक हो गया है, वह अनुचित है और साहित्यका विधिवत् अध्ययन अनिवार्य रूपसे होना चाहिए। इसके बिना न तो मौलिक साहित्यका निर्माण हो सकता है, न भाषा एवं भावोंकी अभिव्यक्तिमें हृदयग्राहिता ही आ सकती है। प्रतिवर्षके श्रेष्ठ साहित्यके सिंहावलोकनका पराड़करजीका सुझाव आज भी कार्यान्वित करने योग्य है। प्राय: पैंतीस वर्ष पूर्व कविताकी जिस प्रकार रचना हो रही थी, उसकी आलोचना करते हुए आपने प्रकृत काव्यके प्रणयनकी ओर कवियोंका ध्यान आकृष्ट किया। समस्यापूर्तियों और पुरस्कारोंसे काव्य-स्फूर्ति नहीं हो सकती, यह आपकी मान्यता थी। वर्षभरमें प्रकाशित सुन्दर कविताओंका उनकी विशेषताओं सहित संग्रह-प्रकाशनका सुझाव, आज भी अनुकरणीय है। काव्यमें तुलनात्मक टीका तथा हिन्दी गद्य-पद्यमें उच्चकोटिके हास्यकी आवश्यकतापर बल देकर पराड़करजीने, हिन्दीके सच्चे आचार्यकी भाँति, साहित्य-सम्मेलन तथा साहित्यकारोंका मार्ग-प्रदर्शन करते हुए हिन्दीके सर्वांगीण विकासके हेतु उच्चकोटिके साहित्य-निर्माणका दिशा-संकेत किया है।

लेखन और भाषा-शैली

पराड़करजीकी लेखन शैलीमें उनका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व झलकता है। छोटे-छोटे वाक्य, बोधगम्य पदावली, उपमा, उदाहरणसे अर्थकी मार्मिक अभिव्यक्ति, उनकी लेखनशैलीकी अपनी विशेषताएँ हैं। सन् १९०६ में पराड़करजीने पत्रकारिताके क्षेत्रमें पदार्पण किया था। उस समय हिन्दी भाषाकी स्थिति कुछ दूसरी ही थी। 'हिन्दी-वंगवासी'-में जब आप सहायक सम्पादक थे तो उस समय साहित्यिक लेखों तथा आन्दोलनोंके अतिरिक्त जातिवाद एवं बहिष्कार आदिका पचड़ा ही समाचारपत्रके कलेवरमें रहता था। राजनीतिक तथा आधुनिक विषयोंपर

बहुत कम सम्पादक अपनी लेखनी उठाते थे। आधुनिक जगत्के नवीन विषयोंके वर्णन और विवेचनकी शक्ति हिन्दी भाषामें है, इसे पराड़करजीने उदाहरण देकर सप्रमाण सिद्ध किया। पहले पराड़करजी (सन् १९०६-१० तक) बड़े लम्बे-लम्बे वाक्य संस्कृतनिष्ठ भाषामें लिखते थे। उन दिनों आपके आदर्श थे स्वर्गीय आचार्य गोविन्द नारायण मिश्र, जिनकी गम्भीर विद्वत्ता तथा प्राकृत और हिन्दीके साहित्योंका अध्ययन और मनन अपूर्व था। इस सम्बन्धमें स्वयं पराड़करजीने लिखा है—'पण्डित गोविन्द नारायण मिश्रजीका गद्य कादम्बरीका अनुकरण था और मैं भी उनका पदानुसरण करनेका ही यत्न किया करता था। द्विवेदीजीको यह शैली पसन्द नहीं थी और अपने एक कार्डमें आपने यह लिख भी दिया था। वर्षों बाद मुझे द्विवेदीजीके इस कथनकी सत्यताका अनुभव हुआ। मैं भी भाषा सरल और वाक्य छोटे-छोटे करनेका यत्न करने लगा। 'आज' के कुछ लेख आपको बहुत पसन्द आये थे।[१]

पराड़करजीकी लेखन-शैलीका क्रम-विकास हम उनके दैनिक 'भारतमित्र' के सम्पादकीय लेखोंसे देखना प्रारम्भ कर सकते हैं, जो तत्कालीन विषयोंके परिचायक तो हैं ही, जिनसे तत्कालीन प्रतिपादन शैलीका भी बोध होता है। एक उदाहरण 'चक्रवर्तीका चक्र' शीर्षक सम्पादकीय लेखसे देखिए—पं० अमृतलाल चक्रवर्तीका जो 'कोरा प्रलाप' २७ जूनको प्रकाशित हुआ है, उसे पढ़कर कोई विचारवान् मनुष्य हँसे बिना नहीं रह सकता। मालूम होता है कि बहुत परिश्रम करनेके कारण चक्रवर्तीजीका दिमाग़ बिगड़ गया है। यदि ऐसा न होता तो वे उस भारतमित्रको न कोसते जिसका उन्होंने वर्षों तक नमक खाया है। अमृतको इस प्रकार विष बनते देख सभी सहृदय मनुष्योंको दुःख हुए बिना नहीं रह सकता। पत्रके

---

१. 'सरस्वती' के द्विवेदी-अंकमें पराड़करजीके लेख 'आचार्य द्विवेदी' से।

ग्राहक बढ़ाने और उसे चमकानेका मुख्य उपाय सुपाठ्य लेख लिखना है, अन्य पत्रोंको गालियाँ देकर ग्राहक बढ़ानेकी नीति आजकल सफल नहीं हो सकती; क्योंकि हिन्दी पाठकोंमें नीर-क्षीर विवेक है; जैसा आप उन्हें समझ रहे हैं, वैसे वे नहीं हैं। इसलिए चक्रवर्तीजीको उचित है कि, अपनी पूर्वार्जित विद्यासे विद्वत्तापूर्ण लेख लिखनेकी चेष्टा करें।[1]

वाक्य लम्बे होते हुए भी भाषा बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। यथा-स्थान मुहावरोंके प्रयोगसे मार्मिक व्यंजनाएँ हुई हैं। वाक्योंमें उठान है, वाक्य-रचना सीधी, सरल और हिन्दीकी प्रकृतिके सर्वथा अनुरूप है। श्लेष और यमक होते हुए भी भाषा अथवा अर्थकी दुरूहता दृष्टिगत नहीं होती। वाक्य रचनामें प्रवाह है, व्यंगात्मक होनेपर भी शिष्टताका निर्वाह करनेका यत्न किया गया है। 'हिन्दी-वंगवासी' और 'हितवार्ता' में पराड़करजीकी लेखनशैलीके नमूने प्राप्य नहीं हैं, न १९१०–११ के 'भारतमित्र' के। सन् १९१५ में पराड़करजीकी शैलीके उक्त उदाहरणके बाद सन् १९२० में 'आज' के प्रथमांकमें उनके लिखे लेख-टिप्पणियोंसे उनकी रचना शैलीके विकासका अध्ययन किया जा सकता है। आजके (५ सितम्बर, सन् १९२० के) प्रथम अंकके 'लोकमान्य' शीर्षक लेखका एक अंश देखिए—

'आज'के पहले ही अंकमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलककी मृत्युपर शोक-प्रकाश करनेका अवसर उपस्थित हुआ है, इससे बढ़कर दुःखजनक विषय हमारे लिए और क्या हो सकता है। आपकी मृत्युसे भारतवर्षकी जो भीषण हानि हुई है उसका परिचय शब्दोंमें नहीं दिया जा सकता। वर्तमान कठिन राजनीतिक समयमें तो प्रतिपदपर देशके नेता लोकमान्यके अभावका परिचय पा रहे हैं। आपकी राजनीतिक दूरदर्शिता, दृढ़ प्रतिज्ञा तथा अगाध देशभक्तिके उपयोगोंसे देश वंचित हो चुका है पर उनका उज्ज्वल उदाहरण

---

१. दैनिक 'भारतमित्र' ३० जून, १९१५।

हमारे सम्मुख है। हम अपनी क्षुद्र शक्तिके अनुसार आपके दिखाये मार्गसे चलनेका प्रयत्न करेंगे। यही कहना इस अवसरपर अलम् होगा।'

भावकी गम्भीरताके साथ भाषाकी प्रौढ़ता और प्रांजलता, उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है। थोड़ेसे शब्दोंमें लोकमान्य जैसे महान् व्यक्तित्वका महत्त्व स्पष्ट कर देनेकी यह शैली सशक्त और अत्यन्त सक्षम है। 'आज'के सम्पादन कालमें ही पराड़करजीकी लेखन शैलीका चरम उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। अपने लेखोंके माध्यमसे आपने बड़ी ही सजीव एवं स्फूर्तिमयी गद्य-शैलीका प्रवर्त्तन किया। आपके थोड़ेसे चुने शब्दोंमें कथन अथवा उक्ति-विशेषकी अभिव्यंजना इतनी प्रभावोत्पादक होती है कि पाठक चमत्कृत हुए बिना नहीं रहता। अनेक विद्वान् पराड़करजीकी भाषा-शैलीकी तुलना लोकमान्य तिलककी लेखन-शैलीसे करते हैं। कुछ साहित्यकार, पराड़कर-जीकी लेखन-पद्धतिकी काका कालेलकरसे समानता करते हैं। उनका कथन है कि काका कालेलकरने जिस प्रकार गुजरातीमें नये-नये शब्दोंकी योजनाकर तथा व्याकरणके अनुरूप शब्दोंको बनाकर नवीन विषय सुबोध शैलीमें प्रचलितकर गुजराती भाषा एवं साहित्यको समृद्ध किया, उसी प्रकार हिन्दी भाषा एवं साहित्यको पराड़करजीने सम्पन्न बनाया। इस सम्बन्धमें हिन्दी गद्य और उसकी शैलियोंके विशेषज्ञ डाक्टर जगन्नाथप्रसाद शर्माका कथन द्रष्टव्य है—'अधिकांश शैलीकार सम्पादक रहे हैं और वर्तमान हिन्दीमें भी अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराड़कर और कमलापति त्रिपाठी ऐसे सम्पादक हैं जिनकी रचनाओंमें भाषाकी सारी बनावट और सजावट अपने-अपने ढङ्गकी निराली है। उसमें लेखकका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व झलकता है।[१]

पराड़करजीके 'परीक्षाका अन्तिम दिन' शीर्षक अग्रलेखकी कुछ अन्तिम

---

१. हिन्दीकी गद्य शैलीका विकास, पृष्ठ—५।

पंक्तियाँ देखें। इनमें कितना ओज है, इसकी भाषा-शैली कितनी प्राणवान् और प्रेरणादायक है— × × × आज आखिरी दिन है। आज ही १ करोड़ रुपये १ करोड़ देशसेवक और २० लाख चरखे जमा करने, नाम लिखाने और चलानेका अन्तिम दिन है। दिखा दो दुनियाको कि बिना किसी उत्पातके, बिना द्वेष किये, बिना शान्ति भंग किये अहिंसाके मार्गपर चलकर केवल दृढ़ प्रतिज्ञा और सच्चे स्वार्थत्यागसे ही देशको स्वाधीन करना सम्भव है। दिखा दो यूरोपको कि तोप-गोलोंकी अपेक्षा आत्माकी शक्ति कहीं अधिक है। अन्तमें हमारी प्रार्थना अपने घरके भाई काशीवासियोंसे यह है कि आज आप समस्त भारतको दिखा दें कि काशी अब भी पवित्र भूमि ही है। काशीवासी अब भी समयपर धर्म करना जानते हैं। आज काशीकी इज़्जत हमारे हाथमें है। क्या हम इसे जाने देंगे ? कभी नहीं, कभी नहीं।[१]'

छोटे-छोटे वाक्योंमें ओज तथा चमत्कार सहित गूढ़ विषयोंकी स्पष्ट अभिव्यञ्जना पराड़करजीकी शैलीकी प्रमुख विशेषता है। 'दार्शनिक विचार' की भूमिकामें आपने वेदके विषयमें सरल वाक्योंमें जटिल एवं गहन तत्त्वों तथा तथ्योंको सुस्पष्ट करते हुए बोधगम्य बना दिया है। एक उदाहरण लीजिए—'आत्मा एक अदृश्य और व्यापक है। सृष्टिके लिए वह व्यक्त होता है, दीखता है। सृष्टिको ही शास्त्रोंमें 'पर' कहा है, अतः 'पर' का जो आत्मा है उसे 'परमात्मा' कहते हैं। इसीको अंगरेजीमें 'युनिवर्सल सोल' कहते हैं। शरीर-विशेषकी आत्माको केवल 'आत्मा' कहते हैं। बाहर जो कुछ है, दीखता है अथवा जिसका अनुभव होता है, वह 'ब्रह्म' है। यही शास्त्रने भी कहा है—सर्वं वेदाखिलं ब्रह्म।'[२]

पराड़करजीकी लेखन-शैलीमें व्याकरणसम्मत और मुहावरेदार

---

१. ३० जून, १९२१ के दैनिक 'आज'के अग्रलेखसे।

२. दार्शनिक विचार, पृष्ठ संख्या, ज।

भाषाका प्रयोग उसे अत्यन्त सजीव तथा सशक्त बनाता है। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू आदि भाषाके चलते शब्द यथाप्रसंग भावाभिव्यक्तिके निमित्त प्रयुक्त होते हैं। भाषामें कहीं कृत्रिमता अथवा अस्वाभाविकता नहीं आने पायी है। आपकी कथन-प्रणाली आलोचनात्मक होते हुए भी तथ्यातथ्य निरूपक ही कही जायगी, जिसमें गाम्भीर्य और ओज दोनों हैं। मार्मिक प्रभाव डालनेवाली शब्दावलीमें विषयका स्थिरतापूर्वक प्रतिपादन, पराड़करजीकी प्रायः सभी रचनाओंमें पाया जाता है। नवीन तथा विविध विषयोंपर प्रकाश डालनेवाले विद्वत्तापूर्ण लेखोंका प्रकाशन आप 'आज' में किया करते थे। अपने समयकी राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय राजनीति, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक समस्याओंपर पराड़करजीके लेख बड़े ही मारकेके हुआ करते थे और जिनका साहित्यमें स्थायी महत्त्व है। भाव-प्रकाशनकी तीनों प्रणालियों—व्यंगात्मक, आलोचनात्मक तथा विचारात्मक—का प्रयोग पराड़करजीने यथाप्रसंग किया है। देशमें विदेशी सरकारके आधिपत्य तथा शोषणका जिन कठोर तर्कों तथा शब्दोंमें आपने विरोध किया है और जिस भाषा-शैलीमें देशकी लक्ष-लक्ष जनतामें जागरण और चेतनाको उद्बोधित किया है, वह ऐतिहासिक महत्त्वका रहा है। पराड़करजीकी प्रेरक तथा राष्ट्रोत्थानकी भावनासे ओत-प्रोत लेखन-शैलीका देशके जागरण तथा स्वाधीनता आन्दोलनपर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस दृष्टिसे आपके लेखों तथा भाषा-शैलीके प्रभाव एवं महत्त्वकी तुलना, पाश्चात्य देशोंके उन साहित्यकारों तथा विचारकोंकी लेखन-शैलीसे की जानी चाहिए जिनसे विचार-क्रान्ति हुई और नवयुग प्रवर्तन हुआ है।

पराड़करजीकी लेखन-शैलीमें भाषाके सौन्दर्यके साथ ही उसका काव्यात्मक स्वरूप भी देखने योग्य होता है। शिमला साहित्य सम्मेलनके अध्यक्ष पदसे किये गये भाषणमें तो अनेक वाक्य-खण्ड सूक्तिके रूपमें हमारे सम्मुख आते हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) साहित्य सम्मेलनका यह सत्ताईसवाँ अधिवेशन शिमला शैलपर

हो रहा है। इसके साथ एक नक्षत्रमाला समाप्त हो रही है। जिस अखण्ड जप और साधनाका आरम्भ भारतीय संस्कृतिके केन्द्र स्वरूप हमारी काशी नगरीमें हुआ उसकी एक लघुमालाका अन्त उस नगाधिराजके क्रोड़में हो रहा है जहाँ हमारे उस साहित्यका आविर्भाव हुआ था जिसने मनुष्यको मनुष्य बनाया, दुनियाको सभ्यताका सबक पढ़ाया। हमारे ही क्यों, संसारके महान् साहित्यका जनक यही हिमालय है। भरत भूमि और उसकी आत्माका रक्षक यही हिमालय है। आज हम हिन्दी साहित्यकी सेवाके लिए उसकी गोदमें जमा हुए हैं, यह हमारा सौभाग्य है।

(२) हमारी संस्कृतिकी मंजूषा संस्कृत-भाषा नागरीमें ही लिखी जाती है, इसलिए हम इसे भारतकी सांस्कृतिक लिपि भी कह सकते हैं।

(३) नागरी वर्णमालाके समान सर्वांगपूर्ण और वैज्ञानिक किसी दूसरी वर्णमालाका आविष्कार अभी तक नहीं हुआ है।

(४) हमारी भाषाकी सब ध्वनियोंके प्रतीक वर्ण हमारी नागरीमें है।

(५) सजीव भाषा अन्य भाषाओंसे सदा लेन-देन किया करती है।

(६) हम चाहते हैं कि भारतकी सब भाषाएँ नागरी लिपिमें लिखी और छापी जायँ।

(७) यह राष्ट्रीयताका युग है, वह राष्ट्रीयता जिसके बिना कोई देश, कोई ~~जाति~~ कोई कौम अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रमें अपना उचित पद पा ही नहीं सकती।

(८) राष्ट्रीयताकी एक शर्त यह है कि उसकी एक भाषा हो।

(९) आर्य भाषाओंकी सब ध्वनियाँ नागरीमें हैं।

(१०) उर्दूके भी आधारभूत (बेसिक) शब्द जिस भाषाके हैं वह भाषा हिन्दी है। हिन्दी नाम उस भाषाका तब था जब उर्दू नामकी कल्पना भी नहीं हुई थी।

कितने अर्थ-गुम्फित हैं ये वाक्य और उनमें है कितना गम्भीर तथा ऐतिहासिक निष्कर्षोंका समावेश !

शब्द जो पराड़करजीकी देन हैं

पराड़करजीने पत्रकारिता तथा साहित्य-साधनाकी आधी शताब्दीमें हिन्दी भाषाको सैकड़ों नये शब्द दिये। हिन्दी भाषामें आधुनिक जगत्‌के नवीन विषयोंके वर्णन और विवेचनकी शक्ति है, इसे सिद्ध करनेके लिए उन्होंने भारतीय भाषाओंसे अनेक शब्द लिये और उन्हें हिन्दी भाषाकी मूल प्रकृतिके अनुसार प्रयुक्त किया। इस प्रकार सत्तर वर्ष पूर्वकी हिन्दीको व्यावहारिक, ओजस्वी और तेजस्वी स्वरूप देनेका बहुत कुछ श्रेय पराड़कर-जीको है। नये-नये शब्द वे विचारपूर्वक चलाते थे और हिन्दी-संसार उन्हें ग्रहण करता था। विभक्ति तथा प्रत्यय सटाकर लिखनेका आन्दोलन उन्होंने बीसवीं शताब्दीके प्रथम दशकमें श्री देउस्करजी तथा पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीजीकी प्रेरणा और सहयोगसे चलाया, जिसका पहले ही उल्लेख हो चुका है। विभक्ति और प्रत्ययको साथ लिखनेकी परम्पराका व्यापक प्रचार 'आज'के माध्यमसे पराड़करजीने ही किया। नागरी वर्णमालाके सर्वांगपूर्ण तथा वैज्ञानिक होनेके प्रमुख कारणोंमें यह है कि इसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है और जो पढ़ा जाता है वही लिखा हुआ होता है। जैसा हम बोलते हैं, वैसा ही लिखते हैं। पढ़ने तथा मुद्रण आदिके विचारसे पराड़करजीने इस परम्पराको न केवल प्रवर्तित किया प्रत्युत उसका प्रभूत प्रचार भी किया। यह सिद्धान्त यद्यपि सर्वमान्य नहीं हो सका है तथापि हिन्दी-जगत्‌में विभक्ति तथा प्रत्यय संयुक्त लिखनेकी प्रणालीका पर्याप्त प्रचार है।

अनेक विद्वानोंका कथन है कि पराड़करजीने सैकड़ों नये शब्द हिन्दी जगत्‌को दिये। अधिकांश इस बातपर सहमत हैं कि उनके चलाये कई सौ शब्द हिन्दीमें आज भी प्रचलित हैं। समाचारपत्र सम्पादनके प्रसंगमें प्रायः नित्य नये शब्द अंगरेजी समाचारोंमें आते और पराड़करजी ठीक वही भाव व्यक्त करनेवाले हिन्दी शब्द बनाते तथा उनका प्रचलन हो

जाता था। सन् १९१० से लेकर १९५५ तक प्राय: पैंतालिस वर्षोंतक 'भारतमित्र', 'आज', 'संसार', 'कमला' आदि पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लिखे हजारोंकी संख्यामें अग्रलेख-टिप्पणियोंका भाषाके विकास तथा नवीन शब्दोंके प्रयोगके विचारसे सूक्ष्म अध्ययन-मनन किया जाय तो शायद उनका सम्यक् परिचय मिल सके। इसके पूर्व सन् १९०६ से लेकर १९१० तकमें प्रकाशित 'हिन्दी बंगवासी', 'हितवार्ता' तथा 'भारतमित्र'का अध्ययन भी आवश्यक और अनिवार्य होगा। देशेर कथा, गीताका सटिप्पण अनुवाद, शिमला हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें उनका अध्यक्षीय भाषण तथा हिन्दीके अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी लिखी उनकी विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ भी, इस सन्दर्भमें अध्ययन और मननकी उपादेय सामग्री हैं।

शब्दोंके प्रयोग-प्रचलन सम्बन्धी मान्यता

प्रचार तथा प्रशंसासे दूर रहनेवाले पराड़करजीने हिन्दी संसारको दिये नये शब्दोंकी स्वयं कहीं चर्चा नहीं की है। हिन्दी साहित्य तथा भाषाके इतिहासकारोंने भी इस मूल्यवान् देनका विशेष उल्लेख नहीं किया है। संयोगवश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके स्वागत आयोजनमें भाषण करते हुए पराड़करजीने इस सम्बन्धमें एक संकेत किया है—'राष्ट्रभाषा सबकी एक है, केवल हिन्दी भाषियोंकी नहीं है अतः उसके विकासके लिए सबको प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दी भाषाके विकासके लिए प्रादेशिक भाषाओंसे उत्तमोत्तम शब्द और मुहावरे हिन्दीमें समाविष्ट करना चाहिए। पारिभाषिक शब्दोंके लिए आपको संस्कृतको आधार बनाना होगा। मैंने स्वयं मराठी, गुजराती और बंगला भाषाओंसे दो सौसे अधिक शब्द हिन्दीमें ग्रहण किये हैं। हिन्दी भाषाका संवर्धन करनेके लिए प्रादेशिक शब्दोंको ग्रहण करना आवश्यक है।'[1] नागपुरमें विदर्भ साहित्य संघमें पराड़करजी-

---

१. १३ नवम्बर, १९५३ को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाके स्वागत आयोजनमें दिये गये भाषणसे।

की ७० वीं जयन्तीके अवसरपर जो समारोह किया गया था उसमें भाषण करते हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री प्रभाकर माचवेने कहा—पराड़करजीने हिन्दीकी महान् सेवा की है तथा स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा देशका मार्गदर्शन किया है। आपने अपना समस्त जीवन मिशनरीकी भावनासे हिन्दी भाषा एवं साहित्यके निमित्त समर्पित कर दिया। उन्होंने हिन्दी साहित्यको दो सौ नवीन शब्द दिये हैं।

पराड़करजी द्वारा हिन्दी भाषाको दिये गये नवीन शब्दोंपर विचारके पूर्व उनके हिन्दी शब्दों सम्बन्धी सिद्धान्तसे परिचित हो जाना प्रसंगयुक्त होगा। शिमला साहित्य सम्मेलनके अध्यक्षीय भाषणमें हुए इस सम्बन्धमें पराड़करजीका स्पष्ट मत दृष्टिगोचर होता है। आपका अभिमत है—सजीव भाषा अन्य भाषाओंसे सदा लेन-देन किया करती है। हिन्दीमें सैकड़ों शब्द विदेशी भाषाओंसे आये हैं पर वे हमारी भाषामें इस तरह मिल गये हैं कि कोषकी सहायताके बिना अब कोई नहीं कह सकता कि वे हिन्दी नहीं हैं। इसी तरह हमें और भी बहुतसे शब्द अन्य भाषाओंसे लेने पड़ेंगे। पर लेकर यदि उन्हें हमने अपना न लिया, उन्हें उनके विदेशी रूपमें ही रहने दिया तो वे भाषाका गौरव न बढ़ाकर उसके अजीर्णका कारण होंगे। विदेशी भाषाओंसे शब्द लिये गये हैं और लेने चाहिए। जितने ही अधिक शब्द लिये जायँगे उतनी ही हमारी शब्द-सम्पत्ति बढ़ेगी और अच्छे लेखकों-के हाथ पड़कर वे भिन्न-भिन्न भाव प्रकट करनेमें सहायक होंगे। पर उन शब्दोंका उच्चारण हमारी भाषाकी प्रकृतिके अनुसार हो जाना चाहिए, जैसे अंग्रेजी 'लैनटर्न'से लालटेन और 'लैम्प'से लम्प हो गया। × × × अन्य भाषाओंसे शब्द लेनेमें कोई आपत्ति नहीं बरंच लेना चाहिए। पर इसके साथ एक शर्त है। शब्द मूलतः चाहे जिस भाषाके हों पर जब हम लें उन्हें अपना-सा बनाकर लें। अर्थात् उनकी ध्वनि हमारी भाषाकी ध्वनिसे मिलती-जुलती हो। मूल ध्वनिकी रक्षाका यत्न केवल व्यर्थ ही नहीं; हानिकारक भी है। यह बात केवल अरबी-फारसीके ही नहीं संस्कृत

शब्दोंमें भी है। हाँ, संस्कृत शब्दोंके उच्चारण हिन्दी भाषा बोलनेवालोंके वाग्यन्त्रके लिए प्रायः स्वाभाविक होनेके कारण उनमें हिन्दी हो जानेपर भी अधिक परिवर्तन नहीं होता और अरबी-फारसीके शब्दोंमें होता है। पर यह अनिवार्य है। आगत शब्दोंका उच्चारण मूलमें जैसा है वैसा ही बनाये रखनेका यत्न करनेसे वे कभी हमारे न होंगे। इन्हीं शब्दोंके सम्बन्धमें दूसरी शर्त यह है कि ये हमारे व्याकरणके शासनमें आ जायँ। हम शब्द अन्य भाषाओंसे ले सकते हैं पर उनके लिंग और वचन सम्बन्धी रूपान्तर हमें उस भाषाके व्याकरणके नियमानुसार न बनाने चाहिए जिससे वे आये हों। शब्दोंके भाषान्तरित होनेके साथ-साथ व्याकरणान्तरित भी होना चाहिए। अंग्रेजीमें हिन्दीसे अनेक शब्द गये हैं, जैसे जंगल, पण्डित आदि। इनके बहुवचन अंग्रेजी भाषाके नियमोंके अनुसार जंगल्स, पण्डित्स आदि होते हैं हिन्दी-संस्कृतके नियम लागू नहीं होते। हिन्दीमें भी हम संस्कृतसे शब्द लेते हैं पर उनके रूपान्तर अपने ढंगसे बना लेते हैं। उदाहरणार्थ 'पुस्तक' शब्द संस्कृत है और वहाँ उसका बहुवचन पुस्तकानि होता है। पर उसके हिन्दी हो जानेपर बहुवचन हिन्दी व्याकरणके अनुसार पुस्तकें होता है न कि पुस्तकानि। यह नियम अंग्रेज़ी, अरबी-फारसी शब्दोंको भी लागू होना चाहिए। उदाहरणार्थ, हमने 'फुट' शब्दको अंग्रेजीसे लिया है। इसकी आवश्यकता भी थी। पर इसका बहुवचन भी वहाँसे लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अपने व्याकरणके अनुसार प्रथमामें फुटका बहुवचन फुट ही होता है और हमें दो फुट, तीन फुट आदि ही लिखना चाहिए, न कि दो फीट, तीन फीट आदि। स्कूलमें पढ़ाई जानेवाली गणितकी पुस्तकोंमें फीट देखकर मुझे तो 'फिट' आता है। 'साहब' हमने अरबीसे लिया है और यह नित्यकी बोलचालमें भी आता है। पर इसका बहुवचन असहाब करना उसे हिन्दी न होने देना और हिन्दीको संग्रहणीका शिकार बनाना है। 'स्टेशन', 'इस्टेशन' बनकर अथवा अपने मूलरूपमें हिन्दी उर्दूमें आया है। पर इसका बहुवचन 'स्टेशन्स' हमने नहीं लिया है। हम

कहते हैं—'राहमें हमने कुई बड़े-बड़े स्टेशन देखे' न कि 'स्टेशन्स' देखे। इतने उदाहरण काफी हैं। तात्पर्य कहनेका इतना ही है कि बाहरसे शब्द मँगाइए पर उन्हें अपना लीजिए—अपने व्याकरणके शासनमें लाइए। बाहरके सब शब्दोंका स्वागत करनेवाली हिन्दी ही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है और स्वभावतः है।[1]

पराड़करजीके चलाये कुछ शब्द

सन् १९३८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके शिमला अधिवेशनके अध्यक्षीय भाषणमें पराड़करजीने हिन्दी भाषाकी प्रकृति तथा विदेशी एवं अन्य भारतीय भाषाओंसे शब्द ग्रहण करनेकी जिस सिद्धान्त-प्रणालीका विवेचन किया है, उससे उनके नये शब्द बनाने तथा व्यवहारमें लानेकी पद्धतिका भली-भाँति परिचय मिलता है। विभिन्न भारतीय भाषाओंसे दो सौसे अधिक शब्द लेकर हिन्दीमें प्रचलित करनेका उन्होंने स्वयं उल्लेख किया है। जैसा पहले ही कहा जा चुका है इन शब्दोंकी सूची प्रस्तुत करना दीर्घकालीन अनुसन्धान, अध्ययन और मनन-द्वारा ही सम्भव है। इस सम्बन्धमें हिन्दी भाषा एवं साहित्यके अनेक विद्वानों तथा पराड़करजीके सहयोगियोंसे परामर्श करने और 'आज'की प्रारम्भिक फाइलोंका अध्ययन करनेपर मुझे उनके चलाये अनेक शब्दोंका पता चला है। आचार्य पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्रने मुझे बताया कि 'सर्वश्री' शब्द पराड़कर-जीकी ही हिन्दीको देन है। यह शब्द आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लने स्वीकार कर लिया था और अपने हिन्दी साहित्यके इतिहासमें उसका निरन्तर प्रयोग किया है। इस सम्बन्धमें सम्पादकाचार्य पण्डित अम्बिका-प्रसाद वाजपेयीजीका भी कथन है कि 'सर्वश्री' शब्द पराड़करजीका ही

---

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलनके शिमला अधिवेशनमें अध्यक्षपदसे किये भाषणसे।

चलाया हुआ है।[१] इसी प्रकार 'श्री' शब्दका प्रयोग और व्यवहार करने तथा उसका व्यापक प्रचार करनेका श्रेय पराड़करजीको ही है। 'मिस्टर' शब्दके लिए 'श्री' का प्रयोग पराड़करजीने प्रचलित किया और 'आज' के माध्यमसे उन्हें इसमें सफलता भी मिली। ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'सर्वश्री' तथा 'श्री' इन दोनों शब्दोंको भारतकी केन्द्रीय सरकार तथा अधिकांश राज्य सरकारोंने भी स्वीकार कर लिया है। न केवल हिन्दी भाषाकी विज्ञप्तियोंमें प्रत्युत भारत सरकारकी अंगरेज़ी भाषाकी विज्ञप्तियोंमें भी इनका व्यवहार होने लगा है।[२] इसी प्रकार 'राष्ट्रपति' शब्द भी उन्हींकी देन बतायी जाती है जिसका प्रयोग देशके संविधानमें विहित कर लिया गया है और जिसे सार्वदेशिक स्तरपर स्वीकार कर लिया गया है। अर्थशास्त्रके अनेक शब्द पराड़करजीकी देन हैं। सन् १९१०में 'भारतमित्र'में तथा सन् १९२०से सन् १९५४ तक 'आज' में भारत सरकारके केन्द्रीय तथा राज्योंके बजटपर उनके ऐसे अध्ययनपूर्ण लेख प्रकाशित हुए जिन्हें देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे। राष्ट्रभाषा हिन्दीका देशमें कोई पत्र ऐसा न था जिसमें पराड़करजीकी भाँति केन्द्रीय आयव्ययक अथवा राज्य सरकारके आयव्ययककी सूक्ष्म टीका होती और समाचार रूपमें उनका विस्तृत प्रकाशन होता। आधुनिक कालमें अर्थशास्त्रका बहुप्रचलित शब्द 'मुद्रास्फीति' पराड़करजीका ही चलाया हुआ

---

१. ३० जून, १९५८ को लेखक सम्पादकाचार्य बाजपेयीजीके दर्शनार्थ लखनऊ गया था। उसी समय विचार-विमर्शमें उक्त वार्ता हुई थी।

२. 'दिस इनफारमेशन वाज गिवन वाई श्री गोविन्दबल्लभ पन्त, यूनियन होम मिनिस्टर, इन रिप्लाई टू ए क्वेश्चन वाई सर्वश्री एच० एन० मुकर्जी एण्ड मुहम्मद इलियास।'—भारत सरकारके सूचना विभागकी दिनांक १० दिसम्बर, १९५८ की लोकसभा सम्बन्धी विज्ञप्तिसे।

है । इसी प्रकार लोकतन्त्र, नौकरशाही, स्वराज्य, सुराज्य, नक्राश्रु, मक्राश्रु, वातावरण, वायुमण्डल, कारखाई, वाग्यन्त्र, अन्तरराष्ट्रीय, चालू, आदि शब्दों के व्यापक प्रयोग तथा प्रचलनका श्रेय पराड़करजीको ही है ।

हिन्दी शब्द सम्बन्धी विचार-विमर्श

युगानुरूप भावों और विचारोंकी अभिव्यक्तिके निमित्त नये-नये शब्दों-के प्रयोग तथा व्यवहारके सम्बन्धमें पराड़करजी तथा तत्कालीन विद्वानोंमें विचार-विमर्श भी हुआ करता था । नये शब्दोंके निर्माणमें पराड़करजीकी सहमति तथा सुझाव आवश्यक समझा जाता था । निम्नलिखित पत्रोंसे विदित होगा कि नये शब्दोंके विषयमें उनसे किस प्रकारकी चर्चा होती थी—

[१]

सेवा उपवन, काशी
५ मार्गशीर्ष, १९९६

श्रीयुत सम्पादक 'आज'
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी

प्रिय महाशय,

नमस्कार । मैंने कई बार सोचा था कि आपको इस सम्बन्धमें लिखूँ पर भूल जाया करता था । आज मैंने यही सोचा कि इस बातके सम्बन्धमें आपको तुरन्त लिखूँ । मुझे इसके लिए क्षमा कीजिएगा । आप अपने पत्रमें अंग्रेजी शब्द 'माइन'का तर्जुमा सुरंग शब्दसे करते हैं । 'सुरंग' शब्द जहाँतक मुझे मालूम है, यूनानी भाषाका शब्द है जो अपने देशमें कब आया, इसका पता मुझे ठीक नहीं है । पर इस शब्दका अर्थ जहाँतक मुझे मालूम है पृथ्वीके भीतर एक जगहसे दूसरी जगह जानेके रास्तेका नाम है । आजकल समुद्रोंमें जो एक विस्फोटक पदार्थके प्रयोगसे जहाजोंको उड़ानेका यत्न किया जाता है, उसके लिए भी 'माइन' शब्दका प्रयोग अंग्रेजीमें होने लगा है । पर हिन्दीमें 'सुरंग' शब्दसे यह अर्थ निकालना

बड़ा असंगत प्रतीत होता है। 'सुरंग'का अर्थ पृथ्वीके भीतरी मार्गका ही लिया जा सकता है। इसका विस्फोटक पदार्थके अर्थमें व्यवहार करना बड़ा खटकता है। इसपर आप विचार कर लें और इसके लिए कोई दूसरा शब्द खोज निकालनेका यत्न करें तो अधिक उपयुक्त होगा। आगे आपकी इच्छा।

कृपाभिलाषी—**शिवप्रसाद गुप्त**

[२]

कलकत्ता,
१३।८।१९३८

प्रिय बाबूरावजी,

सप्रेम नमस्कार। आपके पास हमने कई महीने पहले कुछ राजनीतिक पारिभाषिक शब्दोंकी टाइप की हुई सूची भेजी थी। जिन सज्जनने हमें यह सूची दी थी वे इन अंगरेजी शब्दोंके हिन्दी और मराठी प्रतिशब्द चाहते थे। परन्तु न तो आपने वह सूची वापस की और न उनके हिन्दी और मराठी प्रतिशब्द ही लिख भेजे। उक्त सज्जन बाबू पुत्तनलालजी विद्यार्थीका तकाजा हम बराबर सहते रहते हैं। × × ×

भवदीय—**अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी**

[३]

प्रयाग
१९२८

प्रिय पराड़करजी,

अभी ला जर्नल प्रेससे आते हुए रास्तेमें एक मित्रने 'आज' दिया। 'सोहागरात'की समालोचना पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। नहीं जानता किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ। यह आलोचना किसकी लिखी हुई है? क्या आप ही की। आपने भी अपने बहुमूल्य समयको इस पुस्तकके पढ़नेमें नष्ट किया, इसके लिए कृतज्ञ हूँ। पुस्तकका दूसरा संस्करण छपनेको दे चुका हूँ।

५००० प्रतियाँ छपा रहा हूँ। मित्रोंको भी सहसा विश्वास नहीं होगा किन्तु निर्दिष्ट समयमें पुस्तक तैयार हो जाय इसलिए २७ दिनमें पुस्तक तैयार कर दी थी। कितने ही स्थलोंपर शब्द बदले जा सकते हैं और भाषा सरल की जा सकती है। कुछकी कर भी दिया है और प्रयत्नमें लगा हूँ। आपकी बड़ी कृपा होगी यदि इस कार्यमें मेरी सहायता करें।

मैं इस पुस्तकको अधिकसे अधिक उपयोगी और सरल भी बनाना चाहता हूँ। मुझको पुस्तकके एक शब्दके लिए भी आग्रह नहीं है। मित्रोंके आदेशानुसार सबको बदल देनेको तैयार हूँ, किन्तु आप लोग जब सहायता करें। 'मर्दुए' शब्द अनेक मित्रोंको पसन्द नहीं, जहाँ यह शब्द व्यवहृत हुआ है, वहाँ जो दूसरा शब्द कहिए लिख दूँ और भी जहाँ-जहाँ जो परिवर्तन आप आवश्यक समझें कृपाकर लिख भेजिए। नामके सम्बन्ध-में कुछ जरूर कहना है। पुत्रवाली पुस्तक पहिले निकलनेको थी। जिस प्रेसको दिया वह आज तक भी उसे तैयार नहीं कर सका है। वह पहिले प्रकाशित होनेको थी। उसकी भूमिकामें 'सोहागरात'के सम्बन्धमें कुछ विशेष निवेदन है। आप लोगोंमें 'सोहागरात'को 'शुभरात्रि' कदाचित् कहते हैं। फिर यह अशुभ और दूषित क्यों हो? ऐसी अपवित्र क्यों हो कि इसकी चर्चा भी कोई किसीसे न करे। हम चाहते हैं कि सोहागरात, सुहागरात, शुभरात्रिकी चर्चा पिता पुत्रीसे और पुत्री पितासे कर सके और वह पवित्र रात्रि हो जाय। इसका सहल आयोजन मेरी समझमें पहिला यह आया कि सुहागरातका नाम शुभ और पवित्र किया जाय। इस शब्दका व्यवहार तो सभ्य समाजमें होने लगे। कठिनाइयोंको मैं देखता हूँ। इस नामके कारण ही कई गृहोंमें पुस्तकका प्रवेश नहीं हो सका। मेरी पुत्रवधूकी एक सहेलीने उससे पुस्तक माँगी थी। उसने हमसे कहा। हम किसी और काममें व्यस्त थे। हमने सुना नहीं। हमने कहा—क्या कहा, कैसी पुस्तक? लज्जासे वह कुछ नहीं कह सकी। कहने लगी आपकी पुस्तके वो माँगती है, भेजवा दीजिए। उसी समय हृदयमें भाव उठा था

कि कठिनाई बहुत है। बहुत दिनोंसे हृदयका संस्कार है—शुभरात्रि दूषित है। सहसा यह भाव बदलेगा नहीं, मगर प्रयत्न ज़रूरी है। कोई और ही उपाय सोचूँगा। आप लोगोंके आदेश मानने और नाम बदल देनेमें मुझको तनिक भी आपत्ति नहीं।

आप सब मित्रों और विद्वानोंको पुस्तक पसन्द आयी, आप लोग उसे उपयोगी समझते हैं, हम तो इसीसे प्रसन्न हैं और इसे अपना परम सौभाग्य समझते हैं। आशा है, आप हमारी प्रार्थनापर ध्यान देंगे और पुस्तकको अधिकसे अधिक उपयोगी बनानेमें हमको सहायता देंगे।

स्नेही—**कृष्णकान्त मालवीय**

इन पत्रोंसे प्रकट है कि पराड़करजीसे उपयुक्त शब्दोंके सम्बन्धमें तत्कालीन विद्वान् विचार-विमर्श किया करते थे। इन पत्रोंके यदि उत्तर भी प्राप्य होते तो सम्पूर्ण चित्रपर प्रकाश पड़ता और तद्विषयक पराड़कर-जीकी विचार-सरणिसे हम परिचित हो सकते। अस्तु। शब्दोंके व्यवहार और प्रयोगपर विचार प्रकट करते हुए स्वयं पराड़करजीने लिखा है—एक ही शब्दके भिन्न-भिन्न भाषाओंमें भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। इससे मेरे जैसे अन्य भाषी लेखकसे बड़ी-बड़ी भूलें हो जाया करती हैं। लेखक जीवन-के प्रारम्भिक कालमें मुझसे ऐसी बड़ी भूलें हुईं, जिनके लिए मुझे लज्जित होना पड़ता था। तब मैंने अपने लिए यह नियम बना लिया था कि लिखते-लिखते यदि मुझे मालूम होता कि जो शब्द मैं लिखने जा रहा हूँ, वह मराठीमें भी आता है, तो उस समय मैं उसका प्रयोग नहीं करता था। पीछे कोश देखकर या गुरुजनोंसे पूछकर यह जाननेका यत्न करता था कि उसका हिन्दीमें किस अर्थमें और मराठीमें किस अर्थमें प्रयोग होता है। अपने अ-हिन्दी-भाषी मित्रोंसे मैं इस नियमका अनुसरण करनेका अनुरोध करूँगा। भाषाकी कोई प्रकृति होती है, इसका अनुभव प्रत्येक सुलेखकको है। हम अनुभव करते हैं कि एक शब्द बँगला, मराठी

या गुजरातीमें अच्छा लगता है, पर हिन्दीमें खटकता है। इसका कारण यही है कि वह हिन्दीकी प्रकृतिके विरुद्ध है। यही बात वाक्य-विन्यासके सम्बन्धमें भी है।[1]

इस प्रकार, पराड़करजीने जो नवीन शब्द हिन्दी भाषा तथा साहित्यको दिये, उनके कुछ परिचयके साथ ही, उनके शब्दोंके प्रयोगके सिद्धांत भी सुस्पष्ट हो जाते हैं। नये शब्द किस प्रकार अन्यान्य भाषाओंसे लिये जायँ और उन्हें किस प्रकार हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप बनाकर प्रयुक्त किया जाय, इसका भी यथाप्रसंग उल्लेख हो चुका है। विशेषतः अर्थशास्त्र और राजनीति सम्बन्धी उनके चलाये सैकड़ों शब्द आज स्थायी राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें घुल-मिल गये हैं और भाषा-भण्डारकी सम्पत्ति बन चुके हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पराड़करजीकी शब्द-साधना हिन्दी भाषा तथा साहित्यके इतिहासमें ऐतिहासिक और उल्लेखनीय है।

• साहित्यकारोंका निर्माण तथा प्रेरणा

पराड़करजीने पत्रकारिताके माध्यमसे हिन्दी भाषा और साहित्यकी न केवल महान् सेवा ही की अपितु हिन्दी भाषाके साहित्यकारोंके निर्माणमें भी ऐतिहासिक योग दिया है। हिन्दीके प्रथम श्रेणीके अनेक लब्धप्रतिष्ठ साहित्य-साधकोंको आपकी लेखनीसे प्रेरणा मिली और अनेकको तो साहित्य-क्षेत्रमें लानेका श्रेय आपको ही है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीके बाद, साहित्य रचनाकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देनेवाले कतिपय साहित्य महा-रथियोंमें पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करका नाम सदा श्रद्धासे लिया जायगा, इसमें सन्देह नहीं। आचार्य श्री किशोरीदास वाजपेयीका कथन है कि पराड़करजीने साहित्यका ही नहीं, साहित्यकारोंका भी निर्माण

---

१. 'अच्छी हिन्दी'में पराड़करजीकी प्रस्तावना, पृष्ठ ७-८।

किया।[१] राजनीतिक वात्याचक्र, स्वाधीनता आन्दोलन तथा अंगरेजी राज्यके कठोर दमनचक्रके संघर्षमय कालके रहते हुए भी; पराड़करजीने राष्ट्रभाषा हिन्दी और साहित्यकी अभिवृद्धिके प्रश्नको कभी ओझल नहीं होने दिया। वस्तुतः राष्ट्रभाषाके हिन्दीका प्रश्न भी भारतीय स्वाधीनता संग्रामका ही एक प्रमुख अंग था। यही कारण था कि पराड़करजीने हिन्दी भाषा तथा साहित्यके प्रश्नको, उसकी उन्नति तथा विकासको और उसके निर्माता-साहित्यकारोंको सदा-सर्वदा विशेष महत्त्व दिया।

सन् १९२०में जब पराड़करजी नजरबन्दीसे छूटकर काशी आये और 'आज' का सम्पादन करने लगे, तभी देशमें उनकी विद्वत्ता तथा उनका हिन्दी भाषाके प्रति प्रेम प्रसिद्ध हो चुका था। हिन्दीके तत्कालीन विद्वान् न केवल उनका आदर-मान ही करते थे अपितु उनसे परामर्श एवं प्रेरणा भी लेते। आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य लाला भगवानदीन प्रभृति विद्वान् सन् १९२०में पराड़करजीकी हिन्दी सेवासे किस प्रकार प्रभावित थे वह सुप्रसिद्ध हिन्दी कोशकार तथा विद्वान् श्री रामचन्द्र वर्माके निम्नलिखित संस्मरणसे स्पष्ट है—"सभाका कोश विभाग उन दिनों खूब जोरोंसे चल रहा था। पराड़करजीके काशी आनेका समाचार सुनकर हमलोग प्रसन्न तो हुए ही थे; उनके दर्शनोंके लिए उत्सुक भी हुए थे। इस बातकी चर्चा होनेपर हम लोगोंने 'सभा' के पुस्तकालयके तत्कालीन अध्यक्ष और सुप्रसिद्ध साहित्यविद् पण्डित केदारनाथ पाठकको साधा। पाठकजी तो ऐसे अवसरोंकी ताकमें ही रहते थे। दूसरे ही दिन वे दोपहरके समय पराड़कर-जीके पास जा पहुँचे और तीसरे पहर पराड़करजी उनके साथ सभामें आ गये। संयोगवश उस समय मैं सभाके पुस्तकालयमें ही था और वहीं उनके साथ मेरा पहला साक्षात्कार और परिचय हुआ। पाठकजीने और मैंने

---

१. १३ जनवरी, १९५८को पराड़कर पुण्य-तिथिके अवसरपर दिये गये भाषणसे।

उन्हें सभाका पुस्तकालय दिखाया और सभाके प्रमुख कार्योंका परिचय कराया। फिर हमलोग उन्हें लेकर कोश-विभागमें पहुँचे, जहाँ शुक्लजी, लाला साहब आदिने उनका उचित आदर-सत्कार किया। वहीं उन्हें कोश-सम्बन्धी सब कार्यप्रणालियाँ बतलायी गयीं और जो-जो कार्य हुए थे, उन्हें दिखलाये गये। हम सभी लोग एक दूसरेसे मिलकर इस प्रकार प्रसन्न हुए मानो किसी परम आत्मीय और चिर-परिचितसे बहुत दिनोंपर मिले हों।[1]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

हिन्दीके प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानी-लेखक तथा निबन्धकार पाण्डेय श्रीबेचन शर्मा 'उग्र'को साहित्य-जगत्‌में अवतीर्ण तथा अग्रसर करनेका श्रेय पराड़करजीको ही है। अपने उपन्यासोंमें 'उग्र'जीने समाजके पाखंडपूर्ण कुत्सित पक्षोंका उद्‌घाटन और चित्रण बड़ी मार्मिक शैलीमें किया है। 'समाजके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंके बीच धर्म, समाज-सुधार, व्यापार-व्यवसाय, सरकारी काम, नई सभ्यता आदिकी ओटमें होनेवाले पाखंडपूर्ण पापाचारके चटकीले चित्र सामने लानेवाली कहानियाँ 'उग्र'जीकी हैं। 'उग्र' की भाषा बड़ी अनूठी चपलता और आकर्षक-वैचित्र्यके साथ चलती है'।[2] पाण्डेय बेचन शर्माकी भाषा-शैलीमें नवीन युगका उत्कर्ष है, आन्दोलनात्मक उत्साह है, कथनका परिष्कृत सौन्दर्य है और भावावेशकी उग्रता है।[3] पराड़करजीने 'उग्र'जीकी साहित्यिक प्रतिभा तथा सर्जनात्मक शक्तिको किस प्रकार प्रेरणा दे प्रोत्साहित किया, इसका वर्णन-विवरण स्वयं 'उग्रजी'-के शब्दोंमें इस प्रकार है—

---

१. 'आज' पराड़कर स्मृति अंक : २३ जनवरी, १९५५।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ संख्या—५११।

३. डाक्टर जगन्नाथप्रसाद शर्मा : हिन्दीकी गद्य शैलीका विकास, पृष्ठ संख्या—१५४।

'श्रद्धेय पराड़करजी मेरे गुरु थे और—सत्र मानिए—ज्ञानमण्डल, 'आज' और पराड़करजी न होते तो 'उग्र' कदापि न होता। × × × बात सन् १९२१की है। मैं भी २१ ही सालका था। जब सौभाग्यसे पराड़करजीके चरणोंकी निकटता सुलभ हुई थी। महात्मा गाँधीके जादूसे चमककर 'शशिमोहन शर्मा' नामसे असहयोग-आन्दोलन विषयक एक कहानी लिखकर 'आज' के एक सहकारी सम्पादक स्वर्गीय हरिहरनाथ श्रीवास्तवको मैंने इस आशासे दी थी कि वे उसे प्रकाशित करा देंगे। श्रीवास्तवजी प्रसन्न-वदन, कृपालु स्वभावके थे। कहानी पढ़नेके बाद उन्होंने उसे प्रधान सम्पादक श्रद्धेय श्रीप्रकाशजीके सामने स्वीकृतिके लिए रख दिया, लेकिन श्रीप्रकाशजीने, उसे बिना पढ़े ही, यह कहकर फक दिया कि—'आज' लड़कोंके लिखनेके लिए नहीं।

कहानी फेंककर जब श्रद्धेय श्रीप्रकाशजी व्यवस्था दे रहे थे, मैं उनके ठीक पीछे एक कोठरीमें खड़ा था। कलेजा मेरा धड़क रहा था। रातका वक़्त था। उन दिनों ज्ञानमण्डल तथा 'आज'-कार्यालय काशीमें दुर्गाकुण्ड मुहल्लेके गुरुधाममें थे और यन्त्रालयके मुद्रक तथा व्यवस्थापक मेरे श्रद्धेय काका पण्डित छबिनाथ पाण्डेय, बी० ए०, एल-एल० बी० थे। मैं व्यवस्थापककी कोठरीमें था जिसके द्वारपर श्रद्धेय श्रीप्रकाशजीका—उनके ज्ञानकी तरह—विस्तृत, विशाल टेबुल था। मौसम सर्दीका था, सो, मैं और भी 'गनगना'कर सिकुड़कर, भविष्य-भयसे भरा काकाजीकी रजाईमें दबककर सो गया और भयानक सपने देखने लगा। इसके बाद कई दिनोंतक मारे ग्लानिके ज्ञानमण्डलमें गया नहीं, लेकिन एक दिन एकाएक 'आज'में देखा—वही कहानी प्रकाशित! वही लेखक—'शशिमोहन शर्मा'!

इस एक घटनाने मुझे शक्ति दी, रोजी दी, रोटी दी—आँखें खोलीं, द्रष्टा और स्रष्टा स्पष्ट किये। बादमें पता चला कि श्री हरिहरनाथ श्रीवास्तवने—यह सोचकर कि लड़केका दिल न टूटे—वह कहानी पराड़करजीके सामने रख दी थी और उन्होंने यत्र-तत्र संशोधनकर 'आज'में

छपनेके लिए प्रेसमें दे दी थी ! उक्त कहानी छपनेके बाद मुझे भारी भरोसा हुआ—हिम्मत हुई श्रद्धेय पराड़करजीके सामने जाकर करबद्ध खड़े होनेकी। मैंने प्रार्थना की—'पण्डितजी, मैं भी आपके चरणोंकी कृपासे कुछ सीख लेता तो मेरा बेड़ा पार हो जाता—'मेरो कोई कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।' और श्रद्धेय पराड़करजीने मुझे सँभाला, सुधारा, रास्तेसे लगा दिया। और कितनी दिक्कतें उठाकर ! बरसों—नित्य—अमूल्य समय लगाकर, अग्रलेख और टिप्पणियाँ लिखना रोककर, वे मेरी कहानियाँ, कविताएँ, चुटकुले, एकांकी आदि शुद्ध करते, बढ़ावा देते, बढ़ाई देते, साथ ही ज्ञानमण्डलसे दक्षिणाएँ दिलाते थे।[१]'

सन् १९२६में जब 'उग्र'जी 'मतवाला' कार्यालय, कलकत्ता गये तब भी 'आज'से आपका सम्बन्ध बना रहा। १६ नवम्बर, १९२६को पराड़करजीके नाम लिखे पत्रसे यह स्पष्ट है—

'मतवाला' कार्यालय

बालकृष्ण प्रेस,
३६, शङ्करघोष लेन,
कलकत्ता

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर अभिवादन

आखिर मैं अपने दुर्भाग्यको लपेटकर, कलकत्ता आ पहुँचा। अभी चुपचाप 'मतवाला' कार्यालयमें 'विजयोपासना' कर रहा हूँ। अभी भी आपसे मेरा बहुत कुछ स्वार्थ है। इसीलिए पत्र लिख रहा हूँ। × × ×

आपकी आज्ञा होते ही मैं कहानी या कलकत्तेकी चिट्ठी या जो भी आज्ञा हो, लिखना आरम्भ कर दूँगा। मेरे घरपर 'आज' जाना बन्द न होना चाहिए क्योंकि किसी भी हालतमें मैं पं० कृष्णबिहारी मिश्र और श्री अनूप शर्मासे कम न लिखता रहूँगा। और ऐसे तो मुझे हमेशा 'आज' मिलना चाहिए। मैंने उसकी काफी सेवा की है। × × ×

---

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : 'आज' पराड़कर स्मृति-अंक, पृष्ठ—५।

मेरा जेलवाला लेख छापिएगा या मुझे लौटानेकी कृपा कीजिएगा ? एक 'ऊटपटाँग' भी है जिसका कुछ भाग बहुत सुन्दर होगा। आपको समय नहीं है जानता हूँ, पर इस पत्रका उत्तर तो ज़रूर दीजिएगा। अधिक क्या ?

आपका चरणरज—**पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'**

सन् १९४७के बाद, जब 'उग्र'जी काशी आये, उन दिनों इन पंक्तियों-का लेखक 'आज' सोमवार विशेषांकका सम्पादक था। एक दिन पराड़कर-जीने मुझे बुलाकर आदेश दिया—'उग्र'जीके लेखोंको विशेष स्थान देकर प्रकाशित करें।' इसी प्रसंगमें आपने मुझे बताया कि 'उग्र'जीको किस प्रकार प्रारम्भमें उन्होंने साहित्य-जगत्के समक्ष उपस्थित किया और 'आज'में उनकी रचनाओंको प्रकाशित कर प्रोत्साहित किया। 'उग्र'जीका उन्हें सदा—सर्वदा ध्यान रहता था।

आचार्य शिवपूजन सहाय

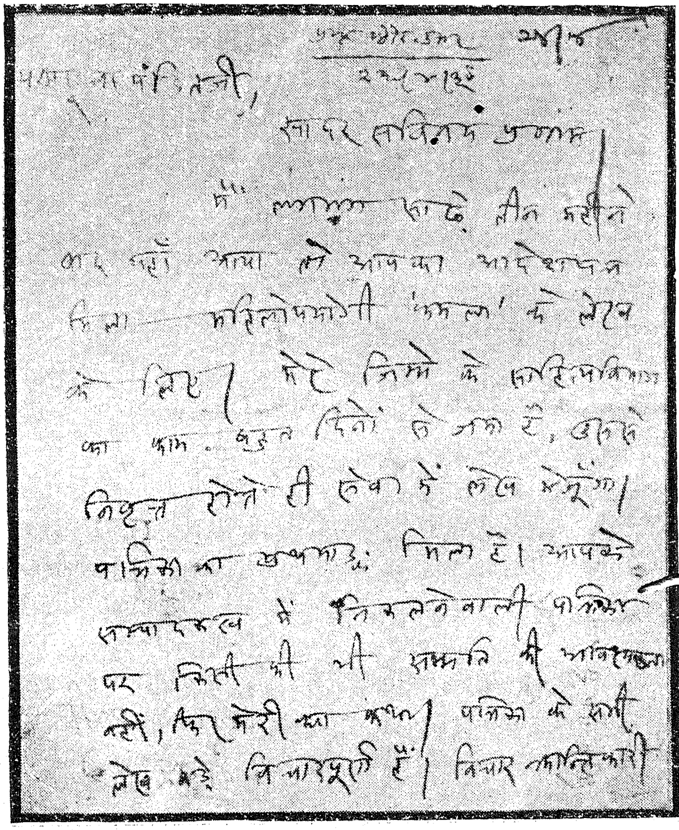
आचार्य श्री शिवपूजन सहायजी अपने लेखन-सम्पादनके प्रारम्भिक दिनोंमें पराड़करजीके सम्पर्कमें आये और उनसे काफी प्रभावित हुए थे। इस सम्बन्धमें आपने स्वयं अपने संस्मरणमें लिखा है[1]—पूज्य पराड़करजीके प्रथम दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था सन् १९२४ या २५ ईसवीमें। जहाँतक स्मरण है, लखनऊके साम्प्रदायिक दंगेसे बचकर मैं काशी आया था। प्रथम दर्शनके समय जब भाई उग्रजीने उनको मेरा परिचय दिया तब उन्होंने हँसकर मुझसे पूछा था—तुम तो शान्त स्वभावके मालूम होते हो, 'मतवाला'के योग्य लेख कैसे लिख लेते थे ?

जैसे पहाड़के सामने जाते ही ऊँट अपनी ऊँचाई भूल जाता है वैसे ही मैं सकुचाकर रह गया, कुछ उत्तर देते न बना। तब भी उन्होंने सलाह दी

---

१. 'आज' पराड़कर स्मृति-अंक, पृष्ठ–३।

आचार्य शिवपूजन सहायका पत्र

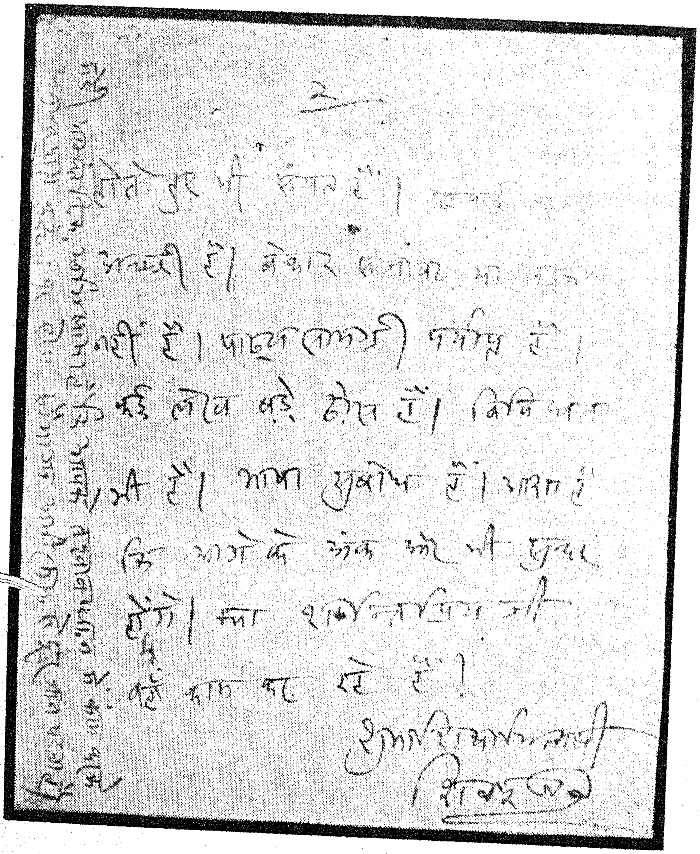


[illegible]

मान्यवर पंडितजी,

सादर सविनय प्रणाम।

मैं लगभग साढ़े तीन महीने बाद यहाँ आया तो आपका आदेशपत्र मिला — साहित्योपयोगी 'कमल' के लेख के लिए। मेरे जिम्मे के साहित्यिक कार्यों का काम बहुत दिनों से बाकी है, उनसे निवृत्त होते ही सेवा में लेख भेजूँगा। पत्रिका का प्रथमांक मिला है। आपके सम्पादकत्व में निकलनेवाली पत्रिका पर किसी की भी सम्मति की आवश्यकता नहीं, फिर मेरी क्या कथा। पत्रिका के सभी लेख बड़े विचारपूर्ण हैं। विचार क्रान्तिकारी



होते हुए भी सुन्दर हैं। [illegible]

अच्छी है। बेकार [illegible]

नहीं है। पाठ्यसामग्री पर्याप्त है।

कई लेख बड़े रोचक हैं। [illegible]

है। भाषा सुबोध है। आशा है

कि आगे के अंक और भी सुन्दर

होंगे। [illegible]

काम कर रहे हैं!

[illegible]

कि पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदिकी रचनाएँ पढ़ जाओ।

काशीके प्रसिद्ध साहित्यसेवी पण्डित विनोदशंकर व्यासने मेरे सम्पादकत्वमें साहित्यिक पाक्षिक 'जागरण' निकाला था। मैं आशीर्वादके लिए पराड़करजीके पास गया। प्रोत्साहनके हेतु 'आज' में टिप्पणी लिखनेके लिए भी निवेदन किया। उन्होंने बड़ी मिठासके साथ समझाया—'आज' में पत्र-परिचय छप सकता है, पर टिप्पणी लिखनेकी बात दो वर्षकी गतिविधि देख लेनेके बाद ही सोचूँगा। मैं सहम गया। मुझे कदराया देख उन्होंने ढाढस बँधाया—दूसरोंके प्रोत्साहनका आसरा छोड़कर अपने परिश्रमका भरोसा करो। जो सम्पादक अपने पत्रके लिए सम्मति माँगता फिरता है उसको लेखकी भीख भी नहीं मिलती और जो अपने बल-बूतेपर लगनसे पत्रको उपयोगी बनाता है, उसके पास अनायास लेख पहुँचते रहते हैं।

सन् १९३९ में जब पराड़करजीने महिलोपयोगी मासिक 'कमला' का सम्पादन प्रारम्भ किया तो श्री शिवपूजन सहायजीको पत्र लिखकर सहयोग माँगा। इसके उत्तरमें २४ अप्रैल, १९३९ को जो पत्र श्री शिवपूजनजीने भेजा वह इस प्रकार है—

परम पूज्य पण्डितजी,

सादर सविनय प्रणाम

मैं लगभग साढ़े तीन महीने बाद यहाँ आया तो आपका आदेश पत्र मिला—महिलोपयोगी 'कमला' के लेखके लिए। मेरे जिम्मेके साहित्य विभागका काम बहुत दिनोंसे जमा है, उससे निवृत्त होते ही सेवामें लेख भेजूँगा। पत्रिकाका प्रथमांक मिला है। आपके सम्पादकत्वमें निकलनेवाली पत्रिकापर किसीकी भी सम्मतिकी आवश्यकता नहीं, फिर मेरी क्या कथा! पत्रिकाके सभी लेख बड़े विचारपूर्ण हैं। विचार क्रान्तिकारी

होते हुए भी संयत हैं। छपाई बहुत ही अच्छी है। बेकार सजावट या तड़क-भड़क नहीं है। पाठ्य-सामग्री पर्याप्त है। कई लेख बड़े ठोस हैं। विविधता भी है। भाषा सुबोध है। आशा है कि आगेके अंक और भी सुन्दर होंगे।

मेरी आभ्यन्तरिक अभिलाषा है कि आपके तत्त्वावधानमें काम करके अनुभव प्राप्त करूँ, पर ऐसा सौभाग्य अभी मुझसे दूर जान पड़ता है।

शुभाशिषाभिलाषी—

शिवपूजन

यह पत्र पराड़करजीको २६ अप्रैलको मिला और उन्होंने उसी दिन उसका उत्तर शिवपूजनजीको दिया। उत्तरकी प्रतिलिपि तो प्राप्य नहीं परन्तु उक्त पत्र तथा संस्मरणके विभिन्न प्रसंगोंसे प्रकट है कि पराड़करजीने श्री शिवपूजनजीके साहित्यिक जीवनको प्रेरणा देकर उनपर प्रभाव डाला था और दोनोंका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ था।

डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी

डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी भी पराड़करजीकी लेखन-शैली तथा सम्पादकीय लेखोंकी युक्तियोंसे शुरूमें अत्यधिक प्रभावित हुए थे। युवावस्थामें आपको पराड़करजीकी लेखनीसे पर्याप्त प्रेरणा मिली थी। इस सम्बन्धमें स्वयं उनका कथन है—पराड़करजी भारतवर्षके गिने-चुने महान् पत्रकारोंमें-से थे। पिछले पैंतीस वर्षोंका इतिहास अनेक परिवर्तनों और उथल-पुथलका इतिहास रहा है। सच पूछा जाय तो पिछले पैंतीस वर्षोंका समय सच्चे अर्थोंमें तूफानोंके भीतरसे गुज़रा है। कई प्रकारके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनोंके देशव्यापी प्रभावसे देशवासी बार-बार प्रभावित होते रहे हैं। कई बार विचारशील लोगोंको हतबुद्धि होना पड़ा है। पराड़करजी इन्हीं तूफानी वर्षोंमें दृढ़ताके साथ अपने देशवासियों-

को ठीक रास्ता दिखानेके उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यमें लगे रहे। क्रूर और कठोर शासनकी तनी भृकुटियोंकी उन्होंने अवहेलना की, साम्प्रदायिक और धार्मिक मत्तताकी उन्होंने उपेक्षा की और समय आनेपर राष्ट्रीयताके आवेशमें गलत रास्ता पकड़नेवालोंकी भी उन्होंने परवाह नहीं की। उन्होंने अत्याचारका विरोध किया, अन्याय और दमनका डटके सामना किया, जो उचित जान पड़ा उसका संयत भाषामें, सुविचारित युक्तियों-द्वारा प्रेरणादायक शैलीमें समर्थन किया। एक बार उन्होंने स्त्रियोंके अधिकारपर धारावाहिक रूपसे लिखना शुरू किया। 'आज'की वह लेखमाला अद्भुत प्रेरणादायिनी थी। मैं उन दिनों युवक था और संस्कृतका पुराने ढंगका विद्यार्थी था। मुझे अच्छी तरह याद है कि उन लेखोंकी युक्तियोंसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ था। उन दिनों 'आज'के सम्पादकीय लेख मुझे बहुत प्रेरणा देते थे। मेरे जैसे सैकड़ों युवक होंगे जो उनसे प्रेरणा पा रहे थे।[1]

श्री जैनेन्द्रकुमार

साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमारका पराड़करजीसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पराड़करजीके नाम लिखे उनके अनेक पत्रोंसे विदित होता है कि साहित्य-रचनामें उन्हें पराड़करजीसे प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिला था। प्रेमचन्द स्मारकके सम्बन्धमें भी दोनों प्रयत्नशील थे। जैनेन्द्रने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'सुनीता'की संशोधित प्रति भेजकर पराड़करजीसे परामर्श लिया था। जैनेन्द्रजीके जो तीन पत्र यहाँ दिये जा रहे हैं उनसे तत्कालीन साहित्यिक गतिविधिका तो परिचय मिलता ही है, यह भी विदित होता है कि उन दिनों पराड़करजी हिन्दी साहित्यकारोंके कैसे प्रेरणा केन्द्र थे!

---

१. डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'आज' पराड़कर स्मृति अंक, पृष्ठ-६।

[१]

बम्बई
५–१–३७

मान्य पण्डितजी,

इतने दिन बिना खत लिखे रह गया। फैजपुरसे 'आज'के लिए एक पत्र भेजा था। छपा होगा। आगे लिखनेका सुभीता अब तक नहीं बना पाया। लेकिन जो लिखना है वह तो देर भी बर्दाश्त कर सकता है। इसीमें तसल्ली पा लेता हूँ। आकर या जल्दी ही लिखूँगा। फैजपुरमें जान पड़ा कि (प्रेमचन्द) स्मारकके विषयमें गान्धीजीसे बात कर लेना अच्छा होगा। वहाँ उन्हें लम्बी बातकी फ़ुर्सत कहाँ थी, इससे तय रहा कि वर्धा पहुँचूँ। ७ को उनसे मिल लूँगा। जो होगा लिखूँगा। वहाँसे फिर दिल्ली जाना होगा। कुछ ही देर दिल्ली ठहरकर बनारस पहुँचूँगा, ऐसी आशा है। आप अब बिलकुल स्वस्थ तो हैं न ? 'सुनीता' पर जो लिखना हो लिख दीजिए। मैं ठीक हूँ।

सप्रणाम—**जैनेन्द्र**

[२]

दरियागंज, दिल्ली
१३–१०–३८

मान्य श्री पराड़करजी,

'आज'का साप्ताहिक संस्करण निकलना आरम्भ हुआ, सुना है। अभी देखा नहीं है। उसे क्या आप मेरे नाम जारी करा दे सकेंगे ! बात यह है कि मैं किसी एक साप्ताहिकमें नियमित लिखना आरम्भ करना चाहता हूँ।

'सुनीता'की संशोधित प्रति जो आपके पास है, वह भी कृपया भिजवा देवें। आपको उसपर अपना अभिप्राय भी लिखना है जिसका कि मैं आपको स्मरण कराना चाहता हूँ। शेष विनय।

विनीत—**जैनेन्द्रकुमार**

[३]

७ दरियागंज, दिल्ली
१–७–३९

मान्य श्री पराड़करजी,

पत्र मिला। आपकी ओरसे मुझे पारिश्रमिकका बिलकुल खयाल नहीं है। न भी मिले या जो मिले। वह तो शान्तिप्रियजीने अपने पत्रमें उसका उल्लेख किया था सो जवाबमें कहना पड़ा। हाँ, वह लेख 'नवयुग'में छपा था और मैंने जान-बूझकर भेजा था। 'नवयुग'में छपना बेकाम था। इससे 'नवयुग'वाले अपने सभी यानी तीनों लेखोंको मैंने अपनी ओरसे मासिकोंमें भेजना आवश्यक समझा। एक आपको; एक 'विशाल भारत' और एक इस बार 'हंस'में। नया लेख भेजनेकी कोशिश करूँगा। सम्भव है, इन दो-एक दिनमें बनारस आपके दर्शन पा सकूँ। मेरा चित्त इधर बहुत ही उखड़ा रहा है। आपको अक़सर याद किया है। विशेष मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए।

आपका—**जैनेन्द्र**

श्री अनन्तशास्त्री फड़के

संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् तथा काशी संस्कृत विश्वविद्यालयके पुराण इतिहास विभागके अध्यक्ष पण्डित अनन्त शास्त्री फड़केको सन् १९२९ में हिन्दी लेखन तथा अध्ययनकी ओर प्रेरित करनेमें पराड़करजीने महत्त्वपूर्ण योग दिया था। यह किस प्रकार और किन परिस्थितियोंमें इसे शास्त्रीजीके शब्दोंमें सुनिए—मुझको सन् १९२० में प्रथम बार श्री बाबूरावजीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने मेरा परिचय प्राप्त किया और यह उपदेश दिया कि—'खूब पढ़िए और अपनी विद्याका महाराष्ट्रमें प्रचार कीजिए, यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो मुझसे मिलिए।' सन् १९२१ में जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने मुझसे कहा—'आप हिन्दीमें कुछ लिखनेका अभ्यास रखिए उससे आगे बड़ा लाभ होगा।' सन् १९३० में जब

मैं राजकीय संस्कृत महाविद्यालयमें नियुक्त हुआ तो मेरा प्रथम अभिनन्दन आपने ही किया और उपदेश दिया कि 'शास्त्रीजी, आपको उत्तरप्रदेशने पढ़ाया है एवं जीविका भी दी है तो उत्तरप्रदेशका आपके ऊपर ऋण है। अतः उस प्रदेशके लिए आपको कुछ करना चाहिए। बारम्बार उनकी ही प्रेरणासे मैं मराठी, हिन्दी एवं संस्कृतमें कुछ लिखने लगा। संस्कृतमें मैंने वेद-विषयक जो अनेक निबन्ध लिखे उनकी प्राथमिक प्रेरणा मुझको उनसे ही मिली। प्रत्येक निबन्ध मैं उनको देता था एवं तद्विषयक चर्चाके निमित्त एकादशीको वे बुलाते थे। 'प्रजापति वध' निबन्ध उनको बहुत जँचा एवं इस विषयमें उन्होंने अपना अभिप्राय इस प्रकार प्रकट किया—'वेद और पुराणोंकी आलोचनाका इसी प्रकार आपका क्रम जारी रहा तो आप उत्तर-प्रदेशके ऋणसे उऋण हो जायँगे।' इधर मैं अनेक बार बीच-बीचमें उनसे मिलता था। उनके मतोंका विरोध करनेपर भी न तो वे क्रुद्ध ही होते थे, न बुरा ही मानते थे। इधर चार-पाँच वर्षोंसे वे धर्मसूत्रोंका समालोचन करते थे। प्रायः जब मैं इधर उनसे मिलता था तो सूत्रके विषयमें ही विचार-विनिमय होता था। उनके पास जानेसे एक नयी विचार-शक्ति एवं विशिष्ट-चेतनाकी उपलब्धि होती थी।[१]

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

पराड़करजी साहित्य-निर्माणके कार्योंमें निरन्तर सहयोग देते थे और अपने युगकी अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक समस्याओंका समाधान कर उनके रचनात्मक विकासमें सहायक होते थे। भारतीय इतिहास परिषद्की योजनाको जिसके अध्यक्ष (अब राष्ट्रपति) डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी, प्रमुख सर यदुनाथ सरकार तथा मन्त्री श्री जयचन्द्र विद्यालंकार थे—अग्रसर करनेमें

---

१. 'आज' पराड़कर स्मृति अंक : २३ जनवरी, १९५५, पृष्ठ-संख्या—११।

उन्होंने उल्लेखनीय योग दिया था। भारतीय इतिहास-परिषद्के मन्त्री श्री जयचन्द्र विद्यालंकारके पराड़करजीके नाम लिखे पत्रोंसे विदित होता है कि भारतीय इतिहासके लेखनकी कैसी विशद योजना बनायी गयी थी और उसके कार्यारम्भका स्वरूप क्या था। श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकार काशी विद्यापीठमें अध्यापनके लिए नियुक्त हुए थे। बीचमें कारण-विशेषसे वे यहाँसे चले गये। मई, १९३९ में बाबू शिवप्रसादजी गुप्तने उन्हें पत्र लिखा कि क्या वे पुन: काशीविद्यापीठ आ सकते हैं। जयचन्द्रजीने इसी सम्बन्धमें पराड़करजीको पत्र लिखकर स्थिति स्पष्ट की तथा अपनी शर्तें रखी थीं। उनमें मुख्य बात यह थी कि इतिहास-परिषद्का कार्य करनेकी सुविधा रहे तथा इसमें विद्यापीठ सहयोग करे।

यह पत्र ३० जून, १९३९को बम्बईसे लिखा गया। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं—'अब हम कुछ आगे बढ़ चुके हैं। परसों सन्ध्याको राजेन्द्र बाबूने यहाँके कुछ सज्जनोंको बुलाकर परिषद्के लिए मदद माँगी थी और फलस्वरूप उसी समय हमें ३६०००) की सहायता मिल गयी जिसमेंसे ५०००) सेठ रामेश्वरदयाल बिड़लाने दिया है। बिड़लाजीकी प्रमुखतामें धन-संग्रहके लिए एक उपसमिति भी बना दी गयी है। भारतवर्षका जो इतिहास हम लिखवाना चाहते हैं उसकी २० जिल्दोंका पूरा खाका पिछली सर्दियोंमें तैयार हो चुका है। हमारा अन्दाज़ है कि वह काम कम-से-कम १२ वर्ष लेगा और हमें २५०००) वार्षिक खर्च करना होगा। सो हम ३ लाख रुपया जमा करना चाहते हैं जिसे १२ वर्षमें खर्च भी कर डालेंगे। ऐसे विषयोंमें निश्चित रूपसे तो कुछ कहा नहीं जा सकता तो भी हमें आशा है कि इस दिसम्बरके अन्ततक हम ५००००) तो जमा कर ही सकेंगे। हमें अब शीघ्र परिषद्की रजिस्ट्री करा डालना है और वैसा करनेसे पहले उसका केन्द्र निश्चित कर देना है। गत वर्ष मुझे टण्डनजीने कहा था कि यदि हम प्रयागमें केन्द्र रखें तो सम्मेलन संग्रहालय-भवनमें हम अपना पुस्तकालय रख सकेंगे और हिन्दी विद्यापीठकी इमारत हमारे कार्य-

कर्ताओंके रहनेको मिल सकेगी। यदि काशी विद्यापीठका सहयोग हमें न मिला तो हम शायद प्रयागमें ही केन्द्र रखें। × × × ये प्रस्ताव और प्रश्न मैं आपके सामने श्रद्धेय राजेन्द्र बाबूसे तथा हमारी समितिके दो और सदस्योंसे बातचीत करनेके बाद रख रहा हूँ। राजेन्द्र बाबूने परिषद्का काम उठानेसे पहिले ही बाबू शिवप्रसादजीसे सहयोग माँगा था। पर तबतक शायद क्रियात्मक सहयोगका समय न आया था। अब इस विषयमें उनसे और अन्य मित्रोंसे परामर्श करके शीघ्र सूचना देनेकी कृपा करेंगे। आशा है आप सकुशल हैं।

विनीत—**जयचन्द्र**

इसके पूर्व सन् १९३८में जब श्री जयचन्द्रजी काशी विद्यापीठमें थे तभी भारतीय इतिहास परिषद्के संघटन तथा इतिहास-लेखनकी योजनाके सम्बन्धमें उन्होंने पराड़करजीसे परामर्श माँगा था तथा काशी विद्यापीठसे भारतवर्षके प्रस्तावित इतिहासके प्रकाशनमें सहयोग चाहा था। इस सम्बन्धमें श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकारके निम्नलिखित पत्रोंसे अनेक तथ्योंका पता चलता है—

[१]

काशी विद्यापीठ,
बनारस
१८–११–३८

मान्यवर,

भारतीय इतिहास परिषद्की नियमावली तथा राष्ट्रीय दृष्टिसे भारतीय इतिहास लिखवानेकी सर यदुनाथकी योजना सेवामें भेजता हूँ। इन्हें आप देख लें तो उस विषयमें आगे बात करनेके लिए किसी दिन आऊँ।

मुम्बईके भारतीय विद्याभवनके उद्घाटनपर श्री मुंशीने जो भाषण दिया है उसकी प्रति भी भेजता हूँ। मुंशीने इतिहास-परिषद्का जैसा सहयोग माँगा है, वैसा ही काशी विद्यापीठ भी चाहता तो उसे मिल सकता।

सर यदुनाथवाली योजना और मुंशीका भाषण पढ़कर लौटानेकी कृपा कीजिएगा।

विनीत—**जयचन्द्र**

[२]

काशी विद्यापीठ,
२३-११-३८

मान्यवर,

कृपया सर यदुनाथका मेमोरेंडम और श्री मुंशीका भाषण लौटाइएगा, आज मेरी बाबू दामोदरदाससे भी बातें हुईं। विद्यापीठसे भारतवर्षका प्रस्तावित इतिहास प्रकाशित करानेके लिए विद्यापीठको क्या कुछ करना होगा, सो मैंने उन्हें बता दिया है।

मैं इस विषयपर एक नोट तैयार कर दूँगा, जो आपके भी काम आ सकेगा। फिर किसी दिन जब आपका स्वास्थ्य अच्छा हो, दर्शन करूँगा।

आपका—**जयचन्द्र**

ज्ञातव्य है कि आगे चलकर भारतीय इतिहास परिषद्का कार्य बाबू शिवप्रसादजी गुप्तकी सहायता तथा पराड़करजी आदिके सहयोगसे काशीमें अग्रसर हुआ और परिषद्का कार्यालय गुप्तजीके सेवा-उपवनमें रहा, जहाँ उसके मन्त्री श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकारने अनेक वर्षोंतक रहकर कार्य किया।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

सुप्रसिद्ध साहित्य समालोचक पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयीपर भी पराड़करजीके प्रेरणामय लेखोंका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। युवावस्थामें आपने पराड़करजीकी लेखन-शैली तथा उसके मार्मिक प्रभावसे स्फूर्ति ग्रहण की है। सन् १९४१ में आप 'आज'के सम्पादकीय विभागमें भी आनेवाले थे पर संयोगवश न आ सके। वाजपेयीजी प्रारम्भसे ही राष्ट्रीय विचारधाराके समर्थक तथा परिपोषक रहे हैं। एक बार जब कि उनकी

एक हिन्दूसभाई प्रमुखपत्रमें नियुक्तिकी बात पराड़करजीके माध्यमसे चल रही थी तो उन्होंने स्पष्ट लिखा कि उस पत्रमें उनका नाम किसी रूपमें न छपेगा। पराड़करजीके नाम लिखे उनके पत्रका कुछ अंश इस प्रकार है—

९–६–४१

संमान्य श्री पराड़करजी,

सादर प्रणाम। आपने श्री·······को मेरे सम्बन्धमें लिखा था, इस कृपाके लिए अनुगृहीत हूँ। उनका कृपापत्र मुझे मिला है जिसमें वे लिखते हैं···········। साथ ही मैंने यह प्रार्थना भी उनसे की है कि मेरे निजी विचार वही नहीं हैं जो '·······'के हैं, इसलिए जो कुछ मैं लिखूँगा, अपना नाम देकर न लिखूँगा। किसी भी हैसियतसे पत्रमें मेरा नाम न छपेगा। इन बातोंके सम्बन्धमें उनका उत्तर मिलनेपर मैंने काशी अथवा पटना जाकर उनसे मिलने और वार्तालाप करनेका निश्चय किया है।

आशा है आप मेरी शर्त्तोंके औचित्यको स्वीकार करेंगे। यदि आप इन्हें अनुचित न मानें तो कृपया·······को इस सम्बन्धमें लिखें। आपका लिखना बहुत उपयोगी और मेरे लिए हितकर होगा। 'आज'की नीति मेरे विचारोंसे बहुत मिलती-जुलती है। उसमें उपसम्पादकका काम करनेमें मुझे कुछ भी संकोच न होगा।

कृपया इस सम्बन्धमें ऐसी व्यवस्था करानेका प्रबन्ध करें जो मेरे लिए भी सन्तोषजनक हो और उन्हें भी अखरे नहीं, क्योंकि बिना दोनों पक्षोंका ध्यान रखे कोई भी काम सुचारु रूपसे नहीं चल सकता। मेरा विचार काशी आकर आपके दर्शन करने और मिलकर इस सम्बन्धमें निवेदनका था। आवश्यक कार्यवश रुक जाना पड़ा है। मैं शीघ्र ही आनेकी चेष्टा करूँगा। पत्र उसके पूर्व इसलिए लिख रहा हूँ कि इस विषयमें आप समय रहते यथोचित कार्यवाही कर सकें। कृपा तो आपकी है ही।

विनीत—**नन्ददुलारे वाजपेयी**

श्री मुकुटबिहारी वर्मा

दिल्लीसे प्रकाशित होनेवाले प्रसिद्ध दैनिक 'हिन्दुस्तान'के सम्पादक श्री मुकुटबिहारी वर्माने अपने पत्रकार जीवनके प्रारम्भमें तत्कालीन हिन्दी लेखकों एवं पत्रकारोंकी भाँति पराड़करजीसे प्रेरणा प्राप्त की थी। इस सम्बन्धमें वर्माजीका स्वयं कथन है—'पुण्यश्लोक बाबूराव विष्णु पराड़करके साथ या निर्देशनमें कार्य करनेका सौभाग्य तो मुझे नहीं हुआ, उनके दर्शन और सम्पर्कका सौभाग्य भी बहुत बादमें हुआ तथापि उनकी यशःकीर्तिसे मैं बहुत पहलेसे परिचित रहा हूँ और यह भी कह सकता हूँ कि अपने पत्रकार-जीवनमें उनसे मुझे प्रेरणा भी मिली है। यह सम्भवतः सन् '२३की बात है। जब नागपुरमें सुप्रसिद्ध झण्डा सत्याग्रह चल रहा था और मैं 'प्रणवीर'-में काम करते हुए 'आज'को चिट्ठियों द्वारा सत्याग्रहकी प्रवृत्तिका सिंहावलोकन भेजा करता था। उसी सिलसिलेमें मेरा पराड़करजीसे पत्र-व्यवहार हुआ और मैं कह सकता हूँ कि नया व्यक्ति सधे हुओंसे जिस तरहका व्यवहार और पत्र पाकर उत्फुल्ल हो सकता है उसीकी झाँकी मुझे उनके व्यवहार और पत्रमें मिली। वह स्मृति मेरे लिए आज भी बहुमूल्य है।

सन् २१ में 'आज' में शिक्षार्थीके रूपमें रहनेका सौभाग्य मुझे भी उपलब्ध हो चुका है परन्तु दुर्भाग्य कि उन दिनों पराड़करजी दफ्तर नहीं आते थे और घरसे ही उनके लेख या टिप्पणियाँ आया करती थीं जिससे मैं उनकी कार्यविधि आदिसे परिचित नहीं हो पाया। लेकिन भाई (अब स्वर्गीय) कालिका प्रसादजी आदिसे जो कुछ मालूम हुआ उससे पराड़कर-जीकी अध्ययनशीलता और योग्यताकी अच्छी छाप मुझपर पड़ी। वह हमें हमेशा प्रेरणा देते रहेंगे, इसमें मुझे कोई शक नहीं है।[1]

---

१. 'आज' पराड़कर स्मृति अंक, २३ जनवरी, १९५५, पृष्ठ संख्या—५।

इन विद्वानोंके अतिरिक्त भी अनेक हिन्दी साहित्यकारोंने पराड़करजीकी प्रेरणासे अपने साहित्यिक जीवनका प्रारम्भ 'आज' में लेखन अथवा स्वतन्त्र साहित्य रचना द्वारा किया, इसमें सन्देह नहीं।

साहित्य-निर्माण और प्रकाशनमें निर्देश

तत्कालीन साहित्यकार तथा प्रकाशक पराड़करजीसे साहित्य प्रकाशनमें परामर्श तथा पथ-प्रदर्शन माँगा करते थे। हिन्दी लेखक तथा नाटककार उनसे निर्देश लिया करते थे। निम्नलिखित कतिपय पत्रोंसे विदित होता है कि हिन्दी साहित्य-जगत्पर उनका कितना प्रभाव था। बाबू शिवप्रसाद गुप्तने ज्ञानमण्डलसे साहित्य-प्रकाशनकी एक योजना बनानेके निमित्त पराड़करजीको यह पत्र लिखा था—

२२ न्यू रोड, अलीपुर,
कलकत्ता

प्रिय पण्डितजी,

७ श्रावण, १९९०

सादर नमस्कार

× × × यह पत्र विशेष कार्यके लिए लिख रहा हूँ। श्रीहरिरामजी दिवेकरको मैंने रामदासजी गौड़की लिखी पुस्तक 'हिन्दुत्व' संशोधनके लिए दिया था। इसको आज प्रायः दो वर्ष हो रहे हैं। उन्होंने दो महीनेमें संशोधन करके पुस्तक लौटानेका वादा किया था। उन्हें लिखकर पुस्तकको मँगानेका कृपया यत्न कीजिए और आनेपर उसे तुरन्त छपवानेका भी प्रबन्ध कीजिए।

मैं चाहता हूँ कि पुस्तक प्रकाशन विभागकी ओर भी कुछ समय और अपना मन दीजिए। मैं चाहता हूँ कि ऐसी धार्मिक पुस्तकें जिनकी आवश्यकता है पर छपी नहीं हैं, वे छापी जायँ। कुछ ऐसी पुस्तकें भी जैसे तुलसीकृत रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता, पंचदशी इत्यादिका सुपाठ्य संस्करण उनकी भिन्न टीकाओंके सहित निकाला जाय। इससे प्रचार

के साथ लाभ होनेकी भी आशा है। इसकी एक व्यवस्था आप तैयार कीजिए।

भवदीय स्नेही—**शिवप्रसाद**

सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्लीके श्री मार्तण्ड उपाध्यायने ३० मई, १९४०को एक पत्र लिखकर पराड़करजीसे पुराणों, उपनिषदों, भागवत, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंसे चुने हुए कथानक, लोकसुलभ तथा रोचक भाषामें लिखवानेकी योजनामें उपयुक्त लेखकोंके नाम बताने तथा योजनाको कार्यान्वित करनेमें सहायताकी माँग की थी। उन्होंने पराड़करजीको अपने पत्रमें लिखा कि उक्त कार्यमें 'पथ-प्रदर्शन'की कृपा करें।

प्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्री भगवानदास केलाका निम्नलिखित पत्र भी पराड़करजीके साहित्यिक व्यक्तित्वका परिचायक है—

भारतीय ग्रन्थमाला,
प्रधान कार्यालय, वृन्दावन
१२–१२–२७

श्रीमान् महोदय !

आपको कुछ कष्ट दे रहा हूँ, उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। कई वर्षके बाद अब हालमें मेरी पुस्तक 'नागरिक शास्त्र' तैयार हुई है। उसके सम्बन्धमें मैं चाहता हूँ कि आप उसे एक बार देख लें और आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन कर दें; यदि कर सकें तो भूमिका भी लिख दें। आप यह स्वीकार करें तो मैं अगले महीनेमें, जिन तारीखोंको आपको सुविधा हो, पुस्तककी पाण्डुलिपि लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊँ। यदि आपके परामर्शसे लाभ उठा सका तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।

उत्तराभिलाषी—**भगवानदास केला**

श्री भगवानदासजी केला यथासमय पराड़करजीसे मिले और उन्हें पराड़करजीने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये थे। श्री केलाजीने 'नागरिक शास्त्र'के 'निवेदन'में लिखा है—'सन् १९२७ ई०में हमने कुछ विद्वानोंसे इस विषय-

पर विचार करनेके लिए एक साहित्यिक यात्रा भी की थी। श्री बाबूराव विष्णु पराड़करजीने बहुत असुविधा होते हुए भी अपना यथेष्ट समय इस कार्यके लिए प्रदान करनेकी कृपा की थी।"[1]

नाटककार श्री राधेश्याम कथावाचकने—जिनके नाटकोंकी एक समय देशमें प्रसिद्धि थी—पराड़करजीसे निर्देश माँगते हुए निवेदन किया था कि वे युवक साहित्यकारोंकी लेखन-नीतिपर नियन्त्रण करें। उनके पत्रसे बीसवीं शताब्दीके तृतीय दशकमें होनेवाली साहित्यिक आलोचनाके एक पक्षपर ज्ञातव्य प्रकाश पड़ता है। पूरा पत्र इस प्रकार है—

राधेश्याम भवन,
बरेली
७–११–१९२७

पं० राधेश्याम कथावाचक

श्रद्धेय पराड़करजी महाराज,

सादर प्रणाम। उस दिनके बाद फिर आपके दर्शन ही न कर सका। कार्यवशात् मुझे भी दो बार बरेली जाना पड़ा। अब कम्पनी कानपुर है और मैं बरेली।

वर्म्माजी (प्रवासीलाल वर्मा) का एक पत्र मुझे कल मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है कि 'रुक्मिणी मंगल पराड़करजी देख गये हैं और उन्होंने पसन्द किया है।' क्या यह सही है ? मैं केवल इसलिए, इस पत्रके उत्तरमें आपकी सम्मति चाहता हूँ कि आपको मैं गुरुभावसे मानता हूँ। इसीलिए आपकी सम्मति, सच्ची और आदरकी वस्तु मेरे लिए होगी।

सुमनजी, उग्रजी या रामदहिनजीकी रायें, एकरुखी थीं। न जाने यह मेरे भाई इतने रुष्ट क्यों हो गये ? एकरुखी रायें ज्यादा मूल्य नहीं रखतीं। इन रायोंमें जितना उचित है उसे मैं मानता हूँ और बाकी जो कीचड़ है उसके लिए मेरे पास कोई जवाब नहीं और न मैं बुरा ही मानता हूँ।

---

१. श्री भगवानदास केला : नागरिक शास्त्र : लेखकका निवेदन।

'सूर्य'में मशरिकी हूरके लिए कुछ नोट निकले हैं, जिनमें इस नाटकको 'आपत्तिजनक' बताकर सरकारका ध्यान इधर आकर्षित करानेको खुले शब्दोंमें लिखा है। हालाँकि मैं जानता हूँ यह नाटक जरा भी आपत्ति-जनक नहीं है क्योंकि मैं ही आपत्तिजनक आदमी नहीं हूँ। कानूनके अन्दर नाटक साहित्यकी सेवा करनेवाला एक तुच्छ सेवक हूँ। पर मेरे भाइयोंने तो मुझपर यहाँतक लेखनी चलाकर अपनी कृपाका पात्र बनाया है। आप ही कहिए, यह आलोचना है?

सच बात तो यह है पण्डितजी कि अंगरेज, मुसलमान, बंगाली, महा-राष्ट्रीय भी अपने यहाँ साहित्य बनाना जानते हैं, पर हम हिन्दीवाले नहीं जानते। वे अपने साहित्य-सेवीको प्रोत्साहन देते हैं, उसके उत्साहको बढ़ाकर उससे और अच्छी साहित्य-सेवा ले लेते हैं। इसीसे तो उनके यहाँ मौलिकता दिखाई देती है और हमारी हिन्दी इतने दिन बीत जानेपर भी अनुवादमात्र हो रही है। मैं अपनी ही बाबत नहीं कहता। देखता हूँ प्रेमचन्दजीके भी पीछे कुछ लोग पड़े हैं और सरस्वती आदिमें उनके उप-न्यासोंकी कुआलोचना कर रहे हैं। यह सब क्या है? काम करनेवालेका उत्साह भंग करना है न कि उससे अच्छा काम लेना। मैंने यह विचार जनरल प्रकट किया है। मेरे व्यक्तिगत सम्बन्धपर इसे कैफियत न दे दीजिएगा। मैं तो अपने लिए अत्यन्त छोटा सेवक समझता हुआ सेवा कर रहा हूँ, और करूँगा। कहना सिर्फ यह है कि आप सरीखे विद्वान् और हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ पत्रके सम्पादक हम नवयुवकोंकी लेखन नीतिपर कन्ट्रोल करेंगे तभी हम लोगोंका सुधार होगा।

मैं जानता हूँ कि आपपर समय बहुत कम रहता है और मेरा पत्र बड़ा लम्बा हो गया। इसलिए अब और न लिखकर यहीं समाप्त करता हूँ। कष्टके लिए क्षमा करें और आशीर्वाद देकर मुझे बलवान् बनायें।

आपका दास—**राधेश्याम**

• पराड़करजी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन

पराड़करजीने एक ओर पत्रकारिताके माध्यमसे हिन्दी साहित्यके निर्माणमें महान् योग दिया तो दूसरी ओर तत्कालीन साहित्यकारोंको निर्देश देकर, उनकी कृतियोंकी भूमिकाएँ लिखकर तथा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके महत्त्वपूर्ण कार्योंमें सक्रिय भाग लेकर स्वस्थ, सजीव एवं ज्ञानवर्द्धक साहित्य प्रणयनको प्रोत्साहन और प्रेरणा दी। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे आपका जो सम्बन्ध सन् १९२०के बादसे हुआ, वह जीवनके अन्त तक बना रहा। सन् १९२५से सन् १९४०तक तो पराड़करजी हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रमुख कर्णधारोंमें रहे। षोड़श हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन वृन्दावनमें नवम्बर, १९२५में हुआ। इसी वर्ष साहित्य सम्मेलनके अन्तर्गत सर्वप्रथम सम्पादक-सम्मेलन हुआ। पराड़करजी इस सम्मेलनके सभापति चुने गये। इस अवसरपर हिन्दी पत्रकारोंमें प्रसन्नताकी कैसी लहर फैली थी तथा उन लोगोंने पराड़करजीको जो बधाईके पत्र भेजे थे, उनका पहले उल्लेख हो चुका है। वृन्दावन साहित्य सम्मेलनमें ही पराड़करजीकी अध्यक्षतामें सर्वप्रथम सम्पादक-समिति संघटित हुई थी। इसी सम्पादक-समितिने हिन्दी सम्पादकों, पत्रकारों और पत्रकारिताका प्रारम्भिक संघटन एवं संवर्धन किया। पराड़करजीने हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी विभिन्न समस्याओंके समाधान तथा उसके प्रचार-प्रसारमें जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया था, सम्प्रति उनकी चर्चा यहाँ प्रसंगप्राप्त होगी। इसके अन्तर्गत जहाँ 'सम्मेलन'की तत्कालीन संघटनात्मक समस्याओंका वर्णन आवेगा, वहीं राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचारके विविध प्रश्नों-प्रयत्नोंपर भी नवीन प्रकाश पड़ता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके शिमला अधिवेशन (सत्ताईसवाँ, १९३८) के सभापति पराड़करजी चुने गये थे। इस पदसे अपने अभिभाषणमें आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी और देशकी अन्य भाषाओंकी उन्नतिके महत्त्वपूर्ण सुझाव

उपस्थित किये थे। उक्त भाषणमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार-प्रसार तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओंके सम्बन्धमें पराड़करजीके अनेक सुझाव इस समय भी मननीय तथा अनुकरणीय हैं। आपने जिस निर्भीकता तथा विद्वत्तापूर्वक हिन्दी-हिन्दुस्तानीके विवादसे राष्ट्रभाषा हिन्दीको पृथक्कर उसका युक्ति-संगत स्वाभाविक स्वरूप सुनिश्चित किया, उसका महान् प्रभाव महात्मा-गान्धी, राजेन्द्रबाबू, काका कालेलकर, पुरुषोत्तमदास टण्डन, सेठ जमनालाल बजाज आदि तत्कालीन कांग्रेसके कर्णधारों और देशमें हिन्दी भाषाका प्रचार करनेवाले प्रमुख राजनीतिज्ञों एवं साहित्यकारोंपर पड़ा था। यही कारण था कि पराड़करजीसे 'सम्मेलन'के सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर परामर्श लिया जाता था।

सन् १९२५से १९४५ ईस्वीतक वे सम्मेलनकी स्थायी समितिके सदस्य रहनेके अतिरिक्त उसकी समस्त विशेष समितियोंमें विशिष्ट रूपसे योग देते रहे। उक्त अवधिमें पराड़करजीको माननीय पुरुषोत्तमदास टण्डन, आचार्य काका कालेलकर, पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, स्वर्गीय आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, डॉक्टर बाबूराम सक्सेना, श्री शिवपूजन सहाय, श्री जैनेन्द्र कुमार आदिने समय-समयपर विविध प्रश्नों तथा समस्याओं सम्बन्धी अनेक पत्र लिखे। इनसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी तत्कालीन गतिविधि, राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार-प्रसार तथा तत्सम्बन्धी विचारधारा पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। ये महत्त्वपूर्ण पत्र घटना तथा तिथिक्रमसे यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

जाँच-कमीशनकी सदस्यता

सन् १९२८के मई महीनेमें हिन्दी-साहित्य सम्मेलन सम्बन्धी एक जटिल विवाद उपस्थित हुआ था। इस विवादसे एक ओर हिन्दीकी सर्व-प्रमुख संस्था 'साहित्य सम्मेलन' की अपकीर्ति हो रही थी और दूसरी ओर उसका कार्य भी एक प्रकारसे रुक-सा गया था। इस समस्याके सम्यक्

समाधानके लिए १ मई, १९२८को हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थायी समितिकी बैठकमें एक जाँच कमीशनका संघटन हुआ था। पराड़करजी इस कमीशनके सबसे वरिष्ठ सदस्य थे। जाँच-कमीशनके मन्त्री, आगराके श्री महेन्द्र (सम्पादक—साहित्य-सन्देश) थे। इस जाँच-कमीशनकी सदस्यता स्वीकार करनेके लिए जो पत्र पराड़करजीको लिखा गया वह इस प्रकार है—

कार्यालय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
जाँच कमीशन

श्री नागरी प्रचारिणी सभा,
आगरा
१५। ५। २८

माननीय महोदय,

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थायी समितिकी १३ मई, १९२८की बैठकमें यह तय हुआ है कि (१) 'आज' सम्पादक पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर (२) पण्डित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय (३) भारत सेवा समिति-के सदस्य पं० वेंकटेशनारायण तिवारी, एम० ए०, एम० एल०-सी० (४) विश्वमित्र-सम्पादक श्रीमूलचन्द्रजी अग्रवाल, बी० ए० और (५) सैनिक सम्पादक पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, एम० ए० का एक जाँच-कमीशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन सम्बन्धी विवादकी जाँच करके अपनी रिपोर्ट और सिफारिशें पेश करे। मुझे पूर्ण आशा तथा विश्वास है कि आप कमीशनकी सदस्यता स्वीकार करके स्थायी समितिके अनुरोधकी रक्षा करनेकी कृपा करेंगे। यह निश्चित है कि यदि आप अपना अमूल्य समय देकर इस विवादको निपटा देंगे तो राष्ट्रभाषा हिन्दीकी प्रमुख संस्था सम्मेलनकी कीर्ति-रक्षा होगी। उसका कार्य सुचारु रूपसे होता रहेगा और इसलिए समस्त हिन्दी संसार आपका आभारी होगा।

भवदीय—**महेन्द्र, मन्त्री**

इसी पत्रके साथ जाँच कमीशनके मन्त्री श्री महेन्द्रने उक्त कमीशनकी सदस्यता स्वीकार करनेको अनुरोध करते हुए लिखा···मैंने आपकी निष्पक्षता, उदारता, विद्वत्ता और हिन्दीके प्रति आपकी उत्कट सेवा और सहानुभूतिका लक्ष्य कर ही कमीशनमें आपका नाम रखवाया है। विश्वास करूँ कि आप सम्मेलनकी, मेरी और हिन्दी संसारकी सम्मान रक्षाके लिए इस अनुरोधको स्वीकार ही कर लेंगे। कृपाभिलाषी—**महेन्द्र**

मन्त्री, जाँच कमीशन

पराड़करजीने विशेष कारणोंसे इस कमीशनकी सदस्यता स्वीकार करनेमें असमर्थता प्रकट करते हुए जब महेन्द्रजीको पत्र भेजा तो उन्होंने पुनः अनुरोध तथा आग्रह करते हुए निम्नलिखित पत्र लिखा—आपका ३ ज्येष्ठ, १९८५ का कृपापत्र प्राप्त हुआ। उसके पूर्व ही मैंने 'आज' में संवाददाता द्वारा भेजे हुए समाचार और जाँच कमीशनपर आपकी टिप्पणी पढ़ ली थी। और उसे पढ़कर आपका कमीशनकी सदस्यतासे अस्वीकृति देना अस्वाभाविक नहीं है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने निश्चय-पर एकबार पुनः विचार करें और तब अपनी स्वीकृति देकर मुझे वाधित करें। सम्मेलनकी भीतरी दशा बहुत खराब है। इस समय टाल बतानेसे बहुत हानि होनेकी सम्भावना है। मन्त्रिमण्डलकी जाँच होनी आवश्यक है, उस जाँचमें आपका होना नितान्त आवश्यक है। आप यदि हाथ खीचेंगे तो मामला बिगड़ जायगा। समय तो जरूर आपका नष्ट होगा, पर हिन्दीकी एक भारी संस्थाका उससे बड़ा हित होगा। मैं विश्वास करता हूँ कि मेरे इस अनुरोधको कृपाकर स्वीकार कर लेंगे। एकबार देखिए तो सम्मेलनकी दशा इस आपसी विरोधके कारण कैसी बुरी हो रही है। विशेष क्या लिखूँ। मैं आपके पीछे ही सब कुछ होता देखता हूँ। आपने मेरा अनुरोध स्वीकार न किया तो काम बिगड़ जायगा। कृपाकर पुनः परिस्थितिपर विचार कर अपनी स्वीकृति देनेका कष्ट उठाइए।

भवदीय—**महेन्द्र**, मन्त्री

यह पहले ही बताया जा चुका है कि पराड़करजीका 'सम्मेलन' से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और वे लगातार बहुत वर्षों तक हिन्दी साहित्य-सम्मेलनकी स्थायी समितिके सदस्य रहे हैं। स्थायी समितिकी सदस्यता स्वीकार करनेका अनुरोध करते हुए ११ जून, १९३१ को सम्मेलनके प्रधान मन्त्रीने जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है—कलकत्ता हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके बीसवें अधिवेशनने आपको फिर स्थायी समितिका सदस्य चुना है। आशा है, आप पहिलेकी तरह इस बार भी इस पदको स्वीकार करके सम्मेलनको सहायता देंगे।

—रमाकान्त मालवीय

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें

पराड़करजी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके अट्ठाईसवें काशी अधिवेशनकी कार्य समितिके अध्यक्ष तथा स्वागत समितिके उपाध्यक्ष मनोनीत हुए थे। इस अधिवेशनमें आपके विशिष्ट योगदानका उल्लेख जीवनखण्डमें यथास्थान हो चुका है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके इस अधिवेशनमें सम्मेलनकी प्रचार समितिने एक आन्दोलन-समिति बनायी थी। इस समितिके संयोजक आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय बनाये गये थे। पराड़करजी भी इस समितिके सदस्य थे। इस समितिकी प्रथम बैठकमें पराड़करजी सम्मिलित न हो सके थे। सम्मेलनके प्रधान मन्त्री श्री बाबूराम सक्सेनाने ३–१२–१९९६ वि० (नवम्बर, १९३९) को पत्र लिखकर पराड़करजीको प्रथम बैठकके निर्णय विदित किये तथा उनका परामर्श माँगा। पत्र इस प्रकार है—२८ वें अधिवेशन काशीमें स्वीकृत निश्चयके अनुसार राष्ट्रभाषाके प्रचार और उसकी योजना आदिके सम्बन्धमें सम्मेलनकी नीति निर्धारित करनेके लिए जो समिति बनी थी उसकी प्रथम बैठक १२ नवम्बर, '३९ को हुई। समितिने निश्चय किया कि संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागरसे ऐसे शब्द चुन लिये जायँ जो सर्वसाधारण

व्यवहारमें प्रचलित हैं और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको आदेश किया जाय कि यथासम्भव इसी सूचीमेंसे अपना कार्य चलाये और इन्हीं शब्दोंके अन्तर्गत रीडरें आदि बनवाकर छपाये। यह शब्द-सूची तैयार हो गयी है और इसमें भारतीय भाषाओंके प्रायः ७००० शब्द और अभारतीय भाषाओंके १६५० शब्द हैं। यह सूची वर्धा भेजी गयी है और उनसे पूछा गया है कि यह उनके कामके लिए पर्याप्त होगी या नहीं। आपसे प्रार्थना है कि कृपाकर सूचना दें कि इस समितिका आपकी शुभ सम्मतिमें और क्या कर्त्तव्य है। आपका उत्तर आ जानेपर यदि आवश्यक हुआ तो समितिकी बैठक बुलायी जायगी।

भवदीय—**बाबूराम सक्सेना**
प्रधान मन्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके इसी काशी अधिवेशनके अवसरपर दरभंगा, बिहारके हिन्दी साहित्य संघने 'सम्मेलन'के २९ वें अधिवेशनको दरभंगामें करनेका निमन्त्रण दिया था। इस निमित्त काशी अधिवेशनमें सर्वश्री रामलोचन शरण 'बिहारी', छबिनाथ पाण्डेय, रामधारी प्रसादजी विशारद, रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी' तथा अन्य तीन साहित्यिकोंका मण्डल आया था। यह मण्डल पराड़करजीके नाम आचार्य शिवपूजन सहाय तथा श्री सत्य-नारायण सिंह (सम्प्रति भारतीय संसद्में कांग्रेस दलके सचेतक) के पत्र ले आया था। श्रीशिवपूजन सहायजीका पत्र इस प्रकार है—

'बालक' कार्यालय

लहेरिया सराय (बिहार),
११-१०-३९

पूज्य पण्डितजी,

सादर सविनय प्रणाम

दरभंगाकी जनता चाहती है कि आगामी वर्ष साहित्य-सम्मेलनका उनतीसवाँ अधिवेशन दरभंगा नगरमें ही हो। इसके लिए सर्वसम्मतिसे जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है वह भी सम्मेलनमें भेजा गया है और उस

प्रस्तावका समर्थक शिष्टमण्डल भी जा रहा है। विश्वास है आप बिहारकी श्रद्धा और लालसाको सफल होनेका अवसर देंगे। सम्मेलनका समारोह होनेसे उस जागृतिमें बड़ी सहायता मिलेगी। आपसे प्रोत्साहनकी आशा है। मेरा बड़ा लड़का कालाजारसे पीड़ित है, मैं सम्मेलनमें काशी न पहुँच सका—मेरा दुर्भाग्य !

आपका कृपास्नेहाकांक्षी—**शिवपूजन**

हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका उनतीसवाँ अधिवेशन राष्ट्र-भाषा प्रचारके विशेष कारणोंसे पूनामें होना स्वीकृत हुआ, इसलिए दरभंगाका आमन्त्रण स्वीकार न हो सका। एक समय था जब पराड़करजी हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके कर्णधारोंमें प्रमुख माने जाते थे। हिन्दीके प्रचार-प्रसारकी योजनाओंमें आपका हाथ मुख्य रहता था। इस प्रसंगमें स्वर्गीय आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल तथा प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमारके निम्न-लिखित पत्र द्रष्टव्य हैं—

दुर्गाकुण्ड, काशी
२८–२–३९

प्रिय पराड़करजी,

नमस्कार

मेरे छोटे भाई पं० हरिश्चन्द्र शुक्ल आपके पास जाते हैं। ये हिन्दी प्रचारका कार्य करना चाहते हैं। यह कार्य शायद काका कालेलकर-जीके हाथमें है। यदि आप कृपया एक पत्र उनके नाम दे दें तो शायद इन्हें कोई जगह मिल जाय। कष्टके लिए क्षमा चाहता हूँ।

भवदीय—**रामचन्द्रशुक्ल**

जैनेन्द्रजीने अपने पत्रमें हिन्दी साहित्य परिषद्‌के संघटनपर बल देते हुए साहित्यिकोंकी समितिकी स्थापनाकी आवश्यकता बतायी है—

दरियागंज, दिल्ली
१३।१०।३८

मान्य श्री पराड़करजी,

१६ अक्तूबरको आप सम्मेलनकी स्थायी समिति बनाते थे। आप उसके लिए जानेको उद्यत ही होंगे। मेरा खयाल है कि इस मीटिंगमें

साहित्य परिषद्की योजना प्रस्तुत करनेके लिए कुछ व्यक्तियोंकी समिति बना दी जावेगी। उसके कामके लिए कुछ द्रव्य जैसे २००) भी अलग सौंप दिया जाना चाहिए। जिन पाँच नामोंके सम्बन्धमें आप कहते थे, आरम्भमें वे ही हो सकते हैं। उन्हें अपनेमें और सदस्य लेनेका अधिकार हो सकता है। धीरेन्द्रजीको संयोजक बनाया जा सकता है। इस सम्बन्धमें आप तत्पर हों तभी कुछ होगा। साहित्यिक बहुतसे प्रश्नका निपटारा माँगते हैं और हिन्दीकी एक साहित्य परिषद् अनिवार्यता ही है। कृपया प्रयागसे स्थायी समितिकी मीटिंग होते ही सूचना दीजिएगा कि क्या किया जा सका।

विनीत—**जैनेन्द्रकुमार**

पूना साहित्य सम्मेलन

सन् १९४० में पूनामें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अधिवेशनके आमन्त्रणकी स्वीकृतिके बाद वहाँके साहित्यकारोंमें मतभेद हो गया। इस मतभेदको दूर करनेके लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी कार्यसमितिने ५ मई, १९४०की बैठकमें समझौतेका प्रयत्न करनेके लिए तीन सदस्योंकी एक उपसमिति नियुक्त की। इस उपसमितिमें पराड़करजी भी थे। इस सम्बन्धमें सम्मेलनके सहायक मन्त्री श्रीनारायणदत्त पाण्डेयने पराड़करजीको जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार है—

सौर २८-१-१९९७

महोदय,

कार्य-समितिकी २२ वैशाख '९७, ५ मईकी बैठकके अनुसार पूनेमें समझौतेका प्रयत्न करनेके लिए तीन सदस्योंकी एक उपसमिति नियुक्त हुई है जिसमें आप भी हैं। शेष दो सदस्य श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा श्री पुरुषोत्तमदास टंडन (संयोजक) हैं। उपसमितिको समझौतेका उद्योग कर कार्य-समितिके समक्ष अपनी रिपोर्ट उपस्थित करनेका भार सौंपा गया है।

विनीत—**नारायणदत्त पांडेय**

पूना सम्मेलनके लिए पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीने पण्डित अमरनाथ झाके सभापतित्वका प्रस्ताव किया था। इस सम्बन्धमें वे पराड़करजीका भी सहयोग चाहते थे। इस सम्बन्धमें उनका पत्र यों है—

१०२, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता

प्रिय बाबूरावजी, २३।२।४०

सप्रेम नमस्कार। बहुत दिनोंसे आपका कोई समाचार नहीं मिला। आशा है आप प्रसन्न होंगे। सम्मेलनका अगला अधिवेशन पूनेमें होगा। हिन्दीकी प्रतिष्ठाके लिए यह आवश्यक है कि इस बारके सम्मेलनका सभापतित्व ऐसे सज्जनको दिया जाय जिसे महाराष्ट्रके लोग भी जानते हों। हमारे विचारसे इस समय प्रोफेसर अमरनाथ झासे बढ़कर हमें कोई न मिलेगा। हमने 'विश्वमित्र' द्वारा उनके सभापतित्वका प्रस्ताव भी किया है। झाजी प्रयाग विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर, हिन्दीके लेखक और कांग्रेसी हिन्दुस्तानीके विरोधी हैं। इसके साथ ही वे प्रयागमें ही रहते हैं, इसलिए सम्मेलनके आफिसका काम और भी अच्छा होगा। यदि आप भी हमसे सहमत हों, तो 'आज'में इसका समर्थन करें और अपनी सम्मति भी इन्हींके लिए लिख भेजें। हिन्दुस्तानीके पक्षपाती कुछ दबे तो हैं, पर इतनेसे ही काम न चलेगा। उन्हें और दबाना आवश्यक है।

भवदीय—**अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी**

श्री अमरनाथ झा उस वर्ष तो नहीं, हाँ, एक वर्ष बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलनके तीसवें अबोहर सम्मेलनमें सभापति चुने गये।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके उनतीसवें पूना अधिवेशनके सभापति श्री सम्पूर्णानन्दजी निर्वाचित हुए थे। इस सम्बन्धमें पराड़करजीके पत्रका उत्तर देते हुए सम्मेलनके प्रधान मन्त्री श्री बाबूराम सक्सेनाने उन्हें उपसमितिके कार्यारम्भका भी स्मरण कराया है—२६–१–९७ का कृपापत्र मिला। श्री सम्पूर्णानन्दजीके निर्वाचित होनेकी खबर श्री टंडनजीकी अनुमतिसे

सम्पादकाचार्य वाजपेयीका पत्र

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी　　श्रीः　　१०२, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट

कलकत्ता, २४/२ १९४०

प्रिय बाबूरावजी,

सप्रेम नमस्कार। बहुत दिनोंसे आपका कोई समाचार नहीं मिला। आशा है आप प्रसन्न होंगे।

सम्मेलनका अगला अधिवेशन पूनेमें होगा। हिन्दीकी प्रतिष्ठाके लिये यह आवश्यक है कि इस बारके सम्मेलनका सभापतित्व ऐसे सज्जनको दिया जाय जिसे महाराष्ट्रके लोग भी जानते हों। हमारे विचारसे इस समय श्री अमरनाथ झासे बढ़कर हमें कोई न मिलेगा। हमने विज्ञप्ति द्वारा उनके सभापतित्वका प्रस्ताव भी किया है। झाजी प्रयागके विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सेलर, हिन्दीके लेखक और कांग्रेसी हिन्दुस्तानीके विरोधी हैं। इसके साथ ही वे प्रयागमें ही रहते हैं, इस लिये सम्मेलनके आफिसका काम और भी अच्छा होगा। यदि आप भी इससे सहमत हों, तो 'आज' में इसका समर्थन करें और अपनी सम्मति भी इनके लिये लिख भेजें। हिन्दुस्तानीके पक्षपाती कुछ इधर तो हैं, पर इनसे ही दाल न गलेगा उन्हें और भी रोकना आवश्यक है।

शिक्षा विस्तार आदिके लेख आपके यहां कोई आर्टिकल आया या नहीं? श्रीनारायणजी हमसे कहते थे कि जनवरीके अन्तमें भेज देंगे और फरवरी भी आ गया, पर अबतक कुछ समाचार नहीं मिला।

विशेष कृपा।

भवदीय,

अं० वाजपेयी

असोशियेटेड प्रेसके प्रतिनिधिको दे दी थी और वहींसे सब जगह छपी होगी। श्री सम्पूर्णानन्दजीको भी मैंने पत्र लिख दिया है। आपने जो विवरण 'आज' में दिया है, वह परिपूर्ण है। कार्य-समितिने जो उपसमिति बनायी है उसे शीघ्र ही कार्य कर देना चाहिए। हिन्दी संसार इस प्रतीक्षासे ऊब उठा है।

आपका—**बाबूराम सक्सेना**

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सेवा कार्य करनेमें पराड़करजीको केवल प्रशंसा ही नहीं मिलती, अनेक बार कटु आलोचनाका व्यंग बाण भी सहन करना पड़ता था। इससे वे तनिक विचलित न होते और अपने सिद्धान्त-पर अटल रहते। ऐसे ही एक प्रसंगका विवरण 'वीणा'-सम्पादक कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'के निम्नलिखित पत्रमें है जिसका उत्तर भी पराड़करजीने स्पष्ट एवं दृढ़ शब्दोंमें दिया था। श्री दीक्षितके पत्रमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रश्नों, विशेषतः समझौता समितिमें पराड़करजी-के रहनेका उल्लेख है। पत्र इस प्रकार है—

इन्दौर,

के० पी० दीक्षित 'कुसुमाकर' वीणा ८-५-४०

श्रीमान् श्रद्धेय पराड़करजी,

कुछ समय पूर्व हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सिलसिलेमें मैंने आपको पत्र लिखा था। खेद है कि आपने उस पत्रका उत्तर भी नहीं दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके एक भूतपूर्व सभापति द्वारा हिन्दी सेवकोंकी यह उपेक्षा समझमें नहीं आती। मैं नहीं समझता कि आप पत्रोत्तरकी शिष्टतासे भी क्यों विमुख हैं। क्या आपपर पूँजीपतित्व-वातावरण सवार है। आपने सम्मेलनके सम्बन्धमें 'आज'में जो कुछ लिखा है, वह बिलकुल गलत और बिना समझे-बूझे लिखा है। आपने आँख मूँदकर काका साहबका समर्थन किया है। हमें यह जान कर और भी आश्चर्य हुआ कि आप उस

कमेटीके सदस्य चुने गये हैं जो दोनों दलोंमें समझौता करानेकी कोशिश करेगी। आप एक पक्षको पहले ही दोषी ठहरा चुके हैं, इसलिए आपको इस कमेटीका सदस्य रहनेका कोई अधिकार नहीं। आप इससे शीघ्र ही त्यागपत्र दें नहीं तो पत्रोंमें व्यर्थ आपके खिलाफ लिखना होगा। हिन्दीके कितने ही साहित्यकार आपकी इस सबल-प्रशंसक नीतिके विरुद्ध हैं। 'उग्र'जी आपसे भली-भाँति परिचित हैं, वे आजकल यहीं हैं और आपकी इस नीतिकी घोर निन्दा करते हैं। खेद है कि आप ऐसा प्रथम श्रेणीका पत्रकार इस प्रकारकी ठकुरसुहातीमें उलझता है। आपने इसी प्रकार एक बार प्रकाशकोंको सम्पादकोंका दामाद बना कर हेय और दब्बू मनोवृत्तिका परिचय दिया था।

आशा है, अब आप शीघ्र उत्तर देंगे। 'वीणा'के आगामी अंकमें हमें इन बातोंपर प्रकाश डालना है। आपलोग भाषणोंमें कुछ कहते हैं और भीतर-भीतर उन लोगोंकी चापलूसी करते हैं जो सम्मेलनको दलबन्दीका अखाड़ा बनाना चाहते हैं।

भवदीय—**के० पी० दीक्षित**

पराड़करजीने उक्त पत्रका जो उत्तर दिया उसकी प्रतिलिपि उनके पत्र-व्यवहारके बण्डलमें है।

'आज'

'आज' कार्यालय, बनारस

प्रिय महोदय, मि० ३० वैशाख, १९९७

नमस्कार। आपका ८-५-४० का कृपापत्र मिला। आपने एक और पत्रका जिक्र किया है। वह भी मिला ही होगा। पर मुझे स्मरण नहीं है।

आपने मुझे जो शिक्षा दी है, उसके लिए कृतज्ञ हूँ। पर मैं जो कुछ करता हूँ अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार ही करता हूँ। आप जैसे मित्रोंकी आज्ञा शिरोधार्य होनी चाहिए पर सार्वजनिक क्षेत्रमें यह सम्भव नहीं होता। क्षमा कीजिएगा।

रही पत्रोत्तरकी बात। यह मेरा पुराना दोष है। मैं लाचार हुए बिना पत्रोत्तर नहीं देता। सामर्थ्यके बाहरकी बात है।

आप मुझपर कड़ी-से-कड़ी टीका कर सकते हैं और अवश्य करना चाहिए, यदि मेरे किसी कार्य वा व्यवहारको आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन अथवा किसी भी सार्वजनिक कार्यके लिए हानिकारक समझें। श्री उग्रजी-को सप्रेम नमस्कार। कृपा बनी रहे।

भवदीय—बा० वि० पराड़कर

काका कालेलकरका पत्र

पूनामें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अधिवेशनके प्रश्नको लेकर उस समय बड़ा मतभेद उत्पन्न हो गया था। पराड़करजीने २१ अप्रैल, १९४०के 'आज' में 'साहित्य सम्मेलन निमन्त्रण' शीर्षक टिप्पणी लिखी। इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुए आचार्य काका कालेलकरने पराड़करजीको जो पत्र लिखा, वह उस समयके सम्मेलन सम्बन्धी विविध विवादोंपर प्रकाश डालता हुआ पूना अधिवेशन विषयक मतभेदको भी स्पष्ट करता है—

वर्धा,

प्रिय बाबूरावजी, २२।४।४०

तारीख २१ अप्रैलके 'आज'में 'साहित्य सम्मेलनका निमन्त्रण' शीर्षक जो टिप्पणी है वह मैंने पढ़ ली। मैंने ए० पी० को जो निवेदन दिया उसमें संक्षेपमें कारण दिया है।

मैं मतभेदसे न कभी डरा हूँ न अस्वस्थ हुआ हूँ। हिन्दीके प्रेमियोंमें मैं भी हूँ। राष्ट्रभाषाके और हिन्दीके साहित्य-स्वरूपके बारेमें जो भिन्न पक्ष है उनके बारेमें मेरे मनमें हार्दिक और सच्चा आदर है। शिमलेमें[1]

---

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्षीय अभिभाषणमें।

आपने भी अपना मतभेद स्पष्ट कर दिया था। डाक्टर धीरेन्द्र वर्माने तो हम पर चढ़ाई की थी। किन्तु उससे मुझे तनिक भी बुरा न लगा। डाक्टर धीरेन्द्र वर्माकी हिन्दी-भक्तिके कारण मेरे मनमें उनके प्रति आदर बढ़ता ही है। मैं हिन्दीका अहोभाग्य समझता हूँ कि धीरेन्द्र वर्मा, बाबूरामजी सक्सेना और अमरनाथ झा जैसे जागरूक सेवक उसे मिले हैं। मैं जो हिन्दी लिखता हूँ उसके बारेमें हिन्दीवालोंको शिकायत है कि उसमें संस्कृत शब्द अधिक आते हैं। अबोहरवाले दीपककारतक यह शिकायत करते हैं कि अगर हिन्दीका अध्ययन करनेकी फुरसत मुझे मिलती तो मैं अवश्य मुहावरेदार हिन्दी लिखता। लेकिन 'वह दिन कहाँ जब मियाँके पाँवमें जूती।' शुद्ध हिन्दीके पक्षपातियोंके साथ आजतक सहयोग करता आया हूँ और आयन्दा भी करूँगा।

साहित्यिक कार्यमें मैं राजनीतिक दलवन्दीका ख़याल नहीं करता हूँ। मेरे साहित्यिक मित्र सब पक्षोंमें हैं। किन्तु जब मैंने देखा कि महाराष्ट्रमें सम्मेलनको बुलानेसे वह दलबन्दीके दलदलमें डूब जायेगा तब उसे बचानेके लिए ही मैंने अपना आमन्त्रण वापिस खींच लिया। मैं हिन्दू हूँ। आतिथ्यको परम धर्म मानता हूँ। अपनी जान और बच्चोंका सिर देकर भी आतिथ्य धर्मका पालन करना हमारा धर्म है। यह मैं जानता हूँ और रखता भी हूँ। किन्तु आमन्त्रण देकर सम्मेलनको खतरेमें डालना मेरा धर्म नहीं था। हिन्दुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें जो बात आजतक नहीं हुई है, उसे करते मेरे हृदयमें कितनी वेदना होती होगी उसका ख़याल करनेवाले कुछ तो हिन्दी-प्रेमी ज़रूर होंगे। किन्तु समाज-सेवककी स्थिति हमेशा विषम होती है।

श्री बाला साहेब खेर महाराष्ट्रके एक प्रमुख सेवक हैं। इतना ही नहीं, किन्तु अत्यन्त निर्मल पवित्र पुरुष हैं। उन्होंने स्वागताध्यक्षका कार्यभार स्वीकार किया था। यह हिन्दीके लिए असाधारण सौभाग्यकी बात थी। किन्तु विघ्नसन्तोषी लोगोंको यह बात पसन्द नहीं आयी। अगर वोट

और मेजारिटीसे ही काम लेना है और शालीनताको भूल जाना है तो मेरे सरीखे सेवकके लिए उसमें कोई स्थान नहीं है।

पूनामें जो-जो घटनाएँ हुई और जो चर्चाएँ चलती हैं उनका जिक्र करके मैं चर्चा शुरू नहीं करना चाहता। मैं सम्मेलनका अत्यन्त नम्र सेवक हूँ और सम्मेलनको न डूबने देनेके लिए ही मैंने पूर्ण विचार करके निमन्त्रण वापिस ले लिया। सम्मेलन मुझसे चाहे जो सेवा ले सकता है।

भवदीय—**काका कालेलकर**

इस पत्रसे आचार्य काका कालेलकरकी हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रति हार्दिक निष्ठाके साथ ही विदित होता है कि उन्होंने विवश हो पूना सम्मेलनका निमन्त्रण वापस लेनेका निश्चय किया था। पर सम्मेलनका उनतीसवाँ अधिवेशन पूनामें ही श्री सम्पूर्णानन्दजीकी अध्यक्षतामें हुआ। जैसा पहले उल्लेख हो चुका है, पूनेमें समझौता करानेके लिए एक उपसमिति संघटित की गयी। पराड़करजी इसके सदस्य थे और श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन संयोजक। इन दोनों महानुभावोंने इस कार्यमें आचार्य काका कालेलकरका सहयोग लिया। इस सम्बन्धमें हुए प्रयत्नोंपर टण्डनजी तथा काका कालेलकरके पत्रोंसे सम्यक् प्रकाश पड़ता है।

१० क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद
८ ज्येष्ठ '९७
२२–५–४०

प्रिय पराड़करजी,

नमस्कार

आपका ६ ज्येष्ठका पत्र अभी लखनऊसे यहाँ पहुँचनेपर मिला। 'आज'में मैंने कल ही लखनऊमें अपना छपा हुआ पत्र और आपकी सम्पादकीय टिप्पणी देख ली थी।

अगले सम्मेलनके सम्बन्धमें काकाजीका पत्र पुणेसे आया था। पुणेमें वह कुछ दिन रहनेवाले हैं। उन्होंने लिखा था कि वह सम्मेलन सम्बन्धी वायुमण्डल ठीक करनेका यत्न करेंगे। मैंने उनसे पूछा है कि यदि हम

लोगोंके वर्धा या पुणे आनेकी आवश्यकता हो तो तुरन्त लिखें। उनके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

सस्नेह—**पुरुषोत्तमदास टण्डन**

दैनिक पत्रके प्रधान सम्पादककी व्यस्तता टंडनजी भलीभाँति जानते थे। इसलिए जब सम्मेलनकी कार्यसमितिमें कोई बहुत महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय रहता तो पत्र लिखकर उनका ध्यान आकृष्ट किया जाता तथा बैठकमें अवश्य उपस्थित होनेका आग्रह किया जाता।

[१]

स्पीकर भवन,
लखनऊ

प्रिय पराड़करजी,

२८–६–४०

सम्मेलनकी अगली कार्यसमिति २ जुलाईको हो रही है। उसमें आगामी सम्मेलनके बारेमें हम लोगोंको अपने विचार रखने हैं।

मैंने अपनी ओरसे जो रिपोर्ट लिखी है उसकी एक प्रति आपके पास भेजता हूँ। आप भी इसपर अपनी स्वीकृति और यदि कुछ अधिक लिखना चाहें तो लिखकर तुरन्त सम्मेलनके मन्त्रीके पास सीधे भेज दीजिए जिससे २ जुलाईके पहले ही उनके हाथमें पहुँच जाय।

यह अधिक अच्छा होगा कि आप २ जुलाईको कार्यसमितिकी बैठकमें स्वयं आ जायँ। मैं यहाँसे कल या परसों इलाहाबाद चला जाऊँगा।

सस्नेह—**पुरुषोत्तमदास टण्डन**

[२]

प्रिय पराड़करजी,

१०–१०–४०

अगले रविवार, १३ तारीखको सम्मेलनकी स्थायी समितिकी एक बैठक है। उसमें जिस अद्भुत प्रस्तावपर विचार करना है वह आपने पढ़ लिया होगा। मेरा अनुमान है कि आपने आनेका विचार किया

होगा । सम्मेलनके भविष्यकी दृष्टिसे इस बैठकमें आपकी उपस्थितिकी बहुत आवश्यकता है । विश्वास है आपसे १३ तारीखको भेंट होगी ।

सप्रेम—**पुरुषोत्तमदास टण्डन**

अस्वस्थताके कारण पराड़करजी पूना-सम्मेलनमें सम्मिलित नहीं हो सके । इस सम्मेलनके सम्बन्धमें काका कालेलकरने जो पत्र पराड़करजीको लिखा वह हिन्दी साहित्य सम्मेलनके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण है । आचार्य काका कालेलकरने ६–१–४१ के अपने पत्रमें लिखा—

पूना सम्मेलनमें जो कुछ होना था वही हुआ । गान्धीजीकी राष्ट्रभाषाकी जो व्याख्या है और उसकी जो परम्परा है, उसको इस सम्मेलनमें पूर्ण विफलता मिली । इसका व्यावहारिक परिणाम जो होना चाहिए वह तो होगा ही परन्तु आध्यात्मिक परिणाम सम्मेलन और हिन्दीके लिए बाधक होगा । आज चार वर्षोंसे टण्डनजीसे कह रहा हूँ कि राष्ट्रभाषा समितिको स्थायी एवं स्वतन्त्र कीजिए किन्तु उनके मस्तिष्कमें यह बात नहीं आयी । आप यदि पूनामें उपस्थित रहते तो अधिक अच्छा रहता । राजेन्द्र बाबू भी अनुपस्थित ही रहे । मैंने भी हमेशा तटस्थ रहनेकी नीति अपनायी । राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें चार-पाँच वर्षोंसे जो टण्डनजी कहते थे वही कर रहा हूँ । मैंने केवल व्याख्या परिवर्तनके समय विरुद्ध मत दिया था । पूना सम्मेलनमें हिन्दी एक कदम पीछे हटी और अन्तमें सम्मेलनमें स्फूर्ति नहीं रही ।

आपका—**काका कालेलकर**

शिमला साहित्य-सम्मेलनके भाषणकी विशेषताएँ

पराड़करजीका हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके शिमला अधिवेशनपर किया गया अध्यक्षीय अभिभाषण ऐतिहासिक तथा स्थायी साहित्यिक महत्त्वका है । हिन्दी साहित्यके इतिहास तथा उसके विकास-क्रम दोनों ही दृष्टियोंसे, आजसे बाईस वर्ष पूर्व राष्ट्रभाषाके भावी स्वरूपका ऐसा सटीक अंकन तथा

यथार्थ महत्त्वमापन, उनकी साहित्य सम्बन्धी महान् दूरदर्शीदृष्टिका परिचायक है। आपने राष्ट्रभाषा हिन्दीकी जो परिभाषा की, उससे हिन्दी 'हिन्दुस्तानी' होते-होते बच गयी। सन् १९३८ में शिमला हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर जैसी विचारधारा चल रही थी और कांग्रेसके शीर्षस्थ नेताओंका जैसा दबाव पड़ रहा था, उससे लोगोंको आशंका हो चली थी कि राष्ट्र-भाषाका स्वरूप अब विकृत होकर रहेगा; किन्तु पराड़करजीने जिस विद्वत्ता, तर्क-प्रणाली तथा तथ्य-विवेचनसे हिन्दी भाषाके प्रकृत स्वरूपका निर्धारण एवं प्रतिपादन किया, वह ऐतिहासिक महत्त्वका है। आपने बड़ी दृढ़ता और निर्भीकतासे मौलाना आज़ादकी अरबी-फ़ारसीसे-भरी 'हिन्दुस्तानी'को सर्व-प्रान्तीय भाषा बनानेका विरोध किया। राजनीतिक दबावके कारण ही 'हिन्दुस्तानी'का प्रचार हो रहा है, यह स्पष्ट शब्दोंमें घोषित करते हुए आपने इसे भाषाके साथ भारतीय संस्कृतिकी भी हत्याकी संज्ञा दी और निर्भीकतापूर्वक कहा—'साहित्य-सम्मेलनको चाहिए कि कांग्रेसके कर्णधारोंका ध्यान इस ओर दिलाकर राष्ट्रभाषाके नामपर होनेवाले इस अकाण्ड ताण्डव-को समय रहते रोकनेकी प्रार्थना नम्रता पर दृढ़तासे करें। हिन्दुस्तानीके नामपर जो अनर्थ हो रहा है उससे केवल हिन्दीकी ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृतिकी रक्षाके लिए भी मैं कहता हूँ कि हमारी राष्ट्रभाषाका नाम हिन्दी होना चाहिए और उसकी प्रवृत्ति भी हिन्दी यानी हिन्दकी होनी चाहिए।' इस प्रकार स्पष्ट है कि पराड़करजीने अरबी-फ़ारसीसे भरी 'हिन्दुस्तानी' भाषाका प्रबल विरोध किया और हिमालयसे कन्याकुमारी तक सर्वत्र अल्पाधिक परिमाणमें बोली या समझी जानेवाली तथा अल्प आयासमें सीखी जा सकनेवाली हिन्दीका समर्थन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि शिमला-सम्मेलनमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके स्वरूपका स्पष्टीकरण तथा स्थिरीकरण दोनों हो गया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी ही क्यों हो, इसका वैज्ञानिक तथा तर्कसंगत विवेचन करते हुए पराड़करजीने अपने इस अभिभाषणमें उन आधारतत्त्वोंको भी

उल्लेख किया है, जिनके कारण हिन्दीके सिवा, अन्य कोई भाषा, राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। आपका स्पष्ट कथन है कि हिन्दीका अर्थ है—हिन्दकी भाषा। यह सारे देशकी भाषा है। इसमें प्रान्तीय अभिमान बिलकुल नहीं है, जो बात अन्य भाषाओंके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती। यही नहीं, हिन्दीमें प्रान्तीय अभावके साथ-साथ इसमें अन्य प्रान्तोंके सम्बन्ध-में अवज्ञासूचक कोई शब्द भी नहीं है, यह भी इसकी राष्ट्रीयताका एक प्रमाण है। इसके लेखकोंका लक्ष्य हिन्द होता है कोई प्रान्त विशेष नहीं। हिन्दी, राष्ट्रके लिए, राष्ट्रके मुँहसे बोलती है क्योंकि वह राष्ट्रकी भाषा है। इसके साथ ही आपने यह भी स्पष्ट कर दिया कि हिन्दीके राष्ट्रभाषा बननेका यह अर्थ कदापि नहीं कि अन्य भाषा-भाषी अपनी-अपनी मातृ-भाषाओंका त्याग करके हिन्दीको अपनायें। आज अनेक क्षेत्रोंसे हिन्दी बलपूर्वक लादनेका जो नारा लगाया जा रहा है उसकी आशंका बाईस वर्ष पूर्व ही पराड़करजीने कर ली थी। प्रान्तीय भाषाओंकी उन्नति तथा विकास-की कामना करते हुए आपका कथन है—'राष्ट्रीयताका अनुरोध केवल इतना ही है कि सारे राष्ट्रकी एक भाषा हो जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके सज्जन परस्पर सम्बन्ध स्थापन करें, विचारोंका आदान-प्रदान करें तथा सर्व-प्रान्तीय कार्य इसीके द्वारा करें। यदि हम एक राष्ट्र होना चाहते हैं, संसारमें अपना गौरव-मण्डित पद ग्रहण करना चाहते हैं तो हमारा—भारत-सन्तानमात्रका कर्त्तव्य है कि यह हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेमें यथा-शक्ति सहयोग करें।'[1]

नागरी लिपिकी वैधानिकता तथा उसके प्रसार-प्रचारमें पूरी शक्ति लगानेपर बल देते हुए पराड़करजीका दृढ़ मत रहा है कि नागरी भारतकी राष्ट्र-लिपि है। यही हमारी सांस्कृतिक लिपि भी है। आज यही बात

१. पराड़करजीके शिमला हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके अध्यक्षीय भाषणसे।

भारतके राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, प्रधानमन्त्री नेहरूजी आदि प्रतिपादित कर रहे हैं। राष्ट्रपतिका कथन है कि समस्त देशमें नागरी-लिपि अपनायी जाय तथा देशकी समग्र भाषाएँ देवनागरीमें लिखी जायें। भारतीय संस्कृति-की मंजूषा, संस्कृत भाषा भी नागरी लिपिमें ही लिखी जाती है। इस कारण दक्षिणके लोगोंको भी इसे ग्रहण करनेमें कोई कठिनाई न होनी चाहिए। नागरी लिपिके सम्बन्धमें पराड़करजीकी ये मान्यताएँ रही हैं—(१) नागरी वर्णमालाके समान सर्वांगपूर्ण और वैज्ञानिक वर्णमालाका अभी तक आविष्कार नहीं हुआ। (२) वर्णोंका उद्देश्य ध्वनिका शुद्ध उच्चारण हो तो संसारकी कोई वर्णमाला नागरीका हाथ नहीं पकड़ सकती। (३) इस वर्णमालामें प्रत्येक ध्वनिके लिए अलग वर्ण हैं और प्रत्येक वर्णकी एक ही ध्वनि है। जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है और जो पढ़ा जाता है वही लिखा हुआ होता है। (४) यह बात न फारसी वर्णमालामें है और न रोमनमें। (५) रोमन लिपिका विरोध इसलिए आवश्यक है कि उसमें लिखा कुछ जाता है—पढ़ा कुछ और। (६) भारतकी सब भाषाएँ नागरी लिपिमें लिखी और पढ़ी जानी चाहिए। सम्प्रति जब नागरी-लिपिको राष्ट्रलिपिके रूपमें व्यवहृत एवं प्रयोगमें लानेका आन्दो-लन चल रहा हो। बाईस वर्ष पूर्व पराड़करजीके उक्त निष्कर्ष कितने दूरदर्शी तथा मूल्यवान् हैं, यह सरलतासे समझा जा सकता है। इसी प्रसंगमें आपका यह कथन भी द्रष्टव्य है—"नागरी जैसी सर्वांगपूर्ण और पूर्ण वैज्ञानिक लिपिका त्याग सर्वथा अनुचित होगा। इससे मानव जाति एक वैज्ञानिक लिपिसे वंचित होगी और भावी पीढ़ियाँ हमारी मूर्खतापर हँसेगी—धिक्कार देंगी।"

नागरी लिपिके राष्ट्रव्यापी प्रचारके साथ ही उसके सुधारके प्रश्नका भी गहरा सम्बन्ध है, यह पराड़करजी स्वीकार करते थे। वर्णमालाको सर्वांगपूर्ण तथा उसके क्रमको वैज्ञानिक मानते हुए वे लिपि-सुधारकी दो दृष्टियाँ हमारे सम्मुख रखते हैं-(१) उच्चारण सम्बन्धी और (२) छपाई सम्बन्धी। हिन्दीकी

दृष्टिसे जहाँ तक उच्चारणका सम्बन्ध है किसी विशेष सुधारकी आवश्यकता नहीं। कारण हमारी भाषाकी सब ध्वनियोंके प्रतीक वर्ण नागरीमें हैं। अन्य भाषाओंकी दृष्टिसे विचार करनेपर आपका मत रहा है कि हम अन्य भाषाओंके शब्दोंको अपनावें पर उन शब्दोंका उच्चारण हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप बनाकर। विदेशी भाषाओंके शब्दोंको हम अपने वाग्यन्त्र-में डालकर अपना-सा बना लें तो हिन्दीमें विदेशी और हमारे लिए अस्वा-भाविक ध्वनियोंके लिए असंख्य चिह्न बनानेकी आवश्यकता न होगी। यदि ऐसे शब्दोंको अपना-सा न बना सके तो उसका प्रचार ही न होगा और हमारी भाषाको अजीर्ण रोग हो जायगा। पराड़करजीने इस बातपर अनेक बार बल दिया है कि भारतकी सब भाषाएँ नागरी लिपिमें लिखी और छापी जायँ। अन्य भाषाओंकी दृष्टिसे नागरी लिपिमें सुधारके प्रश्न-पर पराड़करजीका अभिमत है कि आर्य भाषाओंकी सभी ध्वनियाँ नागरीमें हैं। मराठी नागरीमें ही लिखी और छापी जाती है। गुजरात और बंगाल-की वर्णमालाएँ भी परिवर्तित नागरी वर्णमाला ही हैं। द्राविणी भाषाओंमें ऐसी ध्वनियाँ और स्वर हैं, जिनके चिह्न नागरीमें बनाने पड़ेंगे। विदेशी भाषाओंके लेखनके निमित्त भी नागरीमें अनेक नये अक्षरों एवं चिह्नोंकी आवश्यकता होगी। रोमन लिपि जैसे विभिन्न भाषाओंके बोधक चिह्न हिन्दीमें भी बनाये जा सकते हैं पर सभीके लिए अनिवार्य न होने चाहिए। छपाईकी दृष्टिसे भी नागरी लिपिमें सुधार अत्यन्त आवश्यक हैं, ऐसा पराड़करजीका मत है। नागराक्षरोंमें ऊपर-नीचे लगनेवाली मात्राएँ—सबसे बड़ी बाधा हैं। सम्प्रति स्थिति इस प्रकार है—(१) ऊपर-नीचे मात्राओंके लिए स्थान छूटा रहता है। (२) ऊपर 'करन'—जिसमें ऊपरकी मात्राके लिए स्थान छूटा रहता है पर नीचेका भरा रहता है। (३) नीचे 'करन'—ऊपरका भरा और नीचेका खाली और (४) ऊपर-नीचे सब खाली। कम्पोजके समय मात्राएँ बैठा दी जाती हैं। इस प्रकार छपाईके अक्षरोंकी संख्या एक हज़ारसे भी अधिक हो जाती है। इस सम्बन्धमें

आपका यह सुझाव रहा है कि स्वरोंकी जो मात्राएँ ऊपर-नीचे लगायी जाती हैं वे व्यञ्जनोंके बाद उसी तरह लगायी जायँ जैसे आकार और विसर्ग लगाया जाता है तथा एकार और ऐकार पहले लगाये जायँ। सभी स्वर व्यञ्जनके बाद लगाये जायँ। यह सुधार हो जाय तो आपका अनुमान था कि छपाईके कार्यमें दो-तिहाई कठिनाई दूर हो जाय और खर्चमें भी एक चौथाईकी बचत हो।

इस प्रकार पराड़करजीने शिमला साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्षीय भाषणमें जितने प्रश्न उठाये थे और उनके समाधानकी जिन दिशाओंका संकेत किया था, उनमें-से अधिकांश कल तक और आज भी हमारी राष्ट्र-भाषा और हिन्दी साहित्यके ज्वलन्त प्रश्न रहे हैं। नागरी लिपिका राष्ट्र-व्यापी प्रयोग, लिपि सुधारकी चर्चा एवं प्रयत्न, हिन्दीमें विभिन्न भाषाओंके शब्द लेनेका सिद्धान्त, राष्ट्रभाषा हिन्दीके व्यापक प्रचार-प्रसार, तथा हिन्दीमें उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके लेखन-प्रणयन हमारी आजकी महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं। पराड़करजीने एक महान् साहित्यकारकी भाँति इनपर आजसे बाईस वर्ष पूर्व विचार किया था और उनके निराकरणके जो महत्त्वपूर्ण सूत्र दिये थे, वे वर्तमानमें भी बड़े सहायक सिद्ध हो सकते हैं। हिन्दी, हिन्दुस्तानीकी जो समस्या थी, वह समाप्त हो चुकी है। हिन्दीके राष्ट्रभाषा बनाये जानेका भी संकल्प देशकी संविधान सभामें एकमतसे लिया जा चुका है। बाईस वर्ष पूर्व पराड़करजीने हिन्दी भाषा तथा साहित्यके उज्ज्वल भविष्य-का जो अटल विश्वास प्रकट किया था, वह स्वप्न आज साकार हो चुका है। जो प्रश्न शेष रह गये हैं, उनके समाधानकी दिशाका संकेत भी उनके भाषणमें मिलता है।

• गीताको टीका

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन तथा संग्राममें गीताका विशिष्ट महत्त्व है। क्रान्तिकारी आन्दोलनमें भी गीताने देशको नवीन प्रेरणा दी। बीसवीं

शताब्दीके प्रारम्भमें राष्ट्रीयताकी भावनाका स्वरूपबोध बिना 'गीता' के सम्भव न था। पराड़करजीने अपने जीवनके संस्मरण सुनाते हुए बताया था कि स्वदेशी भावनाके उन दिनोंमें गीताका अध्ययन और अरविन्दके व्याख्यान आवश्यक समझे जाते थे। यही कारण था कि स्वयं पराड़करजी-ने गीताका सरल अनुवाद टीका सहित कर, देशमें एक नयी जागर्ति फैलानेकी परम्परामें महान् कार्य किया। तत्कालीन विचारधारामें, गीता देशभक्तोंकी प्रबल प्रेरणाका आधार थी और इसमें निहित था देशको स्वतन्त्र करनेके मार्गका निर्देश! पराड़करजी द्वारा प्रस्तुत गीताकी टीका उस समय बहुत प्रसिद्ध हुई और अनेक स्थानोंसे इसके संस्करण प्रकाशित हुए। आपकी लिखी स्पष्ट एवं सारयुक्त टीकाके अतिरिक्त गीताका सरल एवं बोधगम्य शैलीमें अनुवाद द्रष्टव्य है। गीतापर आपकी लिखी टीका, कलकत्तेकी साहित्य संवर्द्धिनी समिति द्वारा प्रकाशित हुई थी। उस गीताके मुख्यपृष्ठपर भारतमाताका चित्र था, जिनके एक हाथमें गीता और दूसरे हाथमें नंगी तलवार थी।[1] जब आप क्रान्तिकारी कार्योंके सिलसिलेमें गिरफ़्तार किये गये, उसी समयसे वह गीता भी अदृश्य कर दी गयी।

'आज' कार्यालयमें पराड़करजीके टेबुलकी दराज़में जो कागज-पत्र मिले हैं, उनमें एक श्रीमद्भगवद्गीताकी प्रति भी है। इस गीताकी टीका तथा भाषानुवाद भी आपका ही किया हुआ है। गीताके गूढ़ार्थोंको सरल एवं बोधगम्य शैलीमें स्पष्ट करनेवाला यह भाषानुवाद वस्तुतः पठनीय है। इसके प्रकाशक हाथरसके रायबहादुर सेठ चिरंजीलाल बागला थे। यह गीता टीका सन् १९२४ में प्रकाशित हुई थी। इसके मुखपृष्ठपर सारथी रूपमें श्रीकृष्ण तथा रथमें बैठे गाण्डीवधारी अर्जुनका चित्र मुद्रित है। इसकी पृष्ठ संख्या २१६ है। इसके प्रारम्भमें हाथरसके श्री मधुसूदन

१. श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार : 'आज' पराड़कर स्मृति अंक।

शास्त्रीके 'निवेदन' में (कार्तिक कृष्ण १०, १९८१ वि०) उल्लिखित है कि साहित्यरत्न पण्डित विश्वनाथजी सारस्वतके परामर्शसे पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करजीके सरल भाषामें किये गीता अनुवादको प्रकाशित किया गया। पराड़करजीकी इस गीता टीका तथा अनुवादके कुछ उदाहरणोंका उल्लेख उसकी विशेषता तथा विशिष्टतापर स्वयं प्रकाश डालेगा। इसके पूर्व पराड़करजीकी गीता टीकाके एक और संस्करणकी चर्चा कर लेना आवश्यक है।

गीताकी यह टीका तथा भाषानुवाद, 'गंगा पुस्तकमाला' लखनऊसे श्री दुलारेलाल भार्गवने प्रकाशित किया था। यह बड़े आकार तथा सुन्दर रूपमें मुद्रित हुआ था। इस सम्बन्धमें श्री दुलारेलालजीने पराड़करजीको जो पत्र भेजा था, वह इस प्रकार है—

प्रिय पूज्य पराड़करजी,

आपकी लिखित गीताकी टीकाको हम बड़े साइजमें और सुन्दर रूपमें छाप रहे हैं। यदि आप उसमें कुछ संशोधन करना चाहें तो शीघ्र सूचित करें। पुस्तकके पहिले फर्मेका प्रूफ हम शीघ्र आपकी सेवामें भेजेंगे। आशा है, आप सानन्द होंगे। योग्य सेवा लिखें।

भवदीय कृपाभिलाषी—**दुलारेलाल भार्गव**

पराड़करजी द्वारा गीताका अनुवाद अत्यन्त प्रभावोत्पादक और गूढ़ार्थको सरल शब्दोंमें उपस्थित करता है। इससे संस्कृत भाषाका ज्ञान न रखनेवाले भी गीताके मूल तथा महत्त्वपूर्ण भावों, स्थितियों तथा सिद्धान्तोंसे परिचित होते हैं। हाथरससे प्रकाशित पराड़करजीकी अनूदित श्रीमद्भगवद्गीताकी कतिपय विशेष टिप्पणियाँ तथा अनुवादके उदाहरण इस प्रकार हैं—

प्रथम अध्याय—इस अध्यायके छत्तीसवें श्लोकमें आततायीके प्रकार तथा उसके सम्बन्धमें नीतिशास्त्रका निर्देश द्रष्टव्य है—आततायी छः

प्रकारके होते हैं—(१) आग लगानेवाला, (२) विष देनेवाला, (३) शस्त्र लेकर मारनेको आनेवाला, (४) धनहरण करनेवाला, (५) भूमिहरण करनेवाला और (६) स्त्री हरण करनेवाला। नीति है कि आततायीको देखते ही मार डालना चाहिए।

द्वितीय अध्याय—इस अध्यायके ३२ वें श्लोकमें अर्जुनको क्षात्र धर्मका स्वरूप समझाते हुए श्री कृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन, यह युद्ध क्या है मानो **आपही-आप खुला हुआ स्वर्गका द्वार है**। ऐसा मौका जिस क्षत्रियको मिलता है, वही भाग्यशाली है। 'आप ही आप खुला हुआ स्वर्ग द्वार रूप युद्ध' का भावार्थ यह है कि तुमको अपने दोष वा अत्याचारके कारण लड़ना नहीं पड़ रहा है, पर तुम्हारी इच्छा न रहते हुए भी, दूसरेके अत्याचारसे आत्मरक्षा करनेके लिए तुम लड़नेको बाध्य हुए हो, इस दशामें अर्थात् आत्मरक्षाके लिए—परपीड़नके लिए नहीं—युद्ध करना क्षत्रियका धर्म है, इससे उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। भावार्थकी पाद टिप्पणीमें इस श्लोकका डाक्टर एनीवेसेण्टका अंगरेजी अनुवाद भी दिया गया है।[1]

पराड़करजी अपने अग्रलेखोंमें गीताके द्वितीय अध्यायके निम्नलिखित श्लोकको प्रायः उद्धृत करते अथवा इसका आशय अपने शब्दोंमें प्रतिपादित करते थे:—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय सभी अवस्थाओंमें समभाव धारण कर कर्त्तव्य-पथपर अविचलित चलनेका गीताका उपदेश पराड़करजीने

---

१. **'हैपी दि क्षत्रियाज ओ पार्थ, हू औवटेन सच ए फाइट आफर्ड अनसाट एज एन ओपन डोर टू हेवन'**

निरन्तर 'आज'के माध्यमसे देशके सम्मुख रखा। इसी अध्यायका एक और श्लोक आप बराबर अपने अग्रलेखोंमें उद्धृत करते थे। वह यह है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

आशय यह कि कर्म्म करो, कर्म्मफलकी आशा मत करो। कर्म्मफलको ही कर्म्म करनेका कारण मत बनाओ और निकम्मे भी मत रहो।

निम्न श्लोककी टिप्पणी द्रष्टव्य है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

सब जीव जिसे रात समझते हैं; उसी समय संयमी पुरुष जागता रहता है; और जिस समय साधारण जीव जागते हैं वही ज्ञान-नेत्र मुनिकी रात है। अर्थात् जो ब्रह्मनिष्ठा साधारण जीवोंके लिए रात-सी है, उसीमें जितेन्द्रिय योगी जागते हैं; और जिस विषय-वासना रूप दिनमें समस्त प्राणी जागते हैं, आत्मतत्त्वदर्शी योगीके लिए वही रात है। साधारण प्राणियोंके लिए ब्रह्मनिष्ठा अन्धकार-सी है, पर जितेन्द्रिय योगियोंके लिए वही प्रकाश है, विषय-निष्ठा सर्वप्राणियोंके लिए प्रकाश है पर तत्त्वदर्शी योगियोंके लिए वही अन्धकार है।

तृतीय अध्यायका यह श्लोक तथा उसकी टिप्पणी देखिए—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

आशय यह कि, श्रेष्ठ पुरुष जो कुछ करता है वही और लोग भी करने लगते हैं; श्रेष्ठ जिसे उत्तम समझता है और लोग भी उसे ही उत्तम समझते हैं।

टिप्पणी—इसलिए बड़े आदमियोंको खूब सोच-समझकर काम करना चाहिए और आचरण शुद्ध रखना चाहिए, क्योंकि समाज उनका ही अनु-

सरण करता है। सामान्य पुरुषके कर्मका फल उसको ही भोगना पड़ता है, पर श्रेष्ठ पुरुषोंके कर्मका फल समाजको भी भोगना पड़ता है। बड़ोंको अपना यह दायित्व कभी न भूलना चाहिए।

चतुर्थ अध्यायमें प्राणायामकी कुम्भक विधि सम्बन्धी श्लोक, उसका भावार्थ तथा टिप्पणी इस प्रकार है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

अपानवायु और प्राणवायुकी गति बन्द कर प्राणायाम करनेवाले पुरुष अपानवायुमें प्राणवायुका और प्राणवायुमें अपानवायुका हवन करते हैं।

टिप्पणी—अपानवायुमें प्राणवायु मिलानेको 'पूरक' और प्राणवायुमें अपानवायु मिलनेको 'रेचक' विधि कहते हैं। प्राण और अपान, नीचे जानेवाले और ऊपर आनेवाले—दोनों प्रकारके वायुकी गति रोककर, प्राणोंकी क्रिया सर्वथा रोककर, प्राणायाम किया जाता है; इसे 'कुम्भक' विधि कहते हैं।

पाँचवें अध्यायमें कर्मकी प्रेरक शक्तिका परिचय है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

परमात्मा किसी मनुष्यका न कर्तृत्व (मैं कर्त्ता—करनेवाला—हूँ यह भाव) ही बनाता है न कर्म्म और न वह कर्त्ताको कर्मका फल देनेकी व्यवस्था ही करता है; यह सब माया करती है।

टिप्पणी—नित्य, शुद्ध और निर्विकार ब्रह्म न किसीमें यह अभिमान ही उत्पन्न करता है कि 'मैं कर्म करनेवाला हूँ' न वह किसीसे कर्म करनेको कहता है, अथवा न किसीको कर्मफल देता है, ये सब बखेड़े मायाके हैं।

तेरहवें अध्यायके प्रथम श्लोकमें 'क्षेत्र' तथा 'क्षेत्रज्ञ'की यह परिभाषा द्रष्टव्य है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ।।

हे केशव, मैं जानना चाहता हूँ कि प्रकृति और पुरुष; क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ज्ञान तथा ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य किन्हें कहते हैं ।

टिप्पणी—क्षेत्र शब्दका अर्थ अच्छी तरह समझे बिना अगला भाग समझना कठिन है। शंकराचार्यने क्षेत्रकी व्याख्या इस प्रकार की है :— **"क्षतत्राणात्क्षयात्क्षरणात्क्षेत्रवद्वास्मिन्कर्म्मनिर्वृत्तेः क्षेत्रमिति ।"** अर्थात् (१) क्षतसे (नाशसे) अज्ञानरूपनाशसे (जीवकी) रक्षा करनेवाला, (२) जिसका क्षय अर्थात् नाश होता है—क्षण-भंगुर, (३) जिसका सतत क्षरण होता है अर्थात् जो बराबर घिस रहा है, बीज बोनेसे जैसे उसका फल क्षेत्र वा खेतमें होता है उसी प्रकार भले-बुरे कर्मकी फलोत्पत्ति जिसमें होती है, वह देह । इसको जाननेवाला 'क्षेत्रज्ञ' । खेत, भूमि आदि शब्दोंसे इतने अर्थ व्यक्त नहीं हो सकते इसलिए टीकामें भी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ शब्दों-का ही प्रयोग किया गया है ।

पन्द्रहवें अध्यायके इस श्लोकका भावार्थ और टीका देखें—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।।

संसार अश्वत्थ (बड़) है; इसकी पुराण पुरुषरूप जड़ ऊपर है, चराचर रूप इसकी शाखाएँ नीचे लटक रही हैं, वेद इसके पत्ते हैं, यह जो जानता है वही वेदोंका जाननेवाला है ।

टिप्पणी—'अ' अर्थात् नहीं, 'श्वस्' अर्थात् 'कल, और 'स्था' रहना जो कल रहेगा या नहीं, यह भी अनिश्चित है । यह 'अश्वत्थ' शब्दका शब्दार्थ है । इसकी उपमा संसारको दी गयी है, यह बहुत ही ठीक है क्योंकि संसार वस्तु 'अश्वत्थ' अर्थात् अशाश्वत है ।

अन्तमें गीताके अठारहवें अध्यायके अठारहवें श्लोकका अर्थ एवं टिप्पणी देखिए—

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥

कार्य करनेकी प्रवृत्तिके लिए इन तीन बातोंकी आवश्यकता है—(१) ज्ञान, (२) ज्ञानका विषय अर्थात् ज्ञेय और (३) ज्ञाता अर्थात् जाननेवाला। कार्यके भाग भी तीन हैं—(१) साधन, (२) कर्म और (३) करने वाला।

टिप्पणी—मनुष्य जो इष्ट पदार्थ सिद्ध करना चाहता है उसे 'ज्ञेय' कहते हैं। "ज्ञेय अमुक उपायसे साध्य होगा"—मनका यह निश्चय 'ज्ञान' कहलाता है, और जिसके मनमें यह 'ज्ञान' उत्पन्न होता है वह 'परिज्ञाता' कहलाता है। कर्मकी प्रवृत्तिके लिए 'ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता' इन तीन कारणोंकी आवश्यकता है। इन कारणोंके उपस्थित हो जानेपर कर्म करनेके लिए भी तीन प्रकारके आश्रयोंकी आवश्यकता है। (१) कहनेवाला अर्थात् कर्त्ता, (२) कर्म—कर्त्ताकी क्रिया करनेकी इच्छाका भी पारिभाषिक शब्द कर्म है और (३) कर्म करनेके इन्द्रियादि साधन। सारांश यह कि ऊपर कहे हुए तीन प्रकारके कारणों और तीन प्रकारके आश्रयोंके बिना कोई कार्य नहीं होता।

• देशकी बात

'देशकी बात' पराड़करजीकी प्रसिद्ध पुस्तक है जिससे बीसवीं शताब्दीके आरम्भिक दशकोंमें महान् जागर्ति तथा राष्ट्रीयताकी भावनाका प्रचार-प्रसार हुआ था। यह पुस्तक उनके गुरु तथा मामा श्री सखाराम गणेश देउस्करजीकी प्रख्यात बंगला रचना 'देशेर कथा'का हिन्दी अनुवाद है। 'देशकी बात' थी तो 'देशेर कथा'का अनुवाद किन्तु पराड़करजीकी लेखनीने तो इसमें मौलिक कृति जैसा चमत्कार उत्पन्न कर दिया था। देउस्करजी अपने समयके बंगला भाषा तथा साहित्यके श्रेष्ठतम साहित्यकारोंमें माने जाते थे। वे बंगालके 'तिलक' कहे जाते थे। तत्कालीन बंगला साहित्यके

आचार्य स्पष्ट रूपसे यह स्वीकार करते थे कि जितनी सेवा बंगला भाषाकी अपने समयमें देउस्करजीने की थी उतनी बिरले ही बंगीय भाषा-भाषीने की होगी।[1] देशेर कथा उनकी क्रान्तिकारी पुस्तक थी और इसी कारण सरकारने इसे जब्त कर लिया था। पराड़करजीने जब इसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया तो इसे भी भारत सरकारने जब्त कर लिया। इसका उल्लेख आचार्य नरेन्द्रदेवजीने पराड़करजीके निधनके समय इस प्रकार किया था—'देउस्करजी बंगलाके बहुत अच्छे लेखक समझे जाते थे। 'देशेर कथा' उन्हींकी रचना थी जो सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी थी। इसका हिन्दी अनुवाद पराड़करजीने किया था। यह पुस्तक भी जब्त कर ली गयी थी। जब मैं प्रयागमें पढ़ता था तब यह पुस्तक प्रकाशित हुई। मुझे किसी प्रकार पढ़नेको मिल गयी थी[2]।' 'देशकी बात'के प्रकाशनसे पराड़करजीका नाम चारो ओर फैला। 'देशकी बात'के व्यापक प्रभावकी चर्चा, हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके शिमला अधिवेशन (सितम्बर, १९३८) में स्वागत समितिके उपाध्यक्ष डाक्टर सर गोकुलचन्द नारंगने अपने स्वागत भाषणमें इस प्रकार की है—× × × आपकी ही एक पुस्तक छपी थी जिसका नाम 'देशकी बात' थी। वह ऐसी पुस्तक थी कि कुछ महीनोंके बाद सरकारकी तरफसे उसकी जब्तीका हुक्म हो गया था। वह पुस्तक जिसको सरकार जब्त कर ले, आप अन्दाज़ लगा सकते हैं कि वह पुस्तक किस प्रकारकी होगी। अगर कहीं आपको मिल जाय, आप उसे देखें और पढ़ेंगे तो आपके मनमें देश-हितैषिताकी एक लहर उठेगी और शायद आपके जीवनमें परिवर्तन हो जाय[3]।'

---

१. वेंकटेश्वर प्रेससे 'देशेर कथा'का जो संक्षिप्त रूपान्तर प्रकाशित हुआ उसमें श्री अश्विनीकुमार दत्तकी उक्त सम्मतिका उल्लेख हुआ है।

२. 'आज' पराड़कर स्मृति अंक।

३. अखिल भारतवर्षीय साहित्य-सम्मेलन (२७ वाँ अधिवेशन, शिमला) कार्य विवरण पृ०—७।

पराड़करजीके अन्यतम विद्वान् सहयोगी श्री मुकुन्दीलालजी श्रीवास्तवने मुझे 'देशकी बात' के विषयमें बताया कि इस पुस्तकको मैंने अपने मध्यप्रदेशीय गाँव—राजनादगाँवमें पढ़ा था। यह क्रान्तिकारी पुस्तक सुदूर देहातमें पुलिसकी नजरोंसे बचाकर रखी जाती थी। जब किसी विश्वस्त व्यक्तिको इसकी आवश्यकता पड़ती तो मँगा ली जाती थी। उन दिनों इस पुस्तक-का बहुत नाम, प्रचार और प्रभाव था।

'देशकी बात' के अनेक संस्करण हुए थे। यह लगभग चार सौ पृष्ठों-की पुस्तक थी। अब यह नहीं मिलती। मूल बंगला पुस्तक 'देशेर कथा'का भी खूब प्रचार हुआ। सन् १९०८ में इसका पाँचवाँ संस्करण प्रकाशित हुआ था। इसके पूर्व चार संस्करण क्रमशः एक हजार, दो हजार, पाँच हजार तथा दो हजारके हुए थे। पाँचवें सुलभ संस्करणका मूल्य केवल आठ आना था। इस पुस्तककी रचनाका उद्देश्य 'कांग्रेस कार्यमें सहायता' प्रदान करना था।[1] 'देशकी बात'के प्रतिपाद्य विषयको भूमिकाके अन्तर्गत पराड़करजीने पद्यमें इस प्रकार उपस्थित किया था—

पाठकगण ! निज हृदय थामकर पढ़ो देश अपनेकी बात,
निर्दयतासे हुआ जिस तरह पुण्यभूमि भारतका घात।
शोक सिन्धुमें डूब न रहना, रखना मनमें भारी धीर।
बड़ी बीर जननीको जायो, हरै सदा जो उसकी पीर॥

इसी पद्यसे पुस्तकमें वर्णित विषयका सामान्य परिचय हो जाता है। इसमें भारतीय तथा यूरोपीय इतिहासज्ञों एवं विद्वानों द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों और प्रमाणोंके आधारपर दिखाया गया है कि अंगरेज शासकोंने किस प्रकार भारतीय जनताका आर्थिक शोषण-दोहन किया। अंगरेज़ व्यापारी किस तरह भारतीय हस्तकला एवं शिल्पके असाधारण कलाकारोंपर अपने

---

१. यह पुस्तक तथा विवरण लेखकको स्वर्गीय सम्पादकाचार्य पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्दे द्वारा प्राप्त हुआ।

स्वार्थकी पूर्तिके लिए अनुचित दबाव डालते थे और अवज्ञा करनेपर उनके अंगूठे अथवा हाथ ही काट देते थे, इसका पुस्तकमें प्रमाण सहित रोमांचक वर्णन है। चीनको अफीम भेजने तथा देशी राजनीतिमें पड़कर अंगरेज़ोंने किस प्रकार अपना स्वार्थ-साधन और प्रभुत्व स्थापित किया, पुस्तकमें इसका भी विशद वर्णन है।

इस पुस्तकमें ग्यारह अध्याय हैं और अन्तिम बारहवें अध्यायमें अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक, आँकड़ोंसे भरा-पूरा प्रामाणिक ज्ञातव्य साहित्य है। विभिन्न अध्यायोंके मुख्य शीर्षक ये हैं—

(१) हमारा देश—परिचय
(२) अंगरेज शासनके दोष-गुण
(३) देशकी अवस्था
(४) मानसिक अवनति
(५) कृषककी दुर्गति
(६) रेल और नहर
(७) वंगीय शिल्पियोंका सर्वनाश
(८) देशी शिल्पका ध्वंस
(९) देशका आय-व्यय
(१०) प्रतिकारका उपाय
(११) सम्मोहन चित्तविजय

(१२) परिशिष्टमें वंगभंग, मुसलमान समाजकी क्षति, हिन्दू-मुसलमान आदि महत्त्वपूर्ण चौबीस विषयोंपर प्रामाणिक तथ्योंकी ज्ञातव्य सामग्री है।

पुस्तकके अन्तमें यह मार्मिक पद्य है—

अहह के कहिवे ये सुदीर्घ कथा,
सम सिन्धु अपार अगाध व्यथा !

सन् १९५४के नवम्बरमें अपने जीवनके संस्मरण सुनाते हुए पराड़कर-

जीने इन पंक्तियोंके लेखकको बताया कि उन्होंने 'देशेर कथा'का अनुवाद किस प्रकार हिन्दीमें किया था और किस प्रकार सरकार द्वारा उसे जब्त किये जानेपर पुलिस उनके घरपर धावा बोलकर 'देशकी बात'की समस्त प्रतियाँ उठा ले गयी, जिससे यह पुस्तक स्वयं उनके लिए दुर्लभ हो गयी थी !

'देशकी बात'में जैसा हम पहले कह चुके हैं, यूरोपीय विद्वानों, इतिहासकारों तथा आर्थिक-विशेषज्ञोंके भारत सम्बन्धी वक्तव्य, कथन तथा उक्तियोंकी भरमार है। इनसे विदित होता है कि भारतीय प्रजाका शोषण किस प्रकार हुआ तथा भारतके पास कितने विपुल आर्थिक साधन थे ! लोगोंका मत था कि भारतमें विदेशी शासन कभी लोकप्रिय नहीं हो सकता। अंगरेज़ोंका सामान्य भारतीय जनताके प्रति कैसा क्रूर व्यवहार था और किस छल-छद्म एवं कपटकी राजनीतिसे उन्होंने भारतमें राजनीतिक सत्ता हस्तगत की थी, इससे प्रकट है। भारतीय जनताका स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द जीवन इसमें अंकित है और अंकित हैं उन भारतीय कलाकारोंके गौरव-चित्र जिनमें ज्ञान-विज्ञानकी अद्भुत एवं असाधारण प्रतिभा विद्यमान थी। भारतीय उद्योग-धन्धोंका सर्वनाश अंगरेज़ोंने किस बर्बरतासे किया, उसका वर्णन अत्यन्त हृदयविदारक है। इस प्रकार 'देशकी बात'में उसके गौरवपूर्ण अतीतकी स्वर्णिम झाँकी करा, देशकी वर्तमान दुर्दशाका वर्णन तथा उसके कारणोंका विवरण प्रस्तुत करते हुए यह प्रेरणा दी गयी है कि भारतीय स्वतन्त्रताकी लक्ष्य-सिद्धि सर्वोपरि है।

'देशकी बात'के निम्नलिखित कतिपय उद्धरण भारतीयोंकी असाधारण प्रतिभा तथा भारतके राष्ट्रीय साधनोंका संकेत करते हुए स्पष्ट शब्दोंमें अंगरेजोंके अनैतिक अत्याचारोंका रोमांचकारी चित्र उपस्थित करते हैं—

(१) बंगालियों और अंगरेजोंका सम्बन्ध ऐसा था कि बंगाली जैसे भेड़ थे तथा अंगरेज भालूके समान अथवा अंगरेज़ दानवोंके समान थे और बंगाली सामान्य मनुष्य !

(२) भारतके गाँवोंमें किसानोंकी प्रसन्नताकी जो हँसी सुनायी पड़ती है वह हमारे राज्यमें कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। मुझे यह कहते बहुत दुःख होता है—किन्तु सच बात यही है—कि हमारी महान् विदेशी सभ्यता ध्वंसक प्रकारकी है। भारतके गाँवमें ऐसी स्वतन्त्रता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनेको राजा समझता है। भारतीय, परिस्थितियोंकी अनुकूलतामें भव्य भवनोंके निर्माणकी योग्यता वाले थे। देशके अनेक ऐतिहासिक भवनोंकी सुन्दरता तथा सुदृढ़ता सहज ही बताती हैं कि इनके निर्माताओंकी प्रतिभा यूरोपीय निर्माण तथा वास्तुकलाके विशेषज्ञोंसे तनिक कम न थी। दिल्ली या लाहौरकी प्राचीन इमारतें, यूरोपके भव्य भवनोंकी निर्माण-कलासे टक्कर लेती है। जहाजोंके वैज्ञानिक स्वरूप तथा आकार-प्रकार जिन्हें हमने यूरोपमें विलायतकी उन्नतिके अभी हालके दस वर्षोंमें जाना-पहिचाना है, भारतीयोंको एक हजार वर्ष पूर्वसे विदित रहे हैं।

(३) सर लेपेलग्रिफिनका मत था—भारतीय जनता, सत्य एवं न्याय-के मानदण्डपर अंगरेजोंसे कहीं उच्च स्तरपर थी। यूरोपीय विद्वानोंका कथन था कि भारतीय योग्य तथा कार्यक्षम थे। एक साम्राज्यके पतनके पश्चात् दूसरे साम्राज्यके संघटनकी संक्रमणकालीन परिस्थितियाँ भारतके सिवा अन्य देशोंको विदित न थीं। यह समझना भूल थी कि इतिहासके इस संकटकालमें भारतीय अपनी राज-व्यवस्था स्वयं सुदृढ़तापूर्वक करनेमें असमर्थ थे। 'नवीन भारत'की सम्भावनाओंपर विचार प्रकट करते हुए सर हेनरी काटन नामक विद्वान्ने लिखा—भारतके विपुल आर्थिक साधन अमेरिकासे मुकाबला करने योग्य हैं। इसी प्रकार भारतीय व्यापारकी बहुमुखी प्रवृत्तियाँ प्रभूत हैं तथापि कोई भी देश भारत जैसा निर्धन नहीं।

(४) भारतके आर्थिक शोषणका यह मार्मिक चित्र देखिए—भारतमें अंगरेज आर्थिक शोषण कर मोटे हो रहे हैं और भारतीय, निर्धनतासे दीन-हीन! मध्यवर्गीय अंगरेजोंकी ईर्ष्या और भूखे स्काट लोगोंको अपनी लम्बी तनख्वाहोंकी चिन्ताने भारतके निवासियोंकी उन्नतिके सभी मार्ग बन्द कर

दिये हैं ! हमारा खयाल है कि भारतके अन्तरदेशीय व्यापारमें एकत्र विशाल धनराशि अंगरेजोंने ऐसे निर्मम और बर्बर अत्याचारोंसे एकत्र की, जो किसी भी देशमें या किसी भी युगमें किसीके द्वारा किसीके विरुद्ध अब तक प्रयुक्त नहीं हुई थी ! सर विलियम डिगवीने—भारतकी निर्धनताका तथा भीषण आर्थिक-शोषणका कारण यह बताया—भारतकी दरिद्रताके कारणोंमें दो सर्वप्रमुख कारण हैं—(१) हमने भारतके उद्योग-धन्धोंको नष्ट किया तथा (२) भारतकी सम्पत्तिका हरण किया। हमने न केवल भारतीय उद्योग-धन्धोंको विनष्ट किया अपितु सन् १८३४-३५ से सन् १८९८ तक (इकानामिस्ट पत्रके अनुवार) भारतसे दस अरब रुपयोंका हरण किया है। यह धनराशि यदि भारतमें होती और पाँच रुपये सैकड़े व्याजपर किसानोंको कर्ज़ दिये गये होते तो आजतक इनकी संख्या कमसे-कम पचास अरब हुई होती !'

अन्तिम अध्याय 'सम्मोहन चित्तविजय'की ये पंक्तियाँ कितनी मार्मिक और प्रेरक हैं—'इसलिए भारतवासियोंको समय रहते सावधान होना चाहिए। राजनीतिक उद्देश्यसे बनाये हुए इस मोहके हाथसे बचनेके लिए स्वदेश-प्रेम ही एकमात्र महौषध है। युरोपियनोंके संसर्गसे हमारे शरीरमें जो विष उत्पन्न हुआ है और जो राष्ट्रीय नैतिक ह्रास हुआ है, उसे दूर करनेके लिए स्वराष्ट्र-प्रेम ही एकमात्र उपाय है।'

'देशकी बात' में भारतीय तथा पाश्चात्त्य विद्वानोंके ये उद्धरण तथा अभिमत प्रामाणिक तथ्यों एवं आँकड़ों सहित पाठकके मनपर कैसा मार्मिक प्रभाव डालते होंगे, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। देशके प्राचीन गौरवके ज्ञानके साथ ही वर्तमान दुर्दशाका तुलनात्मक विवरण प्रत्येक देशवासीके हृदयमें स्वाधीन होनेकी एक अदम्य भावना उत्पन्न करता था। सच्ची बातोंसे युक्त तथा यूरोपीय विद्वानोंके उद्धरणोंवाली यह पुस्तक क्रान्तिकारी प्रभाव डालनेवाली थी। बीसवीं शताब्दीके प्रथम दशकमें

पराड़करजीकी 'देशकी बात' पुस्तकने देशमें स्वाधीनता प्राप्तिकी क्रान्तिकारी लहर उत्पन्न की थी, इसमें सन्देह नहीं।

देउस्करजीकी 'देशेर कथा'का बंगालमें ही नहीं, पराड़करजी द्वारा उसके हिन्दी रूपान्तर 'देशकी बात'के माध्यमसे सम्पूर्ण देशमें व्यापक प्रसार-प्रचार हुआ। स्वर्णभूमि भारत पहले क्या थी और अंगरेजोंके शासनमें उसकी कैसी अधोगति हुई, यही इस पुस्तकका प्रतिपाद्य है। स्वदेशी आन्दोलनमें इस पुस्तकने महान् प्रभाव डाला एवं अपूर्व प्रेरणा दी। बरीसालके वीर प्रख्यात देशभक्त श्रीयुत् अश्विनीकुमार दत्तने अपने कालीघाटके सार्वजनिक व्याख्यानमें इस पुस्तकके सम्बन्धमें कहा था—'इतने दिनतक सरस्वतीकी आराधना करनेपर भी बंगालियोंको मातृभाषामें वैसा उपयोगी ग्रन्थ लिखना न आया, जैसा एक परिणामदर्शी महाराष्ट्र युवाने लिख दिखलाया। बंगालियो! उस ग्रन्थ (देशेर कथा) को पढ़ो और अपने देशकी अवस्था तथा निज कर्त्तव्यका विचार करो।'

'देशकी बात'की राष्ट्रमें ऐसी प्रसिद्धि हुई कि इसके अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए। इसी नामसे लेखकोंने देशके राष्ट्रीय इतिहास तथा राष्ट्र विषयक ज्ञातव्य तथ्यों एवं आंकड़ोंसे युक्त उद्बोधक पुस्तकोंका प्रणयन किया। 'देशेर कथा'का एक अनुवाद 'सुदर्शन'—सम्पादक पण्डित माधवप्रसाद मिश्र तथा पण्डित अमृतलालजी चक्रवर्तीने भी किया था। यह अनुवाद वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित हुआ। देउस्करजीकी 'देशेर कथा' और पराड़करजीकी 'देशकी बात'से प्रेरणा लेकर हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक श्री देवनारायण द्विवेदीने 'देशकी बात' शीर्षक पुस्तककी सन् १९२३ में रचना की। इसमें तत्कालीन भारतके अद्यतन आँकड़े तथा अन्यान्य ज्ञातव्य तथ्योंका प्रभावशाली शैलीमें अंकन हुआ है। अभिप्राय यह है कि 'देशकी बात'ने देशमें वैचारिक क्रान्ति की और पराधीनताके बन्धनको तोड़कर शीघ्र स्वतन्त्र होनेकी शक्तिका जनमनमें संचार किया।

पत्रकारिता-खण्ड

• पराड़करजीकी सम्पादन-कला

पराड़करजी हिन्दी पत्रकारिताके भीष्मपितामह कहे जाते हैं। यों तो पत्रकारिताके विविध अंगों और उपांगोंके संघटन तथा संचालनकी उनमें असाधारण क्षमता थी, पर अग्रलेख और टिप्पणियोंके लेखनकी आपकी प्रतिभा अद्वितीय मानी जाती है। देशमें ही नहीं, विदेशोंमें भी पराड़करजीके सम्पादकीय लेखोंका महत्त्व स्वीकार किया जाता रहा है। यही कारण था कि आपके लेखों तथा सम्पादकीय विचारोंका उल्लेख एवं उद्धरण, पाश्चात्य देशोंके विभिन्न विचारधाराके समाचारपत्रोंमें समानरूपसे होता था।[1] पराड़करजीके लेख देशके लोकमतके प्रतीक होते थे। उनमें देशकी जनताकी वाणी होती और राष्ट्रकी जनताके नाम पुकार। देशके राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक नव-जागरणमें उनके लेखोंका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसीलिए जब क्रिप्स-मिशन भारत आया तो देशकी वास्तविक भावना और विचारधाराके परिचयके लिए 'आज'के अग्रलेखों एवं टिप्पणियोंका अंगरेजीमें अनुवाद प्रस्तुत करानेकी व्यवस्था 'स्टेट्समैन' द्वारा की गयी। क्रिप्स-मिशन जब दिल्ली आया तब 'स्टेट्समैन'के सम्पादकने सरकारी सूचना विभागके अधिकारीसे कहा कि 'देशका लोकमत जाननेकी दृष्टिसे 'आज' क्या लिखता है, यह जानना आवश्यक है और इसीलिए मैंने अपने लखनऊ कार्यालयको आदेश दे रखा है कि 'आज'के अग्रलेख-टिप्पणियोंका अंग्रेजी अनुवाद नित्य भेजा करो।[1] अभिप्राय यह है कि पराड़करजीके 'आज'में प्रकाशित अग्रलेखों-टिप्पणियोंने तत्कालीन परि-

---

१. रा० र० खाडिलकर : 'आज'-सम्पादक पराड़करजी; 'आज' १० नवम्बर, १९५३।

स्थितियोंमें विचारोंकी महान् क्रान्ति की थी। सरकारी प्रशासनकी रिपोर्टमें 'आज'के विषयमें लिखा रहता—'आज'ने देशमें पूर्ण स्वाधीनता प्राप्तिके लिए सदा-सर्वदा एकमात्र क्रान्तिके साधनका ही समर्थन किया।[1]

अग्रलेख-टिप्पणियोंका महत्त्व

डाक्टर भगवानदासजीका कथन है कि पराड़करजी यद्यपि अंगरेज सरकारके विरुद्ध लेख लिखते और छापते थे तो भी उसी सरकारके दैनिकादिपत्रोंके विषयमें जो वार्षिक रिपोर्ट निकलती थी उसमें छपा करता था कि हिन्दीके दैनिकोंमें 'आज' अन्य सबसे अधिक प्रतिष्ठित है और जनताको राजनीतिक बातोंकी अच्छी सूचना करता है।[2] आचार्य नरेन्द्रदेव-जीका मत था कि 'आज'की जो लोकप्रियता है वह उन्हींके कारण थी। सरकारपर भी उनके लेखोंका प्रभाव पड़ता था क्योंकि उनकी भाषा संयत होती थी और उनके विचारोंका आधार, गम्भीर अध्ययन और चिन्तन होता था।[3] सम्पादकाचार्य पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्देने लिखा है—अर्थशास्त्र और अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी लेखोंमें पराड़करजीकी विशेष योग्यता मानी जाती है। मेरे विचारमें, इस जटिल विषयकी जटिलतर ग्रन्थियोंको इतनी सुलझी हुई भाषामें समझानेवाला दूसरा कोई पत्रकार हुआ ही नहीं।[4] सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़का मत है कि पराड़करजीकी लेखनीने 'आज'को हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ दैनिक ही नहीं बना दिया, हिन्दी पत्रकारिताका स्तर भी बहुत ऊँचा उठा दिया। 'आज'के पहले

---

१. आगरा-अवध संयुक्त प्रान्तके प्रशासनकी रिपोर्ट : १९२९–३०, पृष्ठ संख्या १२०।

२. डाक्टर भगवानदास : 'आज' पराड़कर स्मृति अंक, पृष्ठ–१।

३. 'आज' पराड़कर स्मृति अंक।

४. वही।

कोई अंगरेजी पढ़ा-लिखा आदमी हिन्दी पत्रोंका अग्रलेख नहीं पढ़ता था। पराड़करजीके राजनीतिक तथा अर्थशास्त्र सम्बन्धी लेख अंगरेजी पढ़े-लिखे लोग भी पढ़ते थे। सरकारी रिपोर्टोंमें उसकी चर्चा हुई है। आर्थिक समस्याओंपर उनके लेख और टिप्पणियाँ बड़ी सूझ-बूझकी होती थीं। उनके राजनीतिक लेखोंमें गम्भीरता होती थी, दृष्टि होती थी और पकड़ होती थी।[1]

अग्रलेख और टिप्पणी-लेखनकी पराड़करजीकी अपनी मौलिक पद्धति थी। सम्पादकीय लेखोंके अन्तरंग तथा बाह्यस्वरूपमें उनका एक सुनिश्चित सिद्धान्त निहित रहता। यही कारण रहा है कि उनके अग्रलेख और टिप्पणियाँ बड़े-बड़े अंगरेज़ी समाचारपत्रोंकी टक्कर लेतीं और लोग उनका लोहा मानते रहे हैं। आधुनिक समाचारपत्रोंमें अग्रलेख-टिप्पणियोंका वह महत्त्व नहीं रह गया है, जो उस समय था। उस समय लोग साँस रोककर पराड़करजीके लेख पढ़नेको आकुल-व्याकुल रहते थे। अग्रलेख तथा अपनी टिप्पणियोंके द्वारा पराड़करजीने देशका, देशकी जनताका और देशके नेताओंका मार्गदर्शन किया। भारतीय कांग्रेस तथा उसके सूत्रधार महात्मा गांधी भी उनके लेखोंसे प्रभावित होते थे और एक नहीं अनेक बार उन्होंने 'आज'के परामर्शानुसार ही राष्ट्रीय आन्दोलनकी धारा मोड़ी। यह सब इसीलिए सम्भव हो सका कि पराड़करजीके सम्पादकीय लेखोंका दृष्टिकोण सदा भारतीय गौरवकी पुनःस्थापना रहा।

अग्रलेखका स्वरूप तथा लेखन-पद्धति

पराड़करजीके अग्रलेख सदा तीन अनुच्छेदके हुआ करते थे। इसके पीछे उनका विशेष सिद्धान्त था। वह यह कि किसी भी विषय अथवा समस्यापर जो अग्रलेख लिखा जाय, उसमें विचारणीय विषयकी सभी बातें

१. वही, पृष्ठ ११।

या तर्क नहीं दिखा देने चाहिए। पुस्तक-लेखनमें या निबन्ध-रचनामें अवश्य ही प्रतिपाद्य विषयके सभी पहलू अथवा पक्षोंपर विचार-विमर्श किया जा सकता है पर अग्रलेखमें नहीं। अग्रलेखमें सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि सम्बद्ध समस्याके कुछ तर्क तथा विचार अगले दिनके लिए सुरक्षित रख लिये जायँ। निबन्ध और अग्रलेखके अन्तरको पराड़करजी इसी प्रकार स्पष्ट करते। सम्पादकीय लेखमें तीन अनुच्छेद (पैरा) का रहस्य भी इसीपर आधृत था। प्रथम अनुच्छेदमें विषयका परिचय, द्वितीय-में उसका विवेचन और अन्तिम अनुच्छेदमें निष्कर्षात्मक विश्लेषण रहता। प्रथममें एक पक्षका, द्वितीयमें दूसरेका तथा अन्तिम अनुच्छेदमें सम्पादकका समन्वय या निष्कर्ष रहा करता। सम्पादकीय लेखकी यह परम्परा हिन्दी समाचारपत्रोंमें ग्रहीत हुई हैं। आज भी अनेक प्रतिष्ठित एवं मान्य हिन्दी दैनिकपत्रोंमें अग्रलेख तीन अनुच्छेदके ही लिखे जाते हैं। पराड़करजी सदा इस बातपर विशेष बल देते थे कि अग्रलेख-लेखकको आगामी दिनके सम्पाद-कीय विचारके निमित्त कुछ-न-कुछ तथ्य एवं तर्क सर्वदा अपने पास रखने चाहिए। सन् १९४७ के अगस्त महीनेमें 'आज' कार्यालयमें सम्पादन-कला सम्बन्धी अपनी व्याख्यानमालामें तथा सन् १९५३ में इन पंक्तियोंके लेखक-के विशेष अनुरोधपर कृपापूर्वक अपने जीवनके संस्मरण सुनाते हुए पराड़कर-जीने उपर्युक्त तथ्योंपर विशेष जोर दिया था। आपने, सन् १९२० में 'आज' के प्रारम्भिक दिनोंमें अग्रलेख-लेखनके अनेक संस्मरण सुनाये जिनसे विदित होता है कि तत्कालीन सम्पादकीय लेखके लेखकोंके सम्मुख कैसी-कैसी समस्याएँ और कठिनाइयाँ रहती थीं।

उसी प्रसंगमें पराड़करजीने बताया—उन दिनोंकी बात है जब 'आज' कार्यालय दुर्गाकुण्डके निकट 'गुरूके बाग'में स्थित था। एक दिनकी बात है अग्रलेखका कोई विषय सूझ ही नहीं रहा था। काफी विलम्ब हो चुका था। पत्रके फोरमैन सरयू महाराजने आकर सूचना दी कि अग्रलेखमें अब और देर हुई तो 'डाक' छूट जायगी। अन्तमें मैंने लिखना शुरू किया। अग्रलेख-

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीका पत्र,

दौलतपुर (रायबरेली)
१८.१२.२९

नमस्कार

विनय पत्र। विनती विशेष यह है कि आज मैंने १५ रुपये के ३० "मर्यादा" नामक लेख का पारायण किया। उसके पहले के भी इस नाम के कई लेख मैंने देखे। आपकी सहृदयता, न्यायशीलता और गुणग्राहिता पर मैं मुग्ध हो गया। आप धन्य हो। जिन बातों को कोई २०, २५ वर्षों से मेरे हृदय में जल रहा था उन कोटी मानो आपने बाहर निकाल कर ठंडा कर दिया। आपने अनुपम सी बातें लिख दी हैं। आपके विचार मुझे तो बिलकुल उपयुक्त मालूम हुए। शीर्षक कृपा: —

[illegible] : महावीरप्रसाद द्विवेदी
म० प्र० द्विवेदी.

का शीर्षक था—'लिखें तो क्या लिखें ?' यह अग्रलेख कुछ ऐसा सुन्दर बन पड़ा कि आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीने पत्र लिखकर उसकी प्रशंसा की। इसी प्रकार 'एक रथके दो चक्र' शीर्षक अग्रलेख भी आचार्य द्विवेदीको बहुत पसन्द आया था। द्विवेदीजीके पोस्टकार्डका प्रथम दर्शन मुझे सन् १९०८ ईसवीमें हुआ था। उन दिनों मैं कलकत्तेमें 'हितवार्ता' का सम्पादन करता था। उसके कुछ लेखोंसे सन्तुष्ट होकर आपने प्रथम कार्डमें मुझे केवल आशीर्वाद दिया था। बादके कार्डोंमें मेरी भाषाकी त्रुटियाँ दिखायी गयी थीं—विषयके अनुरूप शैली न होनेकी बुराईकी ओर मेरा ध्यान दिलाया गया था। 'आज' के कुछ लेख आपको बहुत पसन्द आये थे और जब जो लेख अच्छा मालूम हुआ, तुरन्त कार्ड लिखकर अपना सन्तोष प्रकट किया।

आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीका पत्र

आचार्य द्विवेदीजीके उन पत्रोंके सम्बन्धमें पूछनेपर पराड़करजीने बताया कि उनमेंसे अधिकांश पत्र दीमक चाट गये; शायद एकाध बचा हो। आपने कहा कि मेरी एक काठकी पेटी थी। उसीमें सारे कागज़-पत्र रखे थे। बादमें उसमें दीमक लग गये और उसमें रखे कागज-पत्र नष्ट हो गये। दो वर्ष पूर्व पराड़करजीके भतीजे श्री मंगल माधव पराड़करने जब सन् १९२० से लेकर १९४२ तकके उनके पत्रोंके बण्डलोंकी चर्चा कर उन्हें देखनेकी सुविधा दी तो उनमें मुझे आचार्य द्विवेदीजीका निम्नलिखित कार्ड मिला—

दौलतपुर (रायबरेली)
१८-१२-२९

नमस्कार

विनय या विनती विशेष यह है कि आज मैंने 'एक रथके दो चक्र' नामक लेख पढ़ाकर सुना। इसके पहलेके भी इस तरहके कई लेख मैंने सुने। आपकी सहृदयता, न्यायशीलता और तर्कपद्धतिपर मैं मुग्ध हो गया।

आप धन्य हो ! जिन बातोंने आज कोई ३०, ३५ वर्षोंसे मेरे हृदयमें घर कर रखा था, उनको ही मानो आपने वहाँसे निकालकर सब प्रकट कर दिया। आपने अनुभवसिद्ध-सी बातें लिख दी हैं। आपके विचार मुझे तो बिलकुल ही सच मालूम हुए। दीर्घायुर्भूयाः—सुखसौभाग्यवृद्धिस्ते भूयादीश-प्रसादतः।

अनुगत—

म० प्र० द्विवेदी

पराड़करजीकी लेखनी इतनी सिद्ध हो गयी थी कि उन्हें लिखते समय कोई शब्द काटना अथवा फिरसे जोड़ना नहीं पड़ता था। वह नपी-तुली पंक्तियोंमें एक आकारके कागजकी स्लिपोंपर अग्रलेख-टिप्पणी लिखते थे। तीन 'स्लिपों' में उनका अग्रलेख समाप्त हो जाता था और एक स्लिपमें टिप्पणी। जिस प्रकार उनके लेख तीन अनुच्छेदोंके नियमित रूपसे होते थे उसी प्रकार टिप्पणी सदा एक अनुच्छेदकी होती थी, जिसे वे प्रायः एक ही 'स्लिप' में पूरा कर देते थे। सत्तर वर्षकी वृद्धावस्थामें भी उनके लेखनकी गति यही थी। उनकी लेखनी उनके मस्तिष्कसे भी आगे रहती। जिस समय पराड़करजी सम्पादकीय लेख लिखने बैठ जाते तो उन्हें आस-पासका वातावरण जैसे विस्मृत हो जाता। निकट होनेवाले हो-हल्ले, बात-चीत या चख-चखका उनपर कोई प्रभाव न पड़ता। लिखते समय उनका आत्म-नियन्त्रण, मनोयोग और निष्ठा देखकर लोगोंका आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। दो घण्टेमें अग्रलेख तथा पाँच-छः टिप्पणियोंके लेखनका उनका अभ्यास सत्तर वर्षकी अवस्था तक था। 'आज' के सम्पादकीय पृष्ठ-पर तीन कालम स्थान लेख-टिप्पणियोंके लिए रहता था। पराड़करजी प्रायः नित्य ही लेखके अतिरिक्त इतनी अधिक टिप्पणियाँ लिख देते कि सबका समावेश उस दिन नहीं हो पाता था। अगले दिन फिर उनका यही क्रम चलता।

पराड़करजीका राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक अध्ययन इतना गहन तथा व्यापक था कि उन्हें तत्सम्बन्धी संदर्भ तथा पृष्ठभूमिके लिए संदर्भ ग्रन्थोंकी आवश्यकता न पड़ती थी। कोई भी घटना अथवा समस्या आती तो तत्काल ही उसपर आधिकारिक रूपसे विचार एवं विवेचन करना उनके लिए सहज था। सन् १९४७ से जनवरी, सन् १९५५ तक इन पंक्तियोंके लेखकको उनके सान्निध्यमें कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्त रहा है। इस अवधिमें उनके निर्देशनमें वर्षों अग्रलेख और टिप्पणी लिखनेका अवसर मिला। इस बीच पराड़करजीने मुझे 'आज' के साप्ताहिक सोमवार विशेषांकमें, जिसका उन दिनों मैं इंचार्ज सम्पादक था, साप्ताहिक सिंहावलोकन लिखनेका आदेश किया। इस प्रकारका सिंहावलोकन पराड़करजीको बड़ा प्रिय था।' बादमें अनेक अवसरोंपर महीनों तक कई बार उनके सान्निध्यमें अग्रलेख-टिप्पणी भी लिखी। इस प्रकार इन पंक्तियोंके लेखकको निकटसे उनके अग्रलेख-लेखनकी पद्धतिको देखनेका अवसर मिला। जाड़ा हो या गर्मी, पराड़करजी सूर्योदयके पूर्व ही कार्यालय आ जाते। सर्व-प्रथम वे 'आज' के नवीनतम संस्करणको देखते और उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण समाचारपर अग्रलेख लिखने-का लाल पेन्सिलसे चिह्न लगा देते थे। महत्त्वके क्रमके अनुसार अन्य चिह्न टिप्पणियोंके लिए होते थे। स्वास्थ्य ठीक न होनेपर कभी पराड़करजी अग्रलेख स्वयं न लिखते—केवल टिप्पणियाँ ही लिखते। कभी वे स्वयं लेख लिखते और टिप्पणी लेखनका आदेश मुझे करते। पराड़करजीके निर्देशके अनुसार लेखनकार्य प्रारम्भ हो जाता। कभी ऐसा होता कि एकाध टिप्पणी लिख मैं अभी पूरी कर ही पाता कि पण्डितजीका बुलावा आता। अग्रलेख-की कापी देते हुए वे कहते कि लीजिए—आज मैंने बहुत कम काम किया। २२ जनवरी, १९५३ को ऐसी ही घटना हुई। उस दिन उन्होंने आध घण्टे-के भीतर ही 'श्रमदानकी योजना' शीर्षक डेढ़ कालमका अग्रलेख लिखकर मुझे दिया और उक्त बात कही। लज्जावनत होकर मैंने कहा—पण्डितजी, यह तो बहुत अधिक हो गया। अच्छा हो कि आप अब हमें अधिकाधिक लिखने-

का निर्देश दिया करें और स्वयं बहुत कम श्रम किया करें।' इसपर पण्डितजी मुसकरा पड़े।

अग्रलेख-लेखनमें पराड़करजी अपने सहायकोंका उत्साहवर्धन तथा पथ-प्रदर्शन किस प्रकार करते थे, इसका परिचय श्री महावीरप्रसाद गहमरीके सौर ९ पौष, सं० १९८६ के पत्रके इस अंशसे प्रकट होता है— × × × आपने मेरी भावप्रधानताको दृढ़ और समाजहितकारिणी होनेका आशीर्वाद दिया है। इसमेंसे 'समाज हितकारिणी' विशेषण था, संकेत मेरे लिए विशेष आनन्दजनक और पथ-प्रदर्शक है। आपको मैं जिस दृष्टिसे देखता हूँ उसीके अनुकूल भी है। अब तक मैंने मुख्यतः तीन सम्पादकोंके अधीन काम किया है और तीनोंको अपने लिए एक-एक विषयका गुरु मानता हूँ। स्वर्गीय श्री बालमुकुन्द गुप्त मेरे भाषा-गुरु थे, पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती भाव-गुरु और आप मेरे बुद्धि-गुरु हैं। मैं आपसे सद्बुद्धि सीख रहा हूँ और अनुभव कर रहा हूँ कि भाव एकपक्षीय हो सकता है। उसे निष्पक्ष बनानेके लिए सुबुद्धिका अंकुश चाहिए। आपने मेरी भावप्रधानताको दृढ़ होनेके साथ ही समाजहितकारिणी बनानेका जो सदादेश आशीर्वादके रूपमें किया है उसपर चलनेका सदा प्रयत्न करूँगा और अपने बुद्धि-विभ्रमके सम्बन्धमें आपकी ओरसे होनेवाली कड़ीसे-कड़ी टीकाका भी हार्दिक स्वागत करूँगा।

सेवक—**महावीरप्रसाद गहमरी**

अपने सहायकोंको प्रोत्साहन देनेके साथ ही पराड़करजी कभी-कभी उनकी कठिन परीक्षा भी लिया करते थे। बात उन दिनोंकी है, जब पण्डित कमलापति त्रिपाठी (सम्प्रति, गृह, शिक्षा तथा सूचनामन्त्री, उत्तर-प्रदेश) उनके प्रधान सहायक थे। एक दिन पराड़करजीने आधा अग्रलेख लिखकर उनसे कहा कि मेरी तबियत अचानक खराब हो गयी है। शेष लेख आप पूरा करके कम्पोजमें दे दें। कमलापतिजीके लिए यह कठिन परीक्षाका अवसर था। स्वतन्त्र अथवा नवीन लेख लिख देना उतना कठिन न था, जितना पराड़करजीका लिखा अधूरा अग्रलेख पूरा करना। उनकी भाषा, शैली

और भाव सभीका निर्वाह करना, कोई सरल काम न था। फिर लेखके उत्तरार्धमें पराड़करजी क्या निष्कर्ष या संकेत देना चाहते थे, यह भी स्पष्ट नहीं था। पराड़करजी तो घर चले गये थे और लेख पूरा करना ही था। कमलापतिजीने बड़ी ही संलग्नता और सावधानतासे लेखके पूर्वार्धका अध्ययन किया और विचारपूर्वक लेखनी उठायी। लेख यथासमय पूरा कर उन्होंने उसे प्रकाशनार्थ कम्पोजमें दिया। दूसरे दिन जब पराड़करजी कार्यालय आये तो उन्होंने कमलापतिजीकी मुक्त कंठसे सराहना की और उसी दिन सन्ध्याको 'आज'के संस्थापक बाबू शिवप्रसाद गुप्तसे उन्हें सम्पादक बना देनेकी संस्तुति की। कुछ ही दिन बाद पराड़करजी 'आज'के प्रधान सम्पादक हो गये और श्री कमलापतिजी 'आज'के सम्पादक।[1]

सम्पादकीय लेख : आदर्श और लक्ष्य

पराड़करजीकी लेखन-शैलीपर लोकमान्य तिलकका प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। 'केसरी' के अध्ययन तथा तिलकसे साक्षात्कार एवं निकट सम्पर्कके बाद यह स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि पराड़कर-जीके लेखोंमें लोकमान्य तिलकके लेखोंकी भाँति प्रायः संस्कृतके श्लोक रहते थे। अग्रलेखोंके शीर्षक भी बड़े ही आकर्षक होते थे। पराड़करजीका नियम था कि राष्ट्रीय पर्वोंपर वे उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बताते हुए तत्कालीन समस्याकी चर्चा करते और तदनन्तर समस्याके समाधानका संकेत। होली, विजयादशमी, दीपावली तथा कृष्णाष्टमीपर उनके लेख संस्कृत श्लोकोंसे प्रायः युक्त रहा करते थे। कृष्णाष्टमीको ही ५ सितम्बर, १९२० में 'आज'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। प्रतिवर्ष इसी दिन 'आज' अपने जीवनके नये वर्षमें प्रवेश करता है। इस अवसरपर पराड़करजी जो

---

१. काशीमें पराड़कर स्मारक भवनके शिलान्यासके अवसरपर माननीय पण्डित कमलापति त्रिपाठीके भाषणसे।

अग्रलेख-लिखा करते थे उसमें भगवान् श्रीकृष्णकी 'गीता' के श्लोक अवश्य रहा करते थे। इसी प्रकार विजयादशमीपर 'दुर्गा सप्तशती' के श्लोकोंका उद्धरण देकर वे वातावरणके अनुसार राष्ट्रका उद्बोधन करते थे। 'आज'-के प्रथम अग्रलेखमें जिस नीतिकी घोषणा की गयी थी, उसका आपने जीवनके अन्त तक परिपालन किया। आपने सदा-सर्वदा सम्पादकीय नीति-का मूल मन्त्र, भारत और भारतीयताकी गौरव वृद्धि रखा।

'आज' के प्रथम' अग्रलेखके ये शब्द मननीय हैं और यही हैं पराड़-करजीके अग्रलेखोंके मूलाधार[1]—'हमारा उद्देश्य अपने देशके लिए सर्व-प्रकारसे स्वातन्त्र्य उपार्जन है। हम हर बातमें स्वतन्त्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देशका गौरव बढ़ावें, अपने देशवासियोंमें स्वाभिमानका संचार करें, उनको ऐसा बनावें कि भारतीय होनेका उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो। यह स्वाभिमान स्वतन्त्रता देवीकी उपासना करनेसे मिलता है। जब हममें आत्मगौरव होगा तब अन्य लोग भी हमको आदर और सम्मानकी दृष्टिसे देखेंगे। इसके लिए न द्रोहकी आवश्यकता है न अनुचित प्रेमकी, न किसीसे सम्बन्ध त्यागकी आवश्यकता है न बन्धन दृढ़ करनेकी। सबसे अधिक आवश्यकता आत्मपरिचय और आत्मगौरवकी है। अतः हम अपने देशका गौरव अपनी आँखों और दूसरोंकी आँखोंमें बढ़ाते हुए स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका यथासाध्य यत्न करेंगे। सामयिक राजनीतिक सुधार, नयी परिषदों आदिके सम्बन्धमें अपना मत तो हम देते ही रहेंगे पर मूलमन्त्र हमारा यही है कि हमारे देशका गौरव बढ़े, भारत और भारतीयका नाम संसारमें आदरके साथ लिया जाय। जिन-जिन कार्योंसे हमारा उद्देश्य सिद्ध होगा उनके हम पक्षपाती हैं, जिनसे इसके विपरीत होगा उनके हम विरोधी हैं। साथ ही यह कहना अत्यावश्यक है—क्योंकि इसीमें समझमें फरक पड़ जाता है—कि हम जाति-जाति और

---

१. 'आज' का प्रथम अग्रलेख : ५, सितम्बर, १९२०।

देश-देशमें किसी प्रकारका झगड़ा नहीं चाहते, न हम व्यक्ति-व्यक्तिमें वैमनस्य ही पसन्द करते हैं। यथासम्भव हम यह यत्न करेंगे कि व्यक्ति-विशेषोंपर कटाक्ष न हो, केवल उनके विचारोंकी ही समीक्षा-परीक्षा हो। हमारा सदा यह यत्न रहेगा कि किसीके चरित्रको और उसके व्यक्तिगत जीवनकी बातोंको प्रकाश कर उसका अनादर न किया जाय। स्वामी विवेकानन्दके इस वाक्यसे हम सहमत हैं कि किसीके व्यक्तिगत-जीवनका निपटारा उसका स्वामी परमेश्वर और वह स्वयं कर लेगा। हमारा केवल उसके सामाजिक जीवनसे ही सम्बन्ध है। व्यक्तिशः हमारा न कोई शत्रु है न मित्र, पर जब किसीका व्यक्तिगत आचरण सार्वजनिक कल्याणका बाधक होगा, तो उसका प्रतिकार हमको अवश्य ही करना पड़ेगा।'

समाचारपत्रकी नीति उसके सम्पादकीय स्तम्भोंसे ही घोषित की जाती है। सरकार और जनता दोनों ही उससे प्रभावित होते हैं। यह पत्रका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है। इसके अन्तर्गत जो लेख तथा टिप्पणी होती है, वही पत्रकी नीतिकी द्योतक होती है। सम्पादकीय नीति अथवा पत्रकी नीतिके मूल सिद्धान्त स्थिर रहते हैं और प्रसंगानुसार उनका विभिन्न पद्धतियों तथा तर्कों द्वारा प्रतिपादन होता रहता है। सम्पादक अथवा अग्रलेख—लेखकको अपनी मूल नीतिको ध्यानमें रख नित्य नवीन एवं महत्त्वपूर्ण विषयोंका चयन कर अग्रलेख तथा टिप्पणी लिखनी होती है। 'आज' के प्रथम अग्रलेखमें इस सम्बन्धमें जो सामान्य नीति स्थिर की गयी थी वह इस प्रकार है—'संसार-भरके नयेसे-नये समाचार इसमें रहेंगे। दिन-प्रतिदिन संसारकी बदलती हुई दशामें नये-नये विचार उपस्थित करनेकी आवश्यकता होगी। हमको रोज-रोज अपना मत तत्काल स्थिर करके बड़ी छोटी सब प्रकारकी समस्याओंको समयानुसार हल करना होगा। जिस क्षण जैसी आवश्यकता पड़ेगी उसीकी पूर्तिका उपाय सोचना और प्रचार करना होगा। भूत घटनाओंसे शिक्षा लाभकर हमको भविष्यके लिए कुछ कर जाना है। पर करना आज ही है। हमलोग पूर्व-गौरवके

गान गाते हैं और भविष्यके स्वप्न देखा करते हैं पर आजका विचार ही नहीं करते जिसमें भारतको सर्वदा 'आजका' स्मरण रहे। इसलिए हम 'आज' नाम से ही आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं।'

'आज' के विगत ३० वर्षोंके सम्पादनद्वारा पराड़करजीने त्रिमुखी संघर्ष छेड़ा। प्रथम अंगरेज़ोंके विरुद्ध, द्वितीय देशकी सामाजिक-आर्थिक उन्नतिके निमित्त तथा तृतीय राष्ट्रभाषा हिन्दीके अभ्युदय एवं उत्कर्षके लिए। कहना न होगा, पराड़करजीने जिन महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंके लिए जीवन-भर संघर्ष किया; उनमें प्रायः सभीकी लक्ष्य सिद्धि वे अपने जीवनकालमें ही देख गये। सन् १९४७ में देश स्वाधीन हुआ और अंगरेज़ गये, सन् १९४९ में संविधान सभामें हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेका सर्वसम्मतिसे संकल्प किया गया और सन् १९५५ की आवड़ी कांग्रेसमें देशकी आर्थिक रचनाका आदर्श समाजवादी व्यवस्था स्वीकृत कर लिया गया। संसारमें ऐसे कम ही व्यक्ति होंगे जिन्होंने इस प्रकार अपने जीवनकालमें ही उन लक्ष्योंकी पूर्ति देखी हो जिसके लिए वे जीवनभर जिये-मरे।

अग्रलेखके साथ ही पराड़करजीकी टिप्पणियाँ भी बड़ी मार्मिक हुआ करती थीं। इनमें प्रतिपाद्य विषयके सम्बन्धमें नपे-तुले शब्दोंमें ऐसे तर्क रहते जो अकाट्य तो रहते ही, मानव मनकी भावनाओंपर भी मार्मिक प्रभाव डालते थे। टिप्पणी लेखनमें पराड़करजी इस बातका भी ध्यान रखते थे कि देशके विभिन्न स्थानोंमें नियुक्त संवाददाता यदि कोई महत्त्व-पूर्ण संवाद भेजे, तो उसपर भी सम्पादकीय स्तम्भमें विचार हो। यही कारण था कि वे प्रायः प्रादेशिक राजधानियोंकी चिट्ठियोंमें वर्णित अनेक समस्याओं तथा प्रश्नोंको भी अपनी टिप्पणीका विषय बनाते। यही नीति ग्रामीण क्षेत्रोंके संवाददाताओं द्वारा भेजे महत्त्वपूर्ण समाचारोंके सम्बन्धमें भी होती थी। इससे सम्पादकीय स्तम्भमें प्रायः उन अछूते प्रश्नोंपर प्रकाश पड़ता था, जो सरकारी सूचना अथवा संवाद-समितिके माध्यमसे कभी नहीं ज्ञात होते थे। टिप्पणीका विषय, अन्तरराष्ट्रीय महत्त्वकी घटनाओंसे लेकर

स्थानीय प्रश्नों एवं दैनिक समस्याओंके सम्बन्धमें होता था। आपकी लिखी टिप्पणियाँ छोटी-छोटी हुआ करती थीं और कभी-कभी तो आठ-दस पंक्तियोंकी ही।

अग्रलेख-टिप्पणी लेखनके उदाहरण

पराड़करजीके सम्पादकीय लेख तथा टिप्पणी लेखनके सिद्धान्त विवेचन-के बाद उनके अग्रलेखों तथा टिप्पणियोंके कतिपय उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगा कि विचारणीय विषयों तथा सम्बद्ध प्रश्नोंको वे किस प्रकार उठाते थे और उनके समाधानकी दिशाका किस प्रकार संकेत करते थे। पराड़कर-जीने हिन्दी वंगवासी, हितवार्ता, भारतमित्र, आज, संसार तथा कमला नामक पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन किया। हिन्दी वंगवासी तथा हितवार्ताके सम्पादकीय लेख तो प्राप्त नहीं हुए किन्तु 'भारतमित्र'में आपके लिखे लेख प्राप्य हैं। भारतमित्रके जिस अग्रलेखका अंश यहाँ हम उद्धृत कर रहे हैं वह पराड़करजीके ही कटिंग-संग्रहका है। सन् १९१५ में कलकत्तेके पत्रोंमें विलायत यात्रासे धर्मच्युत होनेका विवाद चल पड़ा। दैनिक 'भारतमित्र' ने तथा 'कलकत्ता समाचार' में नित्यप्रति वाद-विवाद निकले रहते। 'भारतमित्र' के सम्पादक पण्डित अम्बिका प्रसाद वाजपेयी तथा पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करने एक पक्ष ग्रहण किया और 'कलकत्ता समाचार' के सम्पादक पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीने दूसरा। इस प्रश्नके विवादमें एक दूसरेका विरोध करते हुए और अपना पक्ष समर्थन करते हुए दर्जनों लेख प्रकाशित हुए। एक इसी प्रसंगमें पराड़करजीके लिखे 'ज्ञान प्रचारकी आवश्यकता' शीर्षक लेखका कुछ अंश इस प्रकार है—

'भारतकी वर्त्तमान अवस्था देखकर सहृदय मनुष्य व्याकुल हो जाता है। भारत क्या था और क्या हो गया! जिस भारतके सम्बन्धमें एक बार ऋषिने साभिमान कहा था—'**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥**'—वह भारत आज मूर्खता

और दुरभिमानका निकेतन हो रहा है। जिस ज्ञानके बलसे ऋषि जगत्-पूज्य हुए थे, उस ज्ञानकी ओर किसीका ध्यान नहीं है। लड़ाई-झगड़ोंमें हम अपना समय नष्ट कर रहे हैं। बहुमूल्य जीवन और बची-खुची अल्प शक्ति वैर-भाव बढ़ानेमें लगाते हैं और समझते हैं—अन्ततः दूसरोंको समझाना चाहते हैं कि, हम धर्मकी रक्षा कर रहे हैं। जिनका समस्त जीवन परधन हरणमें, मिथ्या भाषणमें, अभक्ष्य भक्षणमें तथा अगम्या-गमनमें बीता है, वे चौथी अवस्थामें धर्मोपदेशक बन जाते हैं—**'वृद्धा वेश्या तपस्विनी'** की कहावत सच करके दिखाते हुए तनिक भी नहीं सकुचाते हैं। वे समझते हैं कि संसारमें हम पहले आये हैं, केवल इसीलिए पीछे आनेवाले हमारा सम्मान करें—हमारा आदर करें। उनके मतसे ब्राह्मण कुलमें जन्म देकर ही अन्य तीन वर्णोंपर चाहे जैसे अत्याचार करनेका ठेका परमात्माने हमें दे दिया है; पर इनमें ब्राह्मणत्वका एक भी लक्षण न हो तो भी कोई हर्ज नहीं है।

'भारतमित्र' के बाद सन् १९२० में पराड़करजी 'आज' के सम्पादक हुए। उस समय लोकमान्य तिलकका स्वर्गारोहण हो गया था और महात्मा गान्धीका भारतीय राजनीतिक रंगमंचपर आगमन हुआ था। तिलकके भक्त होते हुए भी आपने महात्मा गान्धीके असहयोग आन्दोलनका समर्थन किया। महात्माजीने एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्तिकी योजना कांग्रेसमें रखी। इस सम्बन्धमें टिप्पणी लिखते हुए आपने निर्भीकतापूर्वक अपनी स्पष्टोक्ति भी व्यक्त कर दी—

एक वर्षमें स्वराज्य : महात्मा गांधीने कांग्रेसमें कहा था कि मेरा कार्यक्रम यदि स्वीकार कर लिया जायगा तो एक वर्षके भीतर भारतको स्वराज्य मिल जायगा। कांग्रेसने महात्माजीका कार्यक्रम ही स्वीकार कर लिया है पर देश स्वीकार करेगा या नहीं, इसका परिचय अनुभवसे ही

---

१. दैनिक **'भारतमित्र'**, २७ जून, १९१५ से।

मिलेगा। आशा है, देशकी वर्तमान दशाका विचार करके ही एक वर्षकी प्रतिज्ञा की होगी। हमें केवल इस बातकी चिन्ता है कि अन्तमें महात्मा गान्धी और आपके साथ ही राष्ट्रीय सभा भी उपहास्य न हो। हम महात्माजीको भक्ति-भावसे देखते हैं तथा यदि हमारा अनुमान मिथ्या हो और देश महात्माजीके उपदेशानुसार कार्य करनेको प्रस्तुत हो जाय तो हमसे अधिक सुखी कोई न होगा। परन्तु हमें खेदके साथ यह कहना ही पड़ता है कि इतना स्वार्थत्याग करनेके लिए देश अभी प्रस्तुत नहीं हुआ है।[1]

पराड़करजीकी अदमनीय राष्ट्रीय भावना किस निर्भीकता तथा साहसपूर्ण शैलीमें अभिव्यक्त होती थी उसका उदाहरण 'देशभक्तकी राख' शीर्षक टिप्पणीसे विदित होता है। यह टिप्पणी 'टेरेन्स माक्स्विनी'के सम्बन्धमें प्रकाशित हुई थी। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—'वास्तवमें देशभक्तकी राख भी ओजस्विनी होती है, वह क्या कर नहीं दिखा सकती? तोपका सामना करना सरल है। इस राखका सामना करना कठिन है'।[2] महात्मा गान्धीके असहयोग आन्दोलनकी विचारधाराको जन-साधारणमें प्रतिष्ठित तथा प्रचारित करनेमें पराड़करजीकी लेखनीका अनुपम एवं असाधारण योग रहा है। एक उदाहरण लीजिए—

असहयोगकी शक्ति : × × × वंग विभागके कारण शिक्षित बंगाली जितने उत्तेजित हुए उतने और प्रान्तके लोग नहीं हुए थे और यह स्वाभाविक भी था। वंग-विभागका गूढ़ राजनीतिक उद्देश्य साधारण लोगोंकी समझमें नहीं आ सकता था पर उस समय आन्दोलनका दमन करनेके लिए सरकारने जिस व्यापक नीतिका अनुसरण किया था उसका फल केवल बंगालको ही नहीं पर समस्त भारतवर्षको भोगना पड़ा था। इससे और

---

१. 'आज' : १२ सितम्बर, १९२० से।

२. वही : ४ नवम्बर, १९२० से।

अमृतसरके हत्याकाण्ड तथा समस्त पंजाबके अत्याचारोंसे भारतीय समाज बिलकुल जड़से हिल गया। यही आजके आन्दोलनकी व्यापकताका प्रधान कारण है। रौलेट एक्टके विरोधने भारतीय शासनमण्डलके जिन मानसिक भावोंका परिचय लोगोंको करा दिया है, वही इस आन्दोलनकी प्रधान शक्ति है। शासनमण्डलकी दमन नीतिसे सर्वथा असन्तुष्ट होनेपर भी बल प्रयोगके बिना इसके प्रतिकारका कोई उपाय भारतवासी नहीं जानते थे कि शारीरिक बल प्रयोग असम्भव ही नहीं अमंगल भी है।

इस द्विधा मानसिक वृत्तिके समय महात्मा गाँधीने पहले सत्याग्रहका प्रचार किया। परन्तु उसके भी कुछ दोष प्रकट होते ही आपने असहयोगको भारतीय राजनीतिके क्षेत्रमें उपस्थित किया। आपने असन्तुष्ट भारतीय सन्तानोंको यह समझा दिया कि शान्ति भंगके बिना भी शासक-चक्रकी नीतिका प्रतिकार करना तथा अपने लुप्तप्राय आत्मगौरवका पुनरुद्धार करना सम्भव है। जनता वस्तुत: प्रतिकारका कोई उपाय ढूँढ़ रही थी और वह उपाय भी गाँधीजीने दिखा दिया है। असहयोग वस्तुत: कार्यकारी होगा या नहीं; यह प्रश्न इस समय विचारणीय नहीं है। जनता इसपर विश्वास करती और अपने मान-सम्मानकी अपने राष्ट्रीय-जीवनकी रक्षाके लिए इसे काममें लाना चाहती है। इसीसे वह महात्मा-गाँधीको अपना पथ-प्रदर्शक समझने लगी है। यही महात्मा गाँधीकी शक्तिका मूल कारण है। × × × जनता किंकर्तव्यविमूढ़ होकर आत्मरक्षा-का मार्ग ढूँढ़ती है और महात्मा गाँधी दृढ़ताके साथ कहते हैं कि 'मुझे वह मार्ग मालूम है, मेरा अनुसरण करो।' यही असहयोगकी शक्ति है।[१]

न केवल राजनीतिक विषयोंपर अपितु सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रश्नोंपर भी पराड़करजीकी लेखनी अपना चमत्कार दिखाती, सामाजिक उत्थानकी प्रेरणा करती और सरकारकी कटु आलो-

१. 'आज' : १७ जनवरी, १९२१ के अग्रलेखसे।

चना करती। 'मद्यपान और सरकार' शीर्षक अग्रलेखका अन्तिम अंश देखिए[1]—'× × × पर क्या भारत ही, जो सदासे ही इसे बुरा समझता आया है, मद्यके सागरमें डुबा दिया जायगा, जिसमें नौकरशाहीकी आमदनी बढ़ती जाय ? अधिकसे-अधिक नियंत्रण, अधिकसे-अधिक आमदनी और कमसे-कम मद्यपान'—यह सरकारी नीतिका सारांश आपने बताया है। क्या इसका सरल अर्थ यह नहीं है कि जहाँ आमदनी घटने लगेगी वहीं सरकार मद्यपानको उत्तेजन देने लगेगी ? हमारी समझमें तो कोई दूसरी बात ही नहीं आती और इस दुर्नीतिके लिए हमारे पास तो एक ही शब्द है—धिक्कार ! सौ बार धिक्कार !! बार-बार धिक्कार !!!'

लोकमान्यकी प्रथम पुण्यतिथिपर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए पराड़कर-जीने जो टिप्पणी लिखी उसमें लोकमान्यकी राष्ट्रको देन तथा उसके चिर-स्थायी प्रभावका अंकन हुआ है—

लोकमान्यका स्वर्गारोहण : चान्द्रमासके अनुसार आज लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकको स्वर्गधाम सिधारे एक वर्ष हो गया था। एक वर्ष हुआ, आपकी देह मुम्बापुरीके सागर तटपर अनन्त प्रकृतिमें चिरकालके लिए मिल गयी। पर उनकी आत्मा हमारे साथ है। वह हमें देश-सेवाके लिए उत्साहित कर रही है। तिलकने जीवनकालमें जो काम नहीं किया था, तिलकका उदाहरण चिरकाल तक प्यारी भारतभूमिके लिए उससे कहीं अधिक कार्य करता रहेगा। तिलक, केवल तिलक ही हमारे लिए सदा लोकमान्य बने रहेंगे। जिसने इस सुजला, सुफला, मलयज शीतला आर्य-भूमिके ललाटपर लगा हुआ कलंक तिलक अपने आमरण परिश्रमी जलसे धो डालकर महात्मा गान्धीके लिए उसपर यश तिलक लगाना सम्भव कर दिया है, वह आत्मा किसी मनुष्यकी नहीं, पर इस देशकी ही है। आज भक्तिभावसे उसके श्रीचरणोंमें प्रणामकर हमें दृढ़ताके साथ कर्तव्य पथपर

---

१. वही : १० सितम्बर, १९२५के अग्रलेखसे।

अग्रसर होनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। हमें दिखा देना चाहिए कि लोकमान्यकी भौतिक देह तो पञ्चभूतोंमें मिल गयी पर उनकी आत्मा भारतके घर-घरमें वास कर रही है।[1]

पराड़करजी सर्वप्रथम देशभक्त क्रान्तिकारी थे और बादमें सम्पादक हुए। उनकी लेखनी सदा-सर्वदा विभिन्न रूपों और शैलियोंमें उसकी प्रतिध्वनि किया करती थी। निम्नलिखित टिप्पणीमें देशकी जिन तीन महान् क्रान्तिकारी घटनाओंका उल्लेख हुआ है, उन तीनोंसे पराड़करजीका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है—

खूनका प्यासा : धारवाड़के मजिस्ट्रेट श्रीपेण्टरने यहाँके 'कर्मवीर' पत्रके सम्पादक और मुद्रक श्रीयत् दिवाकर और श्रीयुत् कपूर महोदयसे कहा है कि 'मैं तुम्हारे, खूनका प्यासा हूँ।' जब तक तुम्हें कम-से-कम एक महीनेके लिए जेल न भेजूँ तब तक मेरा कलेजा ठंडा न होगा। × × × यह बात न्यायपरायण अंग्रेज़ जातिके एक बड़े कर्मचारीकी है। × × × बंगालमें जिस समय अल्पसंख्यक युवकोंने गुप्त हत्या प्रारम्भ कर दी थी, जिस समय नासिकके मजिस्ट्रेटकी हत्या हुई थी और तो क्या जिन दिनों खास दिल्ली शहरमें राजप्रतिनिधि लार्ड हार्डिज अज्ञात घातकके बमसे घायल हुए थे, उस समय भी कभी किसी कर्मचारीने ऐसी पैशाचिक बातें कहकर सिविल सर्विसको कलंकित नहीं किया था[2]।

देशकी स्वतन्त्रता तथा उसके सर्वांगीण विकासके लिए तथा संसारके पराधीन देशोंकी मुक्तिके निमित्त पराड़करजीने सहस्रों लेख तथा टिप्पणियाँ लिखीं। विदेशोंमें जहाँ-जहाँ प्रवासी भारतीय थे, उनके उद्धार तथा उन्नतिका भी उन्हें पूरा ध्यान था। प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नोंको वे सदा अपने लेख अथवा टिप्पणीका विषय बनाते। इस सम्बन्धके कई दर्जन

---

१. आज : २० जुलाई, १९२१।

२. वही : २१ जुलाई, १९२१ के अग्रलेखसे।

लेख तथा टिप्पणियाँ 'आज' की फाइलोंमें हैं। उनमेंसे कुछके शीर्षक ये हैं—पैशाचिक अत्याचार (अग्रलेख, ११ अक्तूबर, १९२५) सब रोगोंका एक निदान (अग्रलेख,१६ अक्तूबर, १९२५) केनियामें भारतवासी (तीन लेख, अगस्त, १९२१) आदि। 'सब रोगोंका एक निदान' अग्रलेख-की ये पंक्तियाँ देखिए—× × × सब वक्ताओंके कथनका सारांश यही था कि यदि प्रवासी भाइयोंको बचाना चाहते हों तो अपनी बेड़ियाँ काटो। यह सच है। रोगका सच्चा निदान यही है। हमारी सब पीड़ाओंका यही महाकारण है। यदि स्वराज्यकी उपेक्षा कर हम घरमें आपसमें लड़ते रहे तो विदेशोंमें जरूर लात खायँगे!

स्त्रियों सम्बन्धी लेखमाला

इसी प्रकार स्त्रियों सम्बन्धी लेखमाला भी अत्यन्त मार्मिक एवं प्रभाव-शाली बन पड़ी थी। भारतीय समाजमें स्त्रियोंकी दयनीय दशा देख कर आपका हृदय द्रवित हो उठता था। महिलाओंकी उन्नतिके लिए आगे चल कर उन्होंने 'कमला' नामक मासिक पत्रिकाका सम्पादन प्रारम्भ किया था। 'आज'में स्त्रियों सम्बन्धी लेखमालाकी उस समय बहुत चर्चा हुई थी और तत्कालीन समाजपर उसका यथेष्ट प्रभाव भी पड़ा था। स्त्री सम्बन्धी अनेक लेख एवं टिप्पणियाँ प्रकाशित हुईं जिनकी सूची बहुत लम्बी है। कुछ लेखों तथा टिप्पणियोंके शीर्षक इस प्रकार हैं—विधवा विवाह और वहिष्कार (२० अगस्त, १९२५) विधवा विवाहका प्रश्न (१७ अक्तूबर, १९२५) स्त्री कोई वस्तु नहीं हैं (अग्रलेख, ७ अक्तूबर, १९२५) वीर माता, वीर पत्नी और वीर भ्राता (जुलाई, १९२१) विधवा-विवाह (२० दिसम्बर, १९२८) अन्तिम लेखकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं—× × × जो रिवाज पहलेसे जारी नहीं है वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, एक ब-एक उसका समर्थन सभी या अधिक लोग नहीं करते। परन्तु जब उसके समर्थक घटनेके बदले धीरे-धीरे बढ़ते ही जाते हैं तब क्या यह भरोसा नहीं

किया जा सकता कि वह समय बहुत दूर नहीं है जब कि समाजके सभी नहीं तो अधिकांश लोग इसका समर्थन अवश्य करेंगे और समर्थन न करनेवालोंको भी बहुमत देखकर उन्हींका साथ देना पड़ेगा और इस तरह सारा समाज विधवा विवाहका समर्थक बन जायगा !

'कमला'के सम्पादनमें भी पराड़करजीकी यही भावना दृष्टिगोचर होती है। इसकें प्रकाशनका उद्देश्य स्पष्ट करते हुए आपने सम्पादकीय लिखा—

""""कमला हृदयसे चाहती है नर-नारायणकी सेवा करना। नारायणत्व प्राप्त करनेमें नरकी सहायता करना। भारतीय समाजकी रक्षा और पुष्टिके लिए नारायणका आवाहन करना। पर 'कमला' यह नहीं समझती कि नारायणका आवाहन स्तोत्र-पाठ या पूजा-वन्दनसे होता है। भूमि तैयार कीजिए तो उस पर नारायणका अवतरण आप ही होगा। हृदय शुद्ध होगा तो उसमें राम रमता ही रहेगा। अतः 'कमला' का लक्ष्य भूमिका तैयार करना होगा। इस व्यापक-लक्ष्यको ध्यानमें रखते हुए 'कमला' अपने तात्कालिक लक्ष्यको प्राप्त करनेका यत्न करेगी। 'कमला' का व्यापक उद्देश्य भारतीय समाजकी सेवा करना है और तात्कालिक नारी समाजकी सेवा। इससे हम यह बता देना चाहते हैं कि यद्यपि हमारा प्रत्यक्ष उद्देश्य तो नारी समाजकी ही सेवा करना होगा पर वह सेवा नर-नारीके हितकी दृष्टिसे ही होगी। हम नारीको ऐसी देखना चाहते हैं कि वह नरकी सहयोगिनी हो, सहायिका हो और कभी दासी हो तो कभी स्वामिनी भी। दोनोंमें संघर्ष उत्पन्न करना एकको दबा कर दूसरेको उठाना 'कमला' कभी न चाहेगी। उसी तरह वह यह कभी पसन्द न करेगी कि एक सदा दबा रहे और दूसरा सदा उसपर प्रभुत्व करे। दासत्व और प्रभुत्व दोनों ही आवश्यक हैं—एक ही में। एक दास और दूसरा प्रभु होकर रह नहीं सकते। ऐसा होनेसे दासका विनाश हो चाहे न हो, प्रभुका अवश्य होता है। अतः 'कमला' अपनी बहनोंको दासत्वकी भी

शिक्षा देगी और प्रभुत्वकी भी। दासत्व स्वेच्छासे और प्रसन्नतासे, प्रभुत्व कर्त्तव्यज्ञानसे।[1]

अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियोंका जैसा सटीक विवेचन एवं विश्लेषण पराड़करजी अपने सम्पादकीय लेखोंमें करते थे, वैसा मूल्यांकन अन्यत्र दुर्लभ होता है। द्वितीय महायुद्ध छिड़नेके पूर्व अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियोंका सिंहावलोकन करते हुए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि महायुद्ध अनिवार्य है—

महायुद्ध अनिवार्य : सब लक्षणोंको देखते हुएँ कहना ही पड़ता है कि यूरोपमें महायुद्ध अनिवार्य है। युद्धकी सामग्री बहुत बढ़ गयी है, सैनिक व्यय असह्य हो रहा है और भावनाएँ उत्तेजित हो रही हैं। हिटलर और मुसोलिनी जैसे अधिनायक (डिक्टेटर) जनताकी उत्तेजित भावनाओंकी तृप्ति किये बिना जी नहीं सकते। जिस दिन जनतामें यह सन्देह उत्पन्न हो जायगा कि अधिनायक अजेय नहीं हैं उसी दिन उनका पतन होगा। बहुत बड़ी-बड़ी आशा दिलाकर हिटलरने जर्मनोंको और मुसोलिनीने इटालियनोंको अनुरक्त कर लिया है। पर यह अनुराग तभी तक टिकेगा जबतक ये कुछ-न-कुछ प्राप्त करते रहेंगे। आजतक उन्होंने जो कहा वही कर दिखाया, इसलिए जनता उन्हें देवतुल्य मानने लगी है। अब यदि उन्हें अपने शब्द वापस लेने पड़े तो उनकी जनता ही उनका विरोध करने लगेगी और उनका प्रभाव धूलमें मिल जायगा। इससे बचनेके लिए उन्हें युद्ध करना ही पड़ेगा। यही बात है जिसके कारण हम कहते हैं कि यूरोपमें युद्ध अनिवार्य है।[2]

• पराड़करजीके ऐतिहासिक अग्रलेख

पराड़करजीके ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्वके सहस्रों अग्रलेखों तथा टिप्पणियोंका अध्ययन-मनन एवं विवेचन-विश्लेषण एक स्वतन्त्र

१. 'कमला', प्रथमांक, अप्रैल, १९३९, पृष्ठ संख्या—९१।

२. वही, जुलाई-अगस्त, १९३९, पृष्ठ संख्या—४७०।

पुस्तकका विषय है । यहाँ उनके 'आज' के प्रथम तथा अन्तिम अग्रलेखोंके उद्धरणोंके अतिरिक्त उनके ऐतिहासिक अवसरोंपर लिखे हुए अग्रलेखों-टिप्पणियोंके महत्त्वपूर्ण अंश, उनकी राजनीतिक दूरदृष्टि; उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक विचारधारा, अभिव्यक्ति, भाषा-शैली, निष्कर्षों तथा समाधान-संकेतोंके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं—

'आज' के प्रथम अग्रलेखके महत्त्वकी चर्चा पहले हो चुकी है जिसमें पत्रके आदर्श एवं उद्देश्यमूलक सिद्धान्तोंका उल्लेख किया गया है । राज-नीतिके अतिरिक्त शिक्षा तथा आर्थिक प्रश्नों सम्बन्धी नीतिकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

'× × × राष्ट्रका सर्वांग राजनीति ही नहीं है । शिक्षा विषयक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक विषयोंमें हमारी नीति क्या होगी, इसका उत्तर देना आवश्यक है । शिक्षा जिससे मानसिक उन्नति होगी, वाणिज्य व्यवसाय, कृषि आदि जिनसे आर्थिक उन्नति होगी—इन विषयोंकी सूची न देकर इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि हम देशकालके अनुकूल उचित शिक्षाके नितान्त पक्षपाती हैं । हम चाहते हैं कि देशमें सर्वव्यापक और उपयुक्त शिक्षा हो जिससे लोग अपने कर्तव्य और अपने अधिकारको पूरी तरह समझें, कर्तव्यपालनमें अपने अधिकार न भूलें और अधिकारोंपर अड़े रहते हुए भी अपने कर्तव्योंसे कदापि विमुख न हों । हमारे पत्रमें शिक्षा सम्बन्धी सब प्रकारके विचारोंको सदा सानन्द स्थान दिया जायगा । उच्च, माध्यमिक और प्रारम्भिक शिक्षाओंके प्रस्ताव हम सहर्ष छापेंगे । साथ ही साथ हमारा यह उद्देश्य रहेगा कि शिक्षा ऐसी दी जाय जिससे शिक्षित लोगोंको उपयुक्त जीविका मिलनेमें कठिनाई न हो और वे अपना जीवन सानन्द और गौरवके साथ काट सकें । व्यापार, व्यवसाय, कृषि आदिकी उन्नतिपर यह पत्र सदा जोर देगा और इनको बढ़ानेके उपायोंको बतानेका बराबर यत्न करेगा, क्योंकि हम यह मानते हैं कि बिना धनके, बिना सम्पत्तिके हमारा राष्ट्रीय जीवन निष्फल है । हमको अपना देश फिर धन-

धान्यसे पूरा करना है और प्रत्येक नर-नारीको पर्याप्त अन्न, वस्त्र और उचित आमोद-प्रमोदकी सामग्री देनी है।'

सामाजिक और धार्मिक सुधारों विषयक नीतिका स्पष्टीकरण इन शब्दोंमें हुआ है—'प्रश्न अब सामाजिक और धार्मिक सुधारों और परिवर्तनोंका रह गया है। इन विषयोंपर हमारी क्या नीति होगी? एक वाक्यमें यदि हमें बताना हो तो हम यह कहेंगे कि इन विषयोंमें भी हम स्वतन्त्रता चाहते हैं। हम यह नहीं चाहते कि किसी व्यक्तिपर उसका समाज अनुचित प्रकारसे दबाव डाले या उससे ईर्ष्याकर उसे नाश करनेका यत्न करे। हमारी हृदयसे इच्छा है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सब मतोंके सब लोग परस्पर स्नेहसे मिलें और अपना मत दूसरेपर जबरदस्ती न लादें। हम चाहते हैं कि अपने-अपने रीति-रस्मोंका अनुसरण करते हुए एक दूसरेके विश्वासोंका आदर करें और निष्कारण एक दूसरेको कष्ट न दें। हम सबको भारतकी उन्नति और राष्ट्रके वैभवको ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानना चाहिए और अपने पन्थ विशेषके अनुसरणमें यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी प्रकारसे इस महाधर्मके प्रादुर्भावमें कोई बाधा न पड़े। इस प्रकारकी स्वतन्त्रता और एकताकी सिद्धिके अतिरिक्त समाज और धर्म सम्बन्धी और कोई नीति हमारी नहीं है। हमारे पाठक जो कुछ मत, समाज और धर्मपर प्रकाश करना चाहेंगे उनको पत्रमें स्थान मिलेगा पर सम्पादकीय नीति, सामाजिक और धार्मिक अर्थात् जाति और पंथ सम्बन्धी झगड़ोंमें उदासीन ही रहेगी।'

विश्वकी सामयिक गतिविधि और देशकी आभ्यन्तरिक शान्तिके निमित्त कितनी व्यापक और दूरदर्शी नीतिका स्वरूप—निर्धारण हुआ है वह इस प्रथम अग्रलेखसे स्पष्ट है! देशकी स्वाधीनताके सत्ताईस वर्ष पूर्व ही इसमें भारतकी परराष्ट्र-नीति तथा पंचशीलकी नीतिकी अभिव्यक्ति हुई है। न केवल परराष्ट्र-नीति अपितु देशमें समाजवादी समाज-रचनाके

निमित्त मौलिक आवश्यकताओंके आधार-भूत तत्त्वों और समाजवादी व्यवस्थाकी परिकल्पना, पराड़करजीको राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय राजनीति तथा देशकी भावी स्वरूप-रचनाके सफल भविष्यद्रष्टाके रूपमें प्रतिष्ठित करती है ! देखिए—'संसारकी सामयिक गतिके सम्बन्धमें हमारा क्या विचार है । इसपर कुछ प्रारम्भमें ही लिख देना उचित होगा । नये आविष्कारोंके कारण अब पृथ्वी-मण्डलका कोई अंश दूसरे अंशोंसे पृथक् नहीं है । एक स्थानकी घटनाओंका प्रभाव अन्य प्रत्येक स्थानपर पड़ता है । एक स्थानपर दुर्भिक्ष हो तो उसका असर सब स्थानोंपर होता है । एक स्थानपर युद्ध हो तो चारों ओर हलचल मचती है । अतः इस सम्बन्धमें भी अपनी नीति कुछ बता देनी चाहिए । हमने पहले ही लिखा है कि हम स्वतन्त्रता चाहते हैं, हम अपने घरका प्रबन्ध स्वयं करना चाहते हैं । अब हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जहाँ-जहाँ स्वतन्त्रताके लिए लोग यत्न करते हैं वहाँ-वहाँ हमारी सहानुभूति है । हम यह मानते हैं कि एक जाति या देशको दूसरी जाति या देशपर अनुचित आक्रमण न करना चाहिए । संसारमें इस समय दो ही तो प्रश्न हैं । एक यह कि प्रत्येक देश स्वतन्त्र रहे, दूसरोंके आक्रमणसे सुरक्षित रहे और अपने-अपने घरका प्रबन्ध जिस प्रकार करना चाहें कर सकें । दूसरा प्रश्न यह है कि प्रत्येक देशमें आभ्यन्तरिक शान्ति हो अर्थात् स्त्री और पुरुष, पूँजीवाले और श्रमजीवी, हाकिम और महकूम, अमीर और गरीब आदिमें परस्पर उचित प्रकारसे कर्तव्य और अधिकार, काम और दाम, मिहनत और इनाम, एषणाओं और पारितोषिकोंका बँटवारा हो । सारांश यह कि ऐसा न हो कि कतिपय लोगोंको सब कुछ मिले और बहुतोंको कुछ भी न मिले । ऐसा होनेसे ईर्ष्या और द्वेष बढ़ता है तथा सुख और शान्तिका नाश होता है । हमारा पत्र इस लक्ष्यसे भी सहमत है और यह चाहता है कि मनुष्य समाजके पुनर्व्यूहनमें ऐसा उचित प्रबन्ध हो कि किसीको उचितसे अधिक और दूसरोंको साधारणकी आवश्यकताओंसे भी कम न मिले ।'

१५ अगस्त, १९४७ को जिस दिन भारत शताब्दियोंकी पराधीनताके पश्चात् स्वतन्त्र हुआ, पराड़करजीने स्वाधीन भारतके स्वरूप और उसकी समस्याओंके सम्बन्धमें यह ऐतिहासिक अग्रलेख लिखा—

विश्व-शान्तिका अग्रदूत : 'भारत आज नवयुगमें प्रवेश कर रहा है। भारत माताकी पराधीनताकी शृंखला टूट चुकी है और आज प्रत्येक भारतवासी अपनेको स्वतन्त्र अनुभव कर रहा है। इस शुभ अवसरपर केवल हम भारतवासी ही प्रसन्न नहीं हैं, सारा विश्व प्रसन्न है। संसारके पीड़ित और पददलित देश तो भारतकी ओर आशाभरी दृष्टिसे देख ही रहे हैं, रूस और अमेरिका सरीखे बड़े-बड़े राष्ट्र भी मंगल-कामना कर रहे हैं। स्वतन्त्रता दिवसके उपलक्ष्यमें अमेरिकाके राष्ट्रपति ट्रूमनने जो महत्त्वपूर्ण सन्देश भेजा है उसमें उन्होंने हार्दिक शुभकामना, सहयोग और सहानुभूतिका भाव प्रकट करते हुए कहा है कि संसारके प्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्रोंके बीच भारतको जो नया उच्च पद प्राप्त हुआ है उसका मैं स्वागत करता हूँ तथा यह विश्वास दिलाता हूँ कि हम सदैव भारतके मित्र तथा हितैषी रहेंगे। मैं जानता हूँ कि भारतका व्रत है कि सभी राष्ट्र उन्नतिशील हों और सर्वत्र शान्तिकी स्थापना हो। मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास है कि पारस्परिक विश्वास तथा आदरके आधारपर भारत संसारके पुनर्निर्माणमें आगे रहेगा। मैं मानता हूँ कि भारतकी समस्याएँ अत्यन्त जटिल हैं परन्तु उसके साधन भी असीम हैं, अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारतके नेता और निवासी अपनी समस्याएँ हल करनेमें पूर्णतः सफल होंगे। मेरी हार्दिक कामना है कि भारत अखिल विश्वकी शान्ति तथा सुरक्षाका अग्रदूत बने। अमेरिकाकी भाँति ही विश्वके अन्य बड़े और छोटे राष्ट्र भारतकी स्वतन्त्रतापर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं और उससे यही आशा कर रहे हैं कि वह विश्वशान्तिका अग्रदूत बनकर संसारमें अन्याय और शोषण, पराधीनता और अत्याचार मिटानेमें सहायक होगा। परमात्मासे प्रार्थना है कि भारत विश्वकी इन आशाओं और आकांक्षाओंकी पूर्ति

करनेमें सफल हो और दिन-दिन अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होता चले।'

स्वाधीनता समारोहके हर्ष-उल्लासमें हम कहीं अपना कर्त्तव्य न भूल बैठें, इसीलिए पराड़करजीने नये दायित्वों और विभिन्न समस्याओंकी ओर देशकी जनताका ध्यान आकृष्ट करते हुए निर्देश दिया कि हमारी सरकार शक्तिशाली न हुई तो न तो समाजवादका ही कोई मूल्य होगा और न स्वतन्त्रताका। उन्होंने लिखा—'भारत आज स्वतन्त्र हो रहा है, यह अत्यन्त आनन्द और प्रसन्नताका विषय है। इसीलिए आज हम फूले नहीं समाते। हमारी प्रसन्नता, हमारा उल्लास हमारे प्रत्येक कार्यमें स्पष्ट लक्षित हो रहा है। यह स्वाभाविक भी है परन्तु इसके साथ ही हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि आनन्दमें विभोर होकर कहीं हम अपना कर्त्तव्य न भूल बैठें। स्वतन्त्र होनेके साथ-साथ हमारे कन्धोंपर जितना भारी उत्तरदायित्व आ गया है उसे हमें न भूलना चाहिए। हमारी लेशमात्रकी भी असावधानीका परिणाम अत्यन्त घातक हो सकता है। हम जरा-सा चूके नहीं कि सर्वनाश हमारे सम्मुख उपस्थित है। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीने ठीक ही कहा है कि हमारे ऊपर बहुत भारी उत्तरदायित्व है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम हीन भावना दूर कर, शक्तिका संचय करें तथा विश्वक्रान्तिका प्रयत्न करें। अंग्रेज भारत त्याग कर, अवश्य जा रहे हैं किन्तु वे हमें दुर्बल और अशक्त बनाकर जा रहे हैं। हमें सभी प्रकारसे अपनेको शक्तिशाली बनाना होगा। बिना शक्तिशाली हुए काम चल नहीं सकता। भविष्यमें कार्य-संचालनके लिए यदि हमारी सरकार शक्तिशाली न हुई तो न तो समाजवादका ही कोई मूल्य होगा और न स्वतन्त्रताका। अन्न, वस्त्र और सुरक्षाकी समस्या, मूल्य-वृद्धि तथा भ्रष्टाचारका अन्त करनेकी समस्या, साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़ानेकी समस्या, देशहित विरोधी शक्तियोंके नियन्त्रणकी समस्या आदि न जाने कितनी समस्याएँ आज विकट रूपमें हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। उनका हल करना तत्काल आवश्यक है। हमें इस

बातका दृढ़ विश्वास है कि हमारे नेता अत्यन्त योग्यतापूर्वक इन सब समस्याओंको हल कर डालेंगे और उनके प्रयत्नसे वह दिन दूर नहीं जब भारत विश्वका अत्यन्त सुखी, सम्पन्न और समृद्ध राष्ट्र बन जायगा।'

अन्तमें भारतके उज्ज्वल भविष्य और उसके विपुल साधनोंका संकेत करते हुए पराड़करजीने आशा प्रकट की है कि एक दिन भारत विश्वका महत्तम लोकतन्त्र बन जायगा तथा वास्तविक अर्थमें विश्व शान्तिका अग्रदूत बनेगा। कहना न होगा कि स्वाधीनताके बाद विगत वर्षोंमें भारतकी जैसी नीति रही है उससे वह समस्त संसारमें शान्तिका अग्रदूत ही माना जाता है। हालमें भारत आये अमेरिकी राष्ट्रपति आइसनहावर, रूसके राष्ट्रपति वोरोशिलोव एवं प्रधान मन्त्री श्री क्रुश्चेवने भारतको इसी विशेषणसे संबोधित किया है। तेरह वर्ष पूर्व पराड़करजीकी अमर लेखनीने इन शब्दोंमें यही भविष्यवाणी की थी—'यह तो सभी जानते हैं कि भारत अपनी जन-शक्ति तथा साधनोंकी दृष्टिसे विश्वमें किसी भी देशसे कम नहीं है। अंग्रेजोंने इतने दिनों तक निरन्तर शोषण करके उसे खोखला बना दिया है सही, परन्तु फिर भी हताश होनेकी बात नहीं है। भारतकी जनशक्ति अपार है, उसके साधन अनन्त हैं। स्वतन्त्र होकर वह अपना सारा घाटा शीघ्र ही पूरा कर लेगा। कारण, अभी तक उसकी प्रगतिमें पग-पगपर बाधाएँ रही हैं। किसी भी दिशासे उसे भरपूर उन्नति करनेका अवसर ही नहीं दिया गया। आरम्भसे ही ब्रिटेनके स्वार्थके समक्ष भारतीय हितोंकी निर्ममतापूर्वक बलि दी जाती है। इस बातको निष्पक्ष अंग्रेजोंने भी मुक्त कण्ठसे स्वीकार किया है। स्वतन्त्र भारतमें ऐसी कोई बाधा न रहेगी जिसके कारण भारतकी सर्वाङ्गीण उन्नति न हो सके। भारतकी जनताने अपने त्याग और बलिदानके बलपर स्वतन्त्रता प्राप्त की है। इसीका परिणाम है कि आज सारी शक्ति जनताके हाथमें है। जनताके प्रतिनिधि ही आज जनताके लिए जनताके शासनकी बागडोर अपने हाथमें लिये हैं। इतना बड़ा लोकतन्त्र विश्वमें अन्यत्र कहाँ है? हमारा पक्का विश्वास है कि अब वह दिन

दूर नहीं जब भारत सभी दिशाओंमें उन्नति करता हुआ विश्वका महानतम लोकतन्त्र बन जायगा और केवल एशियामें ही नहीं, अखिल विश्वमें उसका महत्त्वपूर्ण स्थान होगा तथा उसके प्रयत्नसे सारे विश्वमें शान्ति स्थापित होगी।'

स्वाधीनताके एक वर्षकी स्थितियोंका वर्णन-विवेचन करते हुए पराड़करजीने कितनी मार्मिक बातें कहीं हैं—× × अन्न कष्ट, वस्त्र कष्ट, गृह-कष्ट आदि अनेक प्रकारके कष्टोंसे देश ग्रस्त हो गया है। हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रताके साथ मानव हृदयकी बहुत-सी दुर्भावनाओंको भी स्वतन्त्रता मिल गयी-सी मालूम होती है। मालूम होता है कि हम षड्यन्त्रों और भ्रष्टाचारोंसे घिर गये हैं। इसके लिए दोषी कोई नहीं है और सब हैं। हम जो यह बात लिख रहे हैं अपने आपको दोषी पाते हैं और जो हमपर शासन करते हैं वे भी निर्दोष नहीं दिखायी देते। सबसे बड़ी अपराधिनी तो वह जनता है जिसके हम भी हैं और शासक भी हैं। जनताने स्वाधीनता तो पा ली पर कर्त्तव्य-पालनकी शिक्षा नहीं पायी, इसका यह परिणाम है। जब स्वतन्त्र नागरिकके कर्त्तव्यका ज्ञान हमारे लोकसमूहको हो जायगा, सारे दोष गायब हो जायँगे, स्वराज्य रामराज्य हो जायगा, सब अपना कर्त्तव्य-पालन करेंगे तो भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट हो जायगा।

स्वराज्य मिला पर अभी सुराज्य नहीं मिला है, यह कहते हुए पराड़करजी कहते हैं कि हमें देशकी गौरव-वृद्धिके लिए प्रतिज्ञा करनी चाहिए—'एक वर्ष हो गया हमें स्वराज्य मिले। पर अभी सुराज्य नहीं मिला है। हमने स्वाधीनता पायी मनमानी करनेकी। इससे हमें कोई बाहरी शक्ति रोक नहीं सकती। अपने कर्म, अकर्म और कुकर्मके फल ही हमें राहपर ला सकते हैं। अनुभव हमें कार्यदक्षता सिखा सकता है और सिखायेगा। कलके सेनापति आज मन्त्रीका काम कर रहे हैं। इसमें उनसे भूलें होना स्वाभाविक ही है। पर इन भूलोंपर अधिक ध्यान न देकर कठिन कालमें उन्होंने जो काम किये हैं, देशको जिसप्रकार संभाला है उसका यदि स्मरण करें तो

निश्चय ही हृदय प्रसन्न होगा और भविष्य अच्छा ही दिखायेगा। हम ठोकरें खाते-खाते अपने गन्तव्य स्थानकी ओर बढ़ते जा रहे हैं। अभी यात्रा आरम्भ ही हुई है। अभी बहुत दूर जाना है, बहुत काम करना है। आज हम सबको मिलकर प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि अपने राष्ट्रके अशोक चक्रांकित तिरंगे झण्डेको कभी कलंकित न होने देंगे। वन्देमातरम्[1] !'

'आज' के तीसवें वार्षिकोत्सवके अवसरपर पराड़करजीने पत्रकारिताके उन उच्च आदर्शोंका स्मरण किया है जिसके लिए 'आज' का जन्म हुआ था और संकेत किया है कि इसके माध्यमसे हिन्दी पत्रकारितामें एक नवीन आदर्श प्रस्तुत हुआ। यह सब किस प्रकार हुआ उन्हींके शब्दोंमें सुनिए—'जिस अवतार-पुरुष, महापुरुष वा पुरुषोत्तमने विभिन्न भारतीय दर्शनों, विचारों और पन्थोंका समन्वय करके हमें ज्ञान, भक्ति और कर्मका मर्म समझाकर न केवल मोक्षका द्वार दिखाया, प्रत्युत सांसारिक कर्त्तव्योंके सम्बन्धमें भी विद्वानोंको चक्करमें डालने वाली शंकाओंका निरसन कर अन्तमें अर्जुनसे कहलाया—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत, स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।**' (हे अच्युत, तुम्हारी कृपासे मेरा मोह जाता रहा, जो ज्ञान अपनेमें है उसकी स्मृति हो गयी, मैं सन्देह-रहित हो गया—मनमें कोई शंका नहीं रह गयी। अब जो आप कहते हैं वही करूँगा) उस भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे पूत इसी तिथिको तीस वर्ष पूर्व 'आज' का जन्म हुआ था। उसी अच्युतकी दया और हिन्दी-प्रेमी जनताकी कृपासे आज वह अपनी आयुके तीस वर्ष पूरे कर इकतीसवेंमें पदार्पण कर रहा है। स्वभावतः इस समय हमें उस शान्त, गम्भीर, त्यागमूर्ति स्वर्गीय शिवप्रसादगुप्तकी याद आती है जिसने केवल देश-सेवा करानेके उद्देश्यसे 'आज' को जन्म दिया, शैशवमें प्रेमपूर्वक और साव-

---

१. **'आज' स्वतन्त्रता विशेषांक : १५ अगस्त, १९४८**

धानताके साथ उसका पालन-पोषण किया और उसके सामने एक आदर्श रखा। उनकी स्मृतिमें श्रद्धांजलि अर्पण करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। इसके बाद हमें उन लोगोंकी याद आती है जिनके शारीरिक और बौद्धिक परिश्रमसे 'आज' देशकी यत्किंचित् सेवा कर सका तथा उस गौरवका भागी हुआ जो उसे आज हिन्दी पत्र-जगत्में प्राप्त है। हमारे इस कथन-को कोई विचारशील पुरुष वा सहयोगी अहंकार न समझेगा कि 'आज' ने हिन्दी पत्रकारितामें एक नया आदर्श स्थापित करनेका यत्न किया है तथा कुछ सफलता भी प्राप्त की है। यह हमारा स्वाभाविक अभिमान है, अहंकार नहीं। बड़ोंने हमारे सामने जो आदर्श रखा उसपर चलते रहनेका हमने सदा यत्न किया है। हम यह नहीं कहते कि हमसे उसका अतिक्रम नहीं हुआ है, हुआ है और एकाधिक बार हुआ, पर उसका कारण भ्रम था और हमने उसके परिमार्जनका यत्न भी सदा किया है। यह आदर्श हमें जिनसे प्राप्त हुआ उनमें मुख्य श्री श्रीप्रकाश हैं, जो प्रारम्भमें 'आज' के सम्पादक ही थे और बादको सम्पादनका भार इस दुर्बल लेखनीपर डालकर सदा इसकी सहायता न केवल शब्दों प्रत्युत लेखों आदिसे भी करते रहे। आज आप अधिकतर विस्तृत और अधिकतर महत्त्वके कार्यक्षेत्रमें चले गये हैं, पर हम कह सकते हैं कि 'आज' अब भी आपका कृपापात्र बना हुआ है।'

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्वके सिद्धान्तोंकी चर्चा करते हुए पराड़करजीने लिखा कि हिन्द, हिन्दी और स्वतन्त्रता ये ही तीन मूर्तियाँ हमारे सम्मुख थीं किन्तु स्वाधीनताके बाद स्थितिमें परिवर्तन हुआ है। परिणामस्वरूप नये युग एवं नयी परिस्थितियोंमें नवीन राष्ट्रीय दृष्टिकोण एवं नीतिका उन्होंने प्रतिपादन किया—'हम साधारण सिद्धान्तकी बातोंपर आते हैं। जब तक भारतको स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई थी तब तक अहिंसा और सत्यका पालन करते हुए स्वतन्त्रता-प्राप्तिका यत्न करना और जनतामें सार्वजनिक विषयोंके ज्ञानका प्रसार करना हमारा उद्देश्य रहा है। हिन्द, हिन्दी और

स्वतन्त्रता ये ही तीन मूर्तियाँ सदा हमारे सामने रहीं और तीनोंकी हमने यथाशक्ति सेवा की। आवश्यक होनेपर कांग्रेसके कार्य-विशेषकी टीका करते हुए भी उसका अनुसरण करते रहे। उसकी आज्ञाओंका पालन करना-कराना अपना धर्म समझते थे, पर स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद सारा चित्रपट ही बदल गया। पुरानी समस्याएँ समाप्त होनेके साथ-साथ नयी और नये प्रकारकी समस्याएँ उपस्थित हुईं—स्वतन्त्रता अपने साथ अनेक विकट समस्याएँ लेती आयी। इसका सिलसिला आज भी जारी है। स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेके सम्बन्धमें जैसा एकमत था, स्वतन्त्रताकी समस्याओंका हल करनेके सम्बन्धमें न वैसा है, न हो सकता है। इसी कारण आजकी कांग्रेस राष्ट्रसभा होनेका दावा नहीं कर सकती। यह पद तो अब संसद्को प्राप्त है जहाँ भिन्न-भिन्न मतों, विचारों और प्रवृत्तियोंके लोग लोकाश्रय पाकर जमा होते और बहुमतसे शासन, वित्त, अर्थ, उद्योग, व्यापार, शिक्षा, समाज आदि अनेक विषयों सम्बन्धी बातोंका निर्णय करते हैं। राष्ट्रीय कहलानेका गौरव अब अर्थतः और वस्तुतः उसीको प्राप्त है। अन्य संस्थाएँ, दलों, समूहों और सम्प्रदायोंकी ही हो सकती हैं, और हैं। कांग्रेस भी इसका अपवाद नहीं है। 'आज'ने सर्वप्रथम यह बात कही थी और सारा देश इसे मानता है, अतएव केवल कांग्रेसका अनुसरण करना अब हमारे लिए सम्भव नहीं है। साथ ही हम यह भी कहेंगे कि आज राजनीतिक कर्मक्षेत्रमें जितनी भी संस्थाएँ हैं उन सबमें हमारा मत कांग्रेसके साथ ही अधिक मिलता है और हम विश्वास करते हैं कि कांग्रेसी शासन ही इस समय देशको प्राप्त संकटोंसे बचा सकता है। उसका स्थान ग्रहण कर सके ऐसी कोई अन्य राजनीतिक संस्था हमें दिखाई नहीं देती। समाजवादी दलका साधारण आर्थिक सिद्धान्त हमें स्वीकार्य है पर यह एकाएक कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। इसपर उक्त दल जो जोर देता है और केवल सिद्धान्तकी बातें कहकर जनताकी सहानुभूति प्राप्त करनेका यत्न कर रहा है, उससे हम सहमत नहीं हो पाते। यद्यपि उस दलके नेता भी

हमारे आदरणीय पुरुष हैं। उन्होंने भी गाँधीजीके विद्यालयमें शिक्षा पायी है और स्वतन्त्रता-संग्रामकी आगमें तपकर शुद्ध स्वर्ण सिद्ध हो चुके हैं।

सन् १९२० में 'आज' के प्रथम अग्रलेखमें पराड़करजीने जिस तटस्थता नीतिकी स्थापना की थी, सन् १९५० में उसीका समर्थन एवं पुष्टि कर आपने सभी देशोंसे मैत्री एवं सहयोगके महत्त्वको स्वीकार करते हुए किसी गुट-विशेषमें अथवा 'वाद-विशेष' का अन्धानुकरण अहितकर बताया है। अपने देशकी नीति हमें स्वतन्त्र रखनी है और मानवहितकी दृष्टिसे अपना कर्त्तव्य स्वयं स्थिर करना है। इसे स्पष्ट शब्दोंमें पराड़करजीने लिखा—'हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि अन्य देशोंमें वहाँकी परिस्थिति और लोक-प्रवृत्तिके कारण जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्त उत्पन्न हुए हैं उनके अन्धानुकरणसे हमारा हित न होगा। भौतिक शास्त्रोंकी तरह सामाजिक शास्त्रोंके सिद्धान्त कभी त्रिकालाबाधित नहीं हो सकते। जैसे दो और दो, चार ही हो सकता है न कम न अधिक वैसे यह नहीं कहा जा सकता कि दो सगे भाई परस्पर प्रेम ही कर सकते हैं। मनुष्यकी तरह मनुष्य समाजके नियम भी बदलते रहे हैं—और बदलते रहेंगे। इसी क्षेत्रके लिए पूर्व मनीषियोंने कहा है—**"मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना, तुण्डे-तुण्डे सरस्वती"** और **'नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्'**। यह बात भौतिक शास्त्रोंके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती। मनुष्य परमाणुओंकी तरह त्रिकालाबाधित नहीं है। अस्तु। इस सत्यका स्मरण रखकर हम कहते हैं कि पश्चिममें उत्पन्न और किसी-किसी देशमें बहुजन मान्य होनेपर भी कोई 'वाद' भारतके लिए भी हितकर ही होगा, यह कहना दुस्साहस मात्र है। सब वाद भिन्न अवस्थाओं, समाज विकासकी भिन्न-भिन्न स्थितियोंमें हितकर हो सकते हैं और विपरीत स्थितिमें अहितकर। अतएव हम न पूँजीवाद, समाजवाद वा साम्यवाद किसी एकको अपने देशके लिए हितकर अथवा अहितकर ही समझते हैं। अभी हमें सब वादोंसे भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें काम लेना होगा। एक 'वाद' के पीछे पड़ जानेसे

हानिके सिवा लाभ नहीं हो सकता। यह बात हमने पहले भी कई बार कही है और आज इस शुभावसरपर पुनः कह देना चाहते हैं। हमारी समस्याएँ बदल गयी हैं, हमारा उत्तरदायित्व भी बढ़ गया और बहुविध हो गया है, अपने और मानवहितकी दृष्टिसे हमें अपना कर्तव्य आप ठहराना है। यह कर्तव्य ठहराने और पालन करनेमें भगवान् हमारे नेताओंको समर्थ करें और हमें उस कर्ममें अपनी शक्तिके अनुसार हाथ बँटानेकी शक्ति सदा देते रहें, यही अन्तिम प्रार्थना है।[1]

पराड़करजीका अन्तिम अग्रलेख

'अमृत कुम्भ या विष कुम्भ ?' शीर्षक लेख पराड़करजीका लिखा अन्तिम अग्रलेख है। प्रयाग कुम्भकी पैशाचिक दुर्घटनामें अधिकारियोंकी प्रबन्ध-त्रुटिसे भारतकी श्रद्धाशील जनताको असहनीय कष्ट उठाने पड़े और सहस्रों नर-नारियोंको अकालमें ही काल कवलित होना पड़ा। अपने जीवन-के इस अन्तिम सम्पादकीय लेखमें भी पराड़करजीके क्रान्तिकारी विचारोंकी झाँकी मिलती है और परिचय होता है उनके साधारण जनताके हितको सर्वोपरि माननेके सिद्धान्तका। इसमें सरकारी उच्चाधिकारियोंकी तो अत्यन्त कड़ी टीका की ही गयी है साधुओं और महन्तोंके प्रदर्शनात्मक जुलूसों एवं उनके पाखण्डी स्वरूपोंकी भी भर्त्सना की गयी है। यह अग्र-लेख ८ फरवरी, १९५४ को 'आज'में प्रकाशित हुआ। इसके बाद पराड़-करजी प्रायः एक वर्ष तक नेत्र-कष्ट और शारीरिक दुर्बलताके कारण लेखादि नहीं लिख सके। इस अवधिमें स्वास्थ्यमें थोड़ा सुधार होनेपर वे कार्या-लय आया करते थे और निर्देश दिया करते थे। लेखका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

---

१. सन् १९५० में प्रकाशित 'आज' के तीसवें वार्षिकोत्सव विशेषांक-में पराड़करजीके हस्ताक्षरयुक्त लेखसे।

'मौनी अमावस्या ३ फरवरीके दिन प्रयागके कुम्भ मेलेमें जो लोमहर्षण घटना हुई उसके सम्बन्धमें वहाँसे अब लौटकर आनेवाले अपने सहयोगियों तथा अन्य स्थानीय लोगोंसे जो बातें मालूम हुई हैं और हो रही हैं उन्हें देखते हुए हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि इस दुर्घटनाका जो वर्णन समाचारपत्रोंमें सरकारी और गैर-सरकारी सूत्रोंसे प्रकाशित हुआ है उससे वस्तुस्थितिका ठीक परिचय नहीं मिलता। जो हुआ है वह अति भयंकर और अति खेदकारी है। इसके लिए यदि कोई दोषी है तो कुम्भ मेलेके सरकारी प्रबन्धक कहे जा सकते हैं। सरकारकी ओरसे बड़े-बड़े लेख सारे देशमें छपवाकर अधिकसे अधिक लोगोंको इस अवसरपर प्रयाग बुलानेका यत्न किया गया। उन्हें लानेके लिए खास ट्रेन चलायी गयी, परन्तु वहाँ पहुँचनेपर उनकी रक्षाका कोई प्रबन्ध अधिकारी न कर सके। यही नहीं, उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि क्या करना होगा। उनके पक्षमें हम अधिकसे अधिक इतना ही कह सकते हैं कि इतनी बड़ी भीड़का सुप्रबन्ध करना सम्भव भी नहीं था। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अधिकारियोंका दोष यही था कि इसकी पहले उन्होंने कल्पना ही नहीं की और अधिक लोगोंको वहाँ लानेका यत्न किया। वर्तमान समयमें रेलोंकी सुविधाके कारण साधारण स्थितिके देहाती नर-नारी बच्चों सहित ऐसे बड़े-बड़े मेलोंमें पुण्य प्राप्त करनेके लिए जमा होते हैं, परन्तु उस पुण्यका मूल्य उन्हें चुकाना पड़ेगा इसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते। इसका फल उनको हाथोहाथ भोगना पड़ा। हजारों आदमियोंको वहीं पुण्य उपार्जन करनेके लिए एकत्र लाखोंकी भीड़के पैर तले पड़कर तुरत स्वर्ग प्राप्त करना पड़ा। पैसा कमानेके लिए गये हुए सैकड़ों भिखारी वहीं संगमके तटपर सदाके लिए पैसा कमानेकी फिक्रसे मुक्त हो गये। जो मर गये वे तो गये, पर हम लोगोंके लिए एक सबक छोड़ गये हैं। यदि हम इससे लाभ उठायें तो सम्भव है कि आगामी कुम्भों या ऐसे ही मेलोंके अवसरपर ऐसी पैशाचिक दुर्घटना होने न पायेगी।'

कुम्भ-दुर्घटनाके दो मुख्य कारणोंपर प्रकाश डालते हुए पराड़करजीने सरकारी मन्त्रियों एवं उच्चाधिकारियोंके आचरणकी कठोर आलोचना की और साधुओं, महन्तोंकी कठोर आलोचना की और उनके पाखण्डी प्रदर्शनों एवं उनके असामाजिक रूपकी निन्दा की—'दुर्घटनाके कारणोंके सम्बन्धमें दो बातें विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। एक तो उच्चपदस्थ अनेक अधिकारियोंका स्वयं संगमस्नानसे पुण्य उपार्जन करनेका मोह है। उत्तरप्रदेश तथा अन्यान्य स्थानोंके भी मन्त्री वहाँ पुण्यार्जनके लिए एकत्र हो गये, परन्तु जनताके साथ मिलकर जनताके समान पुण्य उपार्जन करनेकी इनमें न प्रवृत्ति थी, न चेष्टा। ये स्नानके लिए जाते रहे तो सिविल पुलिस इनकी रक्षामें नियत हो जाती थी। इनके कैम्पोंकी रक्षामें पुलिस नियत थी। इनके स्नानके समय जनता संगम तक पहुँच भी नहीं सकती थी। जब वे लोग इस प्रकार पुण्यार्जन करके वहाँसे हट जाते थे तब जनताके लिए 'राह खुलती थी।' हम पूछते हैं कि जिन अधिकारियोंकी श्रद्धा सनातन धर्मकी इस व्यवस्थापर थी, क्या वे जनताके होकर जनताके साथ पुण्योपार्जन नहीं कर सकते थे? उनके लिए जो विशेष व्यवस्था की गयी उससे साधारण जनताको कितना कष्ट भोगना पड़ा इसकी क्या कोई भी कल्पना इन 'महा'जनों और अधिकारियोंको है? हम भारतकी श्रद्धाशील जनताकी ओरसे अत्यन्त विनयके साथ यह प्रश्न करते हैं। क्या हम आशा करें कि अमृत कुम्भको विषकुम्भ बनानेवाली इस दुर्घटनाकी जांच करनेके लिए जो त्रिमूर्ति-कमेटी बनायी गयी है वह इस बातपर भी बिचार करके निर्भयताके साथ अपना मत व्यक्त करेगी? अस्तु। दुर्घटनाका एक कारण तो अधिकारियोंकी बहती गंगामें पुण्यार्जन लिप्सा रहा। दूसरा कारण वहाँ एकत्र बड़े-बड़े साधुओं और अखाड़ोंके महन्तोंकी झाँकियाँ थीं। ये लोग सोने-चाँदीको अंबारियोंपर बैठकर संगम-स्नान करनेको पधारे थे। जब वे स्नान करने जा रहे थे तो इनके सिरपर जरदोजी कामके छत्र लगे थे। बहुतसे अवधूत अपनी अवधूतिनियोंको भी साथ लेकर जुलूस निकालते और उनके मार्गमें जो आते थे उनपर क्रोध,

अपशब्द और कदाचित् प्रहार भी करना इनका बायें हाथका खेल था। इनकी चरणरज लेनेके लिए उत्सुक नर-नारियोंकी भीड़पर इनकी क्रोध-वर्षा बराबर होती रहती थी। साधारणतः हम समझते हैं कि बहुतसे लोग इनकी पवित्र चरणधूलि लेनेके लिए इनके निकट नहीं जाते थे वरंच इनका नग्नावतार देखनेकी उत्सुकता उन्हें इन तक ले जाती थी और उसके कारण उन्हें फिर प्रहार और अभिशाप दोनों ही झेलने पड़ते थे।'

भारतीय संस्कृति और प्राचीन परम्परामें कुम्भ पर्वका वास्तविक महत्त्व एवं उपयोगिता क्या थी, इसपर प्रकाश डालते हुए अन्तमें पराड़करजीने इस धार्मिक-सांस्कृतिक मेलेमें आधुनिक कालमें आयी विकृतियोंका उल्लेख किया है—'हम पूछते हैं कि कुम्भके जो कुछ वर्णन इतिहासमें प्राप्त होते हैं उनमें कहीं ऐसे साधुओं, अखाड़ों, नग्न अवधूतों और अर्धनग्न अवधूतिनियोंके वर्णन मिलते हैं? इन दलोंकी आत्मप्रकाश प्रवृत्तियोंको उत्तेजन देते हुए मेला अधिकारियोंने इनकी रक्षाकी ओर अधिक ध्यान देकर उन लोगोंकी रक्षाका ख्याल नहीं किया जो वस्तुतः पुण्य-सलिता गंगा-यमुना-सरस्वतीकी धारामें अवगाहनमें श्रद्धा रखते हुए वहाँ अनेक कष्ट उठाकर भी एकत्र हुए थे। पर विधि-विडम्बना यह है कि जो वास्तविक श्रद्धासे वहाँ गये थे उनको ही सबसे अधिक कष्ट भोगना पड़ा। अधिकारी भी उनके ही मार्गमें व्याघातक सिद्ध हुए और तथाकथित साधु-सन्तोंके जुलूस भी उन्हींके लिए घातक हुए। इस पर्वकी यह कितनी बड़ी विडम्बना है। प्राचीन इतिहास और ग्रन्थोंके अध्ययनसे जाना जाता है कि ये पर्व पहले भारतीय संस्कृतिकी उन्नति, शास्त्र और काव्यके प्रचार-केन्द्र हुआ करते थे। देशके कोने-कोनेसे विचारशील दार्शनिक और कल्पनापुत्र कवि अपनी-अपनी रचनाएँ लेकर इन मेलोंमें पहुँचते थे। वहाँ प्रत्येककी रचनापर देश-भरके अन्य विचारशील दार्शनिक तथा कवि विचार करते थे, इनपर चर्चा होती थी और बहुतसे ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ बनाकर देशभरमें उनका प्रचार किया जाता रहा। उस समय छापेखाने नहीं थे, पर एककी रचना सारे

देशमें प्रचलित हो जाती थी। इसका साधन ये ही मेले हुआ करते थे। भारतीय संस्कृति यहीं पनपती थी। किसी एक स्थानके बहुत बड़े दार्शनिक अथवा बहुत बड़े कविकी कीर्ति सारे देशमें यहींसे फैल जाती थी। इन मेलोंका उस समय यही महत्त्व था। परन्तु अब उनका स्थान तथाकथित साधुओं, महन्तों और गुरुजनोंके प्रदर्शनने ग्रहण कर लिया है। इससे भी बड़ी खेदकी बात यह है कि जो लोग आज देश, प्रान्त और ज़िलोंके अधिकारी हैं तथा बड़ी-बड़ी संस्थाएँ जिनके प्रबन्धमें पनप सकती हैं वे भी गंगा-यमुनाके संगममें स्नान करके जनतामें अपनी कीर्ति फैलानेके उत्सुक दिखाई देते हैं। इन स्नानार्थी अधिकारियोंमें राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जैसा वस्तुतः सनातन धर्म विश्वासी और सरलचित्त अधिकारी शायद दूसरा ढूँढ़े न मिलेगा। अन्य अधिकारियोंमें अधिकतर ऐसे थे जो उपर्युक्त साधु-सन्तोंके समान संगममें स्नान करके अपनी कार्ति और प्रभाव बढ़ाना चाहते थे। हम कह सकते हैं और दुःखके साथ कहना पड़ता है कि ऊपर लिखे दो कारण गत मौनी अमावस्याके भयावने पैशाचिक काण्डके प्रवर्त्तक हुए। इन दोनोंने मिलकर अमृत कुम्भको विषकुम्भ बना दिया और देशभरके हजारों घरोंमें हाहाकार मचा दिया!'

पराड़करजीकी टिप्पणियाँ

पराड़करजीकी टिप्पणियाँ गिने-चुने शब्दोंमें प्रतिपाद्य विषयकी ओर ध्यान आकृष्टकर मार्मिक प्रभाव डालती थीं। थोड़ी-सी पंक्तियोंमें सम्बद्ध प्रश्नका समावेश तथा उसके समाधानकी दिशाका संकेत उन्हींकी सिद्ध लेखनीका चमत्कार था। यहाँ हम उनकी विभिन्न विषयोंपर लिखीं कतिपय टिप्पणियाँ उद्धृत कर रहें हैं। इनसे विदित होगा कि वे प्रसंगानुसार कितने थोड़े शब्दों तथा पंक्तियोंमें कितने महत्त्वकी बात कहते थे—

मालवीयजी महाराजका मन्त्रयज्ञ : गत मंगलवारको पुण्य नगरी काशी, सच्चे सनातन धर्मके अनुसार वस्तुतः पापनाशिनी मोक्षप्रदायिनी

बन गयी थी। उस दिन दशाश्वमेध घाटपर एक अपूर्व दृश्य दिखाई दिया जिसका दर्शन इस धर्मभूमिमें भी कई शतकों तक नहीं हुआ था। उस दिन पूज्यपाद पण्डित मदनमोहन मालवीयने सच्चे ब्रह्मतेजका परिचय दिया। करोड़ों लोगोंको परमात्माके पवित्र मन्त्रसे वंचित रखकर भी अपनेको धर्म-रक्षक कहलानेवाले शास्त्र-व्यवसायियोंकी रद्दी व्यवस्थाओंकी उपयुक्त उपेक्षा कर मालवीयजी महाराजने पहले महारुद्र यज्ञ कराया और बादमें सनातनी हिन्दूमात्रको **'ॐ नमो नारायणाय'** इस महामन्त्रकी दीक्षा देनेका महायज्ञ प्रारम्भ किया। इसका समाचार अन्यत्र प्रकाशित विवरणसे मालूम होगा। जहाँ तक हमें मालूम है परम भक्त रामानन्दके बाद इस काशी नगरीमें तीन सौ साल तक आचांडाल-ब्राह्मणके उद्धारके लिए ऐसा स्तुत्य प्रयत्न मालवीयजीके सिवा और किसीने नहीं किया था। मालवीयजी महाराजके इस सत्साहसकी, इस लोक-कल्याणेच्छाकी, इस धर्म-प्राणताकी और जातिशुभेच्छाकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही है। हमें आशा है—नहीं, नहीं, हमारा निश्चय है कि प्रत्येक हिन्दुत्वाभिमानी सनातन-धर्मी युवक और अनेकानेक वृद्ध भी आपके इस कार्यका समर्थन करेंगे और करोड़ों अछूतोंका रोम-रोम आपके कल्याणार्थ परमपितासे प्रार्थना करेगा। आपके मन्त्र प्रभावसे अछूतोंका उद्धार होगा और शतकोंसे दलित, पीड़ित और परित्यक्त जातियोंकी कृतज्ञतासे आपका शुभनाम अजर अमर हो जायगा। ('आज' : २० दिसम्बर, १९२८)

राष्ट्रपतिका स्वास्थ्य : हमारी चिन्ता यह जानकर बढ़ गयी कि गत गुरुवारको कलकत्तेमें राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादका तापमान कुछ बढ़ गया और तदनुसार कुछ कमजोरी भी बढ़ गयी। डाक्टरोंने आपको अभी और विश्राम लेनेकी सलाह दी है। परमात्मा आपको शीघ्र पूर्णारोग्य और स्वास्थ्य प्रदान करें, यह हमारी हार्दिक प्रार्थना है।

राष्ट्रपतिकी स्वास्थ्य-कामना सम्बन्धी यह टिप्पणी देश या विदेशके

किसी महापुरुषकी अस्वस्थता तथा उनके आरोग्यके निमित्त लिखी जानेवाली टिप्पणीकी आदर्श-शैली प्रस्तुत करती है।

सारी सेनाका एकीकरण : अब भारतीय सेना और रियासती सेनाका भेद नहीं रह गया। राज्यभरकी रियासती सेनाका नेतृत्व १ अप्रैलसे भारत सरकारने ही ग्रहण कर लिया है। हम समझते हैं कि अब रियासती सेनाको भी वही युद्ध-शिक्षा और वे ही शस्त्रास्त्र दिये जायँगे जो अब तक केवल भारतीय सेनाको दिये जाते थे और साथ ही उनको वेतन तथा अन्य सुविधाएँ भी समान मिलेंगी। सारी सेना हमारी है, उसपर देश-रक्षाका भार है अतएव वह हमारे गौरवकी वस्तु है। सेनाको सब प्रकारसे उपयुक्त बनाना और किसी भी बातमें दुनियाकी किसी सेनासे अणुमात्र कम न रहने देना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए।

देशमें प्रथम श्रेणीकी सेना रखी जाने, सैनिकोंको अधिकाधिक सुविधा प्रदान किये जाने, देशकी सुरक्षाके प्रश्नके महत्त्व तथा उसी संदर्भमें सैनिकोंकी प्रकारान्तरसे प्रशस्ति, इस छोटी-सी टिप्पणीमें सभीका समावेश कर दिया गया है।

सरकार और कांग्रेसका गौरव : पटनेसे हमारे संवाददाताने लिखा है कि छोआ-काण्डपर सरदार पटेलसे बात-चीत करनेके लिए बिहारके मुख्य मन्त्री डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह तथा प्रान्तीय कांग्रेसके नेता श्री प्रजापति मिश्र दिल्ली जानेवाले हैं। इसपर हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यह छोआ-काण्ड और बेतिया राज्यकी जमीनके वितरणका विषय अब साधारण राजनीतिक झगड़ेका विषय नहीं रह गया है। इन दोनोंसे बिहार सरकार तथा कांग्रेस दोनोंका गौरव मलिन हुआ है तथा जनताका हृदय कलुषित हो चुका है। अतः इन दोनों काण्डोंका निपटारा ऐसा होना चाहिए जो केवल न्याय्य न हो वरंच प्रान्तमें कांग्रेस और सरकारके प्रति श्रद्धाका पुनः उदय हो। यह कार्य नैतिक स्तरपर ही हो सकता है।

बिहारके छोआ-काण्डपर कटु शब्दोंका प्रयोग न करते हुए भी कितनी

कड़ी टीका की गयी है तथा कठोर काररवाई करनेका संकेत किया गया है। लेखनशैली तथा भावाभिव्यक्ति तो मननीय ही है।

कश्मीरकी अखण्डतापर आघात : 'कश्मीरके गिलगिट प्रान्तको पाकिस्तान सरकारने अपने सीमाप्रान्तमें मिला लिया है। यह समाचार अभी आधिकारिक सूत्रसे नहीं मिला है पर कहते हैं कि इसका उद्भव आधिकारिक सूत्रसे हुआ है। यद्यपि आज गिलगिट भारत सरकारके दायरेमें नहीं है कारण उसपर बलवाई तथाकथित आजाद सरकारका कब्जा है, पर कश्मीरकी अखण्डतासे इसका सम्बन्ध है अतएव भारत सरकार इसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। अत: इस बातका पता लगाना उसका पहला कार्य है कि यह बात सच हो तो उसे तुरन्त घोषित कर देना चाहिए कि गिलगिटको भारत कभी पाकिस्तानका अंग न मानेगा। रह गयी 'आजाद सरकार' की बात। वह कहाँतक आजाद है इसका पता इस घटनासे ही लग जाता है! उसकी भूमिकी रक्षा पाकिस्तान सरकार किस ईमानदारी और होशियारीके साथ कर रही है, यह भी इस बातसे स्पष्ट हो जाता है!' कश्मीर सम्बन्धी भारतकी नीति स्पष्ट करते हुए उसकी अखण्डताकी रक्षाके निमित्त कैसे सबल एवं सटीक तर्क दिये गये हैं तथा आजाद सरकार और पाकिस्तान सरकारकी स्थिति एवं नीतिपर कैसा मार्मिक प्रहार किया गया है, यह द्रष्टव्य है।

'रणभेरी'में लिखी पराड़करजीकी टिप्पणियाँ

काले कानूनके शिकार : सरकारी खबर है कि १४० पत्र-पत्रिकाओं-से जमानत मांगी गई है। अवश्य ही ये सब हिन्दुस्तानियों द्वारा प्रकाशित और सम्पादित पत्र हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके इस तरह मारे गये पत्रोंकी संख्या इस प्रकार है—बम्बई ३५, पंजाब २५, दिल्ली २५, मद्रास १८, युक्तप्रान्त १३, बंगाल ९, वर्मा ५, आसाम ४, सीमाप्रान्त ३, मध्यप्रान्त और बिहार १, इनमेंसे ६३ का प्रकाशन बन्द हो गया, ७ ने जमानत न

देकर सत्याग्रह किया, १५ ने जमानत दे दी और १६ की जमानत माफ-कर दी गई। असेम्बलीमें सरकारकी ओरसे बताया गया है कि प्रेस सम्बन्धी काले कानूनके मुताबिक कुल १३१ पत्र-पत्रिकाओंसे जमानत माँगी जा चुकी है और उनमेंसे ६१ का प्रकाशन बन्द हो गया है। (रणभेरी : २६ जुलाई, १९३०)

मर्ज बढ़ता ही गया : अखबारोंके दमनके लिए जब काला कानून जारी कर दिया गया तब बहुत ही कम साइक्लोस्टाइलवाले परचे निकलते थे पर जबसे इन परचोंके खिलाफ भी काला क़ानून बना दिया गया तबसे इनकी तादाद बेतरह बढ़ती जाती है। ऐसा कोई बड़ा शहर नहीं रह गया है जहाँसे एक भी 'रणभेरी' जैसा परचा न निकलता हो। अकेले बम्बईमें इस समय ऐसे एक दर्जन परचे निकल रहे हैं। शुरूमें वहाँसे सिर्फ 'कांग्रेस बुलेटिन' निकलती थी। नये परचोंके नाम भी समयानुकूल हैं, जैसे—'रिवोल्ट' (बलवा), रिवोल्यूशन (विप्लव), बलवो (गुजराती) फितूर (द्रोह), ग़दर, बगावत' 'बदमाश अंगरेज सरकार' आदि। ये परचे मराठी, उर्दू, गुजराती आदि अनेक देशी भाषाओं और विदेशी भाषा अंगरेजीमें भो निकलते हैं। दमनसे द्रोह बढ़ता है, इसका यह अच्छा सुबूत है। पर नौकरशाहीके गोबरभरे गन्दे दिमागमें इतनी समझ कहाँ ? वह तो शासनका एक ही शास्त्र जानती है—बन्दूक ! (रणभेरी : २५ अगस्त, १९३०)

बनारसके बारह वीर ! : हिन्दू विश्वविद्यालयके जिन बारह देशभक्त छात्रोंको पूनामें ४–४ मास कड़ी कैदकी सजा दी गयी है उनके शुभ नाम ये हैं—श्री तीनकौड़ी मुकर्ज़ी, श्री अजय मुकर्जी, श्री केशव चौधुरी, श्री सुधीरराय, श्री विजय चौधरी, श्री योगेश्वर पालित, श्री हिरेन्द्रराय, श्री शान्तिजीवन घोष, श्री प्रफुल्ल चक्रवर्ती, नैनीतालवाले श्री दुर्गा और फीजी टापूवाले श्री लक्ष्मण। सब वीर 'आमार देश' (बंगला गान–द्विजेन्द्र-लाल रायकृत) गाते, टकली काटते, हँसते-हँसते यरवदा जेलमें चले गये।

इनके लिए एक दिन पूनाके स्कूल कालेज बन्द रहे और गुरुवारको तिलक-मन्दिरमें छात्रोंको विराट् सभा हुई। श्री सुन्दरम्ने छात्रोंको उपदेश दिया कि आप लोग १४४ दफाको तोड़कर जेलको अपनाइए। इनके जो सहपाठी महिलाओंकी भी प्रार्थनाकी उपेक्षा करके नौकरी पानेके लालचसे आज भी क्लासोंमें पन्ने उलट रहे हैं, क्या इसपर भी उनकी आँखें न खुलेंगी। मा—दुखिया माँ उन्हें कातर कण्ठसे बुला रही है और वे 'विद्यार्जन' कर रहे हैं। कार्यके समय पीछे रहना ही क्या 'विद्या' सिखाती है? क्या महासमरके समय केम्ब्रिज और ऑक्सफोर्डके युवक भी 'विद्यार्जन' कर रहे थे?—(२४ अगस्त : १९३०)

खाये कोई, काम करे कोई। देखो घाघोंकी ठिठाई : सुनते हैं कि कभी-कभी जब पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट बहादुरान और मैजिस्ट्रेट बहादुरानको लोग कहने आते हैं कि हमको लुटेरोंसे बचाइए, तब वे यह कहते हैं कि गान्धीसे कहो कि बचावें। क्यों भाई? चौकी पहरेकी तनखाह तो खाओ तुम, टिकस तो वसूल करो तुम और रखवाली करें महात्माजी? अगर तुममें पहरा चौकीकी कूबत और वह नीयत नहीं है तो तनखाह लेना भी बन्द कर दो। हम लोग टिकस महात्माजीको देंगे और उन्हींसे अपनी रखवालीका बन्दोबस्त करा लेंगे। या उनको भी तकलीफ क्यों दें, खुद ही काम कर लेंगे। बात असल तो यह है कि जिसको हमने घरकी हिफ़ाजतके लिए चौकीदार मुकर्रर किया वह खुद ही हमारे घरमें सेंध मारने और माल उड़ाने लगा। हमको वही आँख भी दिखाता है और उलटे चोर भी बनाता है। यह जमानेकी तासीर है।

कौंसिल निर्वाचन : कांग्रेस कार्यसमितिका निर्णय है कि कौन्सिल और असेम्बलीका पूर्ण बहिष्कार किया जाय। इस ओर हम काशीके उमेद-वारों और वोटरोंका ध्यान दिलाना चाहते हैं। हो सकता है कि इस निर्णयसे सब सहमत न हों। कुछ लोग इसे घातक भी समझते होंगे। इस

विषयपर हमें बहस नहीं करनी है। प्रधान बात यह है कि यह समय युद्धका है और इस समय सबको सेनापतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिए—सहमत हों अथवा न हों। हम आशा करते हैं कि काशीवासी विजयके लिए आवश्यक इस नियमका पालन करेंगे। यदि कोई सज्जन इसके विरुद्ध जानेका यत्न करेंगे तो उन्हें उससे रोकनेका यत्न स्थानीय कांग्रेस कमेटी सब अहिंसात्मक उपायोंसे करेगी, कोई भी बात उठा न रखेगी। इसका स्मरण उन्हें रखना चाहिए। वोटरोंसे भी कमेटीकी प्रार्थना है कि वे वोट देने न जायँ।

बंगालका काला कानून : जिस काले कानूनके अनुसार बंगाल सरकार नागरिकोंको बिना विचारके चाहे जितने दिन जेलमें बन्द रख सकती है और विचारको खासा प्रहसन बना डालती है उसका कार्य-काल और पाँच साल बढ़ानेके लिए वहाँकी कौन्सिलमें बिल पेश किया गया है। आज २५ वर्षोंसे बंगाल सरकार काले कानूनोंसे षड्यन्त्रोंको दबानेका यत्न कर रही है पर वे दबनेके बदले बढ़ते ही चले जा रहे हैं। पर नौकरशाहीकी आँख नहीं खुलती। जब तक देश परतन्त्र रहेगा और नागरिकोंका मनुष्यत्व नष्ट न हो जायगा तब तक षड्यंत्र और भीषण रक्तपात होता ही रहेगा। यह रुक सकता है शान्तिमय सविनय अवज्ञासे। पर इसका प्रारम्भ होते ही खुद नौकरशाही रक्तपात करने लगती है—और वह भी शान्तिके नाम!

(रणभेरी, १४ अगस्त, १९३०)

पराड़करजीके सम्पादकीय लेखों तथा टिप्पणियोंके इन उदाहरणों और उद्धरणोंसे उनकी एतद्विषयक प्रतिपादन, विषय-स्थापना एवं विवेचनात्मक शैलीका संक्षेपमें यहाँ परिचय प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः पराड़करजीके सहस्रों अग्रलेखों तथा टिप्पणियोंका विषयक्रमसे संग्रह कर उनका अनेक खण्डोंमें प्रकाशन, राष्ट्रभाषा हिन्दीके साहित्य-भण्डारकी श्रीवृद्धिके निमित्त अत्यन्त आवश्यक है।

समाचारपत्रोंका आदर्श

पराड़करजीने सन् १९२५ में वृन्दावन हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके अवसरपर प्रथम सम्पादक-सम्मेलनके सभापति पदसे जो भाषण किया उसका भारतीय पत्रकारिताके इतिहासमें स्थायी महत्त्व है। आजसे पैंतीस वर्ष पूर्व इसी सम्मेलनमें पराड़करजीने भारतीय पत्रकारिताके विकास तथा भविष्य सम्बन्धी जो परिकल्पना की थी, वह आज एकदम सत्य और प्रत्यक्ष हो गयी है। इस भाषणमें आपने जिन मुख्य विषयोंकी ओर सम्पादकों और पत्रकारोंका ध्यान आकृष्ट किया है वे ये हैं—(१) सम्पादकका आदर्श, (२) समाचारपत्रोंका जन्म, (३) सम्पादकोंका वय : सन्धिकाल और कर्त्तव्य, (४) समाचारपत्रोंके अधिकाधिक प्रचारके आधार तत्त्व, (५) हिन्दी सम्पादकोंका गुरुतर दायित्व, (६) तब और अबके सम्पादक, (७) पत्रकारिताके नये मोड़, (८) सम्पादकोंका भविष्य, (९) पत्रकारिताका सच्चा धर्म, (१०) सफल सम्पादक बननेके लिए, और (११) सम्पादक समितिके कार्य। इसमें समाचारपत्रके आदर्शकी तो सभी प्रधान बातें आ ही गयी हैं, सफल सम्पादक बननेके रहस्योंपर भी पराड़करजीने प्रकाश डाला है। आपने सन् १९२५ में ही भविष्यवाणी कर दी थी कि समाचारपत्रोंका प्रकाशन आगे चलकर उद्योग हो जायगा जिससे सम्पादकोंकी स्वतन्त्रता बहुत सीमित हो जायगी। भारतीय विशेषतः राष्ट्रभाषा हिन्दीकी पत्रकारिताके स्वरूप, उसकी विविध समस्याओं और उनके समाधानोंका इसमें मननीय विवेचन एवं विश्लेषण हुआ है।

यह महत्त्वपूर्ण भाषण इस प्रकार है—आदरणीय भाइयो, जिस स्थानपर आपने मुझे बैठा दिया है, उसके लिए मैं अपनेको सर्वथा अयोग्य समझता हूँ। यह केवल औपचारिक बात नहीं है जो प्रत्येक सभापतिको एक-न-एक रूपमें कहनी पड़ती है। सम्पादकका आदर्श मेरे सामने बहुत ही उज्ज्वल और ऊँचा है तथा उससे जब मैं अपनी तुलना किया करता

हूँ तब अपनेको अति तुच्छ पाता हूँ। इसका अनुभव भी मुझे प्रतिक्षण मिला करता है। यही कारण है कि मैंने अपने प्रायः बीस वर्षके सम्पादकीय जीवनमें कभी सर्वसाधारणमें आनेका साहस नहीं किया। सभा समितियोंसे भी यथासम्भव अलग ही रहनेका प्रयत्न करता रहा। मेरे कतिपय गुरु-जनों और मित्रोंके सिवा मेरा नाम भी बहुत कम लोगोंने सुना होगा। पण्डितराज जगन्नाथका यह उपदेश कि यदि तुममें प्रकृत काव्यशक्ति हो तो उसे प्रकट करो—"**नो चेद् दुष्कृतमात्मना कृतमिव स्वान्ताद्बहिर्मा कृथाः,**" मैं अपने जैसोंके लिए ही समझता रहा और स्वकृत पापके समान अपने आपको ही छिपाये रखनेकी चेष्टा करनेमें कभी त्रुटि न होने दी। इसका कारण और कुछ नहीं, अपनी अयोग्यताका अनुभव ही है। जब सम्पादकोंके लिए नाम प्रकाशित करना क़ानूनने आवश्यक कर दिया और मेरे मित्र श्री श्रीप्रकाशजी अनेक सार्वजनिक कार्योंसे समय न मिलनेके कारण 'आज'के सम्पादनसे अलग हो गये तथा यह भार मुझपर गिरा तबसे मैं डरते-डरते अपना नाम प्रकाशित करने लगा। मुझे आश्चर्य तो यह था कि श्रद्धेय पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी, पण्डित माधवराव सप्रे, मेरे सुयोग्य मित्र पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा और अनेक कृतकार्य सम्पादकोंके रहते यह पद ग्रहण करनेका अनुरोध मुझसे क्यों किया गया। मैं समझ गया कि '**अभावे शालिचूर्णं वा**' न्यायसे मुझे ही यह कार्य करना पड़ेगा। इतने बड़े आदरसे मुँह मोड़ना भी प्रतिभाशाली पुरुषोंका ही कार्य है, यह मुझसे न हो सका। नम्रतापूर्वक आपके सामने उपस्थित हो गया। अब भरोसा केवल आप लोगोंके भ्रातृ प्रेमका है। आशा है, इससे निराश न होना पड़ेगा।

इस पराधीनताकी अवस्थामें हमारे सब काम कृत्रिम हुआ करते हैं। स्वाभाविक तो यह है कि पहले अभावका अनुभव हो, आवश्यकता उत्पन्न हो जाय और बाद उसकी पूर्त्तिके लिए संस्था स्थापित की जाय। ऐसी संस्था देखते-देखते सफल हो जाती है। इस नियमके अनुसार ही संसारमें समाचारपत्रोंका जन्म हुआ था। और देशोंकी बात तो मैं नहीं जानता

इंग्लिस्तानमें इसका वस्तुतः क्रम-विकास हुआ है। लन्दनसे दूर रहनेवाले अमीर उमरा शाही दरबारके समाचार जाननेके लिए अपने संवाददाता रखते थे। ये उन्हें प्रति सप्ताह वा प्रतिमास दरबारके समाचार लिख भेजते थे। अनन्तर इस तरहके पत्र भेजनेकी वृत्तिके ही कुछ लेखक उत्पन्न हो गये जो हम सम्पादकोंके आदिपुरुष कहे जा सकते हैं। ये लोग एकाधिक सरदारोंको पत्र भेजने लगे। इससे सरदारोंको कम खर्चमें अधिक समाचार मिलने लगे और पत्र लेखक किसी एककी नौकरी न करके भी अधिक धन उपार्जन करने लगे। इंग्लिस्तान तथा यूरोपके अन्य देशोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण सरदार लोग यूरोपीय समाचार जाननेके लिए भी उत्सुक रहा करते थे। उत्साही लेखक उनकी यह इच्छा भी पूर्ण करने लगे। मुद्रायन्त्रके आविष्कारके बाद पत्र छापकर भेजे जाने लगे। अनन्तर बाजारमें बेचे जाने लगे। इस प्रकार समाचारपत्रोंका जन्म हुआ। मुद्रायन्त्र, तार और कागज बनानेके कारखानोंकी उन्नतिके साथ पत्रोंकी भी उन्नति हुई। रेल, जहाज और डाक विभागसे भी सहायता मिली। इसीका फल यह है कि समाचारपत्र राज्यके चतुर्थ अंग समझे जाने लगे। इस स्वाभाविक क्रमसे वहाँ समाचारपत्रोंका विकास हुआ। पराधीन भारतमें उल्टी गंगा बहने लगी। इंग्लिस्तानकी नकल करके यहाँ पहले पत्रोंकी सृष्टि की गयी और बाद उनकी आवश्यकता उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया जाने लगा। यही कारण है कि स्वर्गवासी पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र आदि हिन्दीके आदि सम्पादकोंको लेखन, कम्पोज और मुद्रणके सिवा कभी-कभी ग्राहकोंके घर जाकर पत्र पढ़कर भी सुनाना पड़ता था। यह व्यापारी ढंग है। उत्साही व्यापारी जिस प्रकार नया माल बनाकर उसकी आवश्यकता उत्पन्न करता है उसी प्रकार हमें पत्र निकालकर उसके पढ़नेकी रुचि उत्पन्न करनी पड़ी। जिस ढंगसे यहाँ समाचारपत्र निकले उसी ढंगसे सम्पादक समिति भी स्थापित हो रही है। परमात्माकी प्रेरणा और आप लोगोंके प्रयत्नसे वह भी सफल हो जायगी।

यह युग ही परिवर्तनका है। समस्त संसारमें कुछ तो क्रमशः स्वाभाविकताके साथ और कुछ हठात् बलपूर्वक परिवर्तन हो रहा है। इस समय अचल कोई नहीं रह सकता। अचल रहनेकी चेष्टा करना ही आत्म-विनाश कर लेना है। (अवश्य ही मैं दार्शनिकोंकी आत्माकी बात नहीं कह रहा हूँ) इस परिवर्तन चक्रमें हमारे समाचारपत्र भी पड़े हैं। चाहे तो इसे वयःसन्धि कहिये। बाल्य समाप्त ही होना चाहता है। यौवनकी झलक दिखाई देने लग गयी है, पर बाल्यकालका चांचल्य और सारल्य अभी गया नहीं है। लड़कपनका काल्पनिक स्वराज्य अथवा मनोराज्य अभी कुछ अंशोंमें उपस्थित है, यौवनकी दूरदर्शिता और अध्यवसाय अभी पूर्ण रूपसे प्रकट नहीं हुआ है।

अभी हम संसारको लीला समझते हैं, अभी वह जीवन-मरणकी जटिल समस्या नहीं बन गया है, अभी हम ब्रजभूमिमें हैं, मथुरा नहीं पहुँचे हैं। मथुरा दूर भी नहीं है। मथुराके गुप्तचरोंको हमारा पता लग गया है। वे हमारे पीछे पड़ गये हैं। ब्रजमें ही हमें भावी जीवनकी जटिलताका, कठिनताका और क्रूरताका परिचय मिलने लग गया है। लड़कोंकी भाँति हम नित्य नये दुर्ग बनाते हैं और ढाह देते हैं—प्रायः वे आपही गिर जाते हैं। गिरकर हमें रुलाते हैं पर निरुत्साह नहीं करते। दूसरे दिन हम फिर उसी जगह और उसी रेतीली नींव पर नया किला बनाने लग जाते हैं। अनुभवसे कुछ सीखते नहीं, कठिनाइयोंसे डरते नहीं, विफलताओंसे हताश भी नहीं होते। हम हिन्दी सम्पादकोंका सचमुच यह वयःसन्धिकाल है, उत्साहमय है पर उद्देश्यहीन है। हम कुछ चाहते हैं, उस प्रिय वस्तुके लिए हृदय व्याकुल भी होने लग गया है पर मालूम नहीं ठीक क्या चाहते हैं और वह कैसे मिलेगी। मधुकरीवृत्तिसे अल्पधन संग्रह कर दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक-पत्र सफलतापूर्वक चला देना हमारे होनहार सम्पादक बाँयें हाथका खेल समझते हैं। अपने छोटे भाइयोंका यह उत्साह देखकर हम प्रफुल्ल होते हैं पर उनका शीघ्र ही

विफल होना अवश्यम्भावी जानकर मन ही मन दुःखित भी होते हैं। बात यह है कि आज हिन्दीमें कई अच्छे दैनिक, साप्ताहिक और मासिक-पत्र चल रहे हैं। उनकी सफलता ही नये पत्रोंकी विफलताका कारण होती है। वर्षोंके परिश्रम और हानिके बाद जो पत्र यह श्रेष्ठ स्थान पा चुके हैं उन्होंने पाठकोंकी रुचि भी बदल दी है। अब इससे घटिया माल बिक नहीं सकता। ऐसा ही माल बनानेके लिए जिस पूँजी और संघटनकी आवश्यकता है वह मालिक सम्पादकके पास हो नहीं सकती। थोड़ी पूँजीपर पत्र निकालनेवाले अल्प समयमें ही हताश हो जाते हैं। गाँठकी खोकर हिन्दी पाठकोंके निन्दक बन जाते हैं। प्रतियोगिताका तत्त्व समझते नहीं। अपरिणामदर्शिताका फल भोगते हैं।

सब अकृतकार्य भी नहीं होते। विफलता प्रायः उनको मिलती है जिनका उद्देश्य सत् होता है और सन्मार्गसे विचलित न होकर ही जो सफलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। पत्र निकालने और उसे अपने खर्चसे चलानेमें कितने धनकी आवश्यकता है, इसका ठीक अनुमान न कर सकनेके कारण वे जीवन-संग्राममें टिकने नहीं पाते। ऐसे मालिक सम्पादकोंके लिए हम सब दुःखित हैं पर सभी विफल नहीं होते। थोड़े ऐसे भी हैं जो विपरीत अवस्थामें भी कुछ सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उनका अध्यवसाय और परिश्रम अनुकरणीय है पर उनके साधनोंकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। मनुष्य स्वभावकी हीनवृत्तियोंको उत्तेजन देकर, हिंसा-द्वेष फैलाकर, बड़ोंकी निन्दा कर, लोगोंकी घरेलू बातोंपर कुत्सित टीका-टिप्पणी कर, आमोद-प्रमोदका अभाव अश्लीलतासे पूर्ण करनेकी चेष्टा कर तथा ऐसे ही अन्य उपायोंसे भी पत्रकी बिक्री बढ़ायी जा सकती है। धनियोंको रहस्य-भेद करनेकी धमकी देकर, महामूर्ख धनीकी प्रशंसाके पुल बाँधकर तथा स्वार्थ विशेषके लोगोंके हित-चिन्तक बनकर भी रुपया कमाया जाता है। कम्पनियाँ बनाकर हिस्सेदारोंको धोखा दिया जा सकता है। देशभक्त बनकर भी स्वार्थ-सिद्धि की जा सकती

है। यद्यपि हिन्दीमें ऐसे सम्पादकोंकी संख्या कम है पर खेदके साथ कहना पड़ता है कि कुछ ऐसे स्वार्थी भी कार्य-क्षेत्रमें उतर आये हैं और सम्पादन कार्य्यका गौरव नष्ट करने लग गये हैं। इस नये पर बढ़नेवाले रोगसे आत्म-रक्षाका प्रयत्न करते रहना हम सम्पादकोंका कर्त्तव्य होना चाहिए। मनुष्य स्वभाव जब तक वही रहेगा जो है तब तक ऐसे लोग भी इसमें रहेंगे। यह रोग ठहरनेके लिए आया है, निर्मूल कभी न होगा। इसीसे मैंने कहा कि प्रयत्न करते रहना चाहिए। चेष्टा न करनेसे रोग संक्रामक हो जायगा। भावी सम्पादकसमितिका यह भी एक कार्य होना चाहिए।

हमारे समाचारपत्रोंकी वर्तमान अवस्था यद्यपि सन्तोषजनक नहीं है पर भविष्य उज्ज्वल है। पर यही बात सम्पादकोंके भविष्यके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती, इसका कारण मैं आगे चलकर बताऊँगा। पहले पत्रोंका प्रचार अधिक न होनेके कारणोंपर विचार करना आवश्यक है। मेरी अल्पमतिके अनुसार इसके प्रधानतः तीन कारण हैं—(१) पत्रोंका समाजके प्रतिबिम्ब न होना, (२) धनाभाव और (३) जनतामें विशेषकर हिन्दी-भाषियोंमें साक्षरताका अल्प प्रचार। पत्रोंका समाजके प्रकृत जीवन-से सम्बन्ध न होनेको मैं सबसे बड़ा बाधक कारण इसलिए समझता हूँ कि इसके निराकरणका उपाय बहुत कुछ हमारे ही हाथमें है पर हम उधर ध्यान नहीं देते। समाचारपत्र समाजका प्रतिबिम्ब भी होना चाहिए और उसे अपने पाठकोंके सामने उच्च आदर्श भी रखना चाहिए। समाज-की प्रकृत अवस्थाका वर्णन, गुणदोष-विवेचन, सुधार मार्ग-प्रदर्शन और मनोरंजन ये सब समाचारपत्रोंके कर्त्तव्य हैं। आजकल हमारे अच्छे सम्पा-दक आदर्शकी ओर ही अधिक ध्यान देते हैं, अपने पत्रको समाजका प्रति-बिम्ब बनानेकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते। विदेशी और अर्द्ध-विदेशी समाचार-समितियाँ जो समाचार देतीं हैं वे ही हमारी टीका-टिप्पणियोंके विषय होते हैं। समाचार-संग्रहके हमारे अपने स्वतन्त्र साधन नहीं हैं।

जो समाचार उपयुक्त समाचार-समितियोंसे मिलते हैं प्रायः वे लड़ाई-झगड़ोंके और ऊपरी आन्दोलनोंके ही होते हैं। और प्रायः नौकरशाही रंगमें रंगे होते हैं। हम और गहरे जानेका प्रयत्न नहीं करते। हमारे पाठक किन-किन श्रेणियोंके हैं, उनकी रहन-सहन कैसी है, उनकी जीविकाके साधन क्या हैं, उनको जीवन-संग्राममें किन-किन कठिनाइयोंसे सामना करना पड़ता है, उनका आमोद-प्रमोद क्या है, उनकी रुचि कैसी है, वे क्या सोचते हैं और क्या चाहते हैं, इन बातोंका हम सम्पादकोंको बिलकुल पता नहीं रहता। यदि मेरे किसी आदरणीय भाईको इन बातोंका ज्ञान हो भी तो उसे कार्यमें परिणत होते देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। इन बातोंका हम पता लगाया करें, लोगोंको वही समाचार दें जो वे चाहते हैं और उनके जीवन-संग्राम-में सहायक बननेका प्रयत्न करें तो हमारे पत्रोंका प्रचार देखते-देखते बढ़ जायगा, समाचारपत्र पढ़ना लोगोंके नित्य जीवनका एक अंग हो जायगा। यह अभाव केवल हिन्दी-पत्रोंमें नहीं है, इंडो-इंग्लिश, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि जिन-जिन भाषाओंके पत्र देखनेका अवसर मुझे मिला है, उन सबमें यह दिखाई देता है। इण्डो-इंग्लिश पत्र तो केवल रायटर और असोशियेटेड प्रेसके तारों तथा कुछ निज संवाददाताओंके भेजे हुए वैसे ही समाचारों और चिट्ठियोंसे भरे रहते हैं और विदेशी पत्रोंसे लेखादि उद्धृत करके सहजमें ही अपने-अपने बृहत् कलेवर भर लेते हैं। समाचारपत्रोंके तार अंग्रेजीमें ही भेजे जा सकते हैं, अधिकारियों और अधिकतर नेताओंके व्याख्यान भी अंग्रेजीमें ही होते हैं। इससे भी उनका कार्य हमसे कहीं सहज हो जाता है। उलथा करना वैसे ही कठिन कार्य है तथा नित्य आविष्कृत होनेवाले नये-नये विदेशी शब्दों, भावों और विचारोंके कारण वह और भी कठिन हो गया है। इस झंझटसे इण्डो-इंग्लिश पत्र बचे रहते हैं। उनके सम्पादकों और उपसम्पादकोंकी विद्या-बुद्धि प्रकट हो जाने-की आशंका बिलकुल नहीं रहती। हम लोगोंको यह भय सदा अस्थिर किये

रहता है। नये-नये शब्द बनानेका प्रयत्न विशेष रूपसे करना पड़ता है। अपने पत्रकी भाषा और अंगरेजी दोनोंका अच्छा ज्ञाता हुए बिना भारतीय भाषाके पत्रोंका उपसम्पादक तो क्या संवाददाता होना भी कठिन है। अंग्रेजी पत्रोंका कार्य सहज होनेपर भी वे समाजके भीतर घुसनेका प्रयत्न नहीं करते। सम्भवतः उनके लिए इसकी आवश्यकता भी नहीं है। उनमें जो कुछ छपता है उसीसे उनके अंग्रेजी शिक्षित भारतीय पाठकोंके कृत्रिम जीवनकी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं, वे उसीसे सन्तुष्ट हो जाते हैं।

हम हिन्दी सम्पादकोंका कार्य बहुत कठिन है। गोंददानी और कैंची हमारी सहायता नहीं कर सकती, करती भी है तो बहुत कम। हमारा सम्बन्ध केवल उन लोगोंसे नहीं है जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पाकर भारतीय समाजसे, एक प्रकारसे, सम्बन्ध त्याग कर दिया है। उनके कृत्रिम जीवनकी आवश्यकताएँ इन कृत्रिम इंडो-इंग्लिश पत्रोंसे पूरी हो जाती हैं। हमारा सम्बन्ध प्रत्यक्ष समाजसे है और उसका चित्र हम कहींसे चुराकर नहीं ला सकते। वह हमें स्वयं खींचना पड़ेगा। इसमें हम जितनी कुशलता दिखा सकेंगे, जितनी अधिक गहराईमें जायँगे, उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त होगी। अंगरेजी पत्रोंकी सहायतासे, सनसनी पैदा करनेवाले समाचारोंके चित्र-विचित्र आविष्कारोंसे, बड़े-बड़े और रोंगटे खड़े कर देनेवाले शीर्षकोंसे कुछ सफलता अवश्य मिलती है। मेरा अनुमान है कि इन साधनोंका जितना प्रयोग किया जा सकता है उतना हम कर चुके हैं, इनसे अब और अधिक सफलताकी आशा नहीं की जा सकती। राजनीतिक धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनोंसे भी हम बहुत लाभ उठा चुके हैं, उठा रहे हैं और उठाते रहेंगे। पर इन आन्दोलनोंसे सम्बन्ध रखनेवालोंकी संख्या अधिक नहीं है। हम जब तक साधारण समाजको न अपनावेंगे और अपने पत्रोंको उसके प्रतिविम्ब न बना सकेंगे तब तक न हमारी ही उन्नति होगी और न हम प्रकृत देश सेवा ही कर सकेंगे। अमेरिका और इंग्लिस्तानके दैनिकपत्र देखनेका अवसर मुझे मिला करता है, उन्हें देखकर आश्चर्य

होता है। प्रत्येक श्रेणीके और हरेक पेशेके स्त्री-पुरुषोंके कामकी और मनोरंजनकी बातोंसे वे भरे रहते हैं। वे इतने बड़े होते हैं कि एक आदमी १६ घण्टेमें एक पत्र आदिसे अन्त तक पढ़ नहीं सकता। अपने-अपने कामकी अथवा आमोदकी साधारण बातें ही पढ़कर लोग दैनिक पत्र फेंक देते हैं। हमारे पत्र भी यदि ऐसे हों तो उनके ग्राहक विलायती पत्रोंके ग्राहकोंकी अपेक्षा दुगने हो सकते हैं। जिस भाषाके बोलनेवालोंकी संख्या १२ करोड़से अधिक हो उसके एक भी दैनिक पत्रके ग्राहक पचीस हजार न हों, यह वस्तुतः हम सम्पादकोंके लिए लज्जाकी बात है। इसके लिए पाठकोंको दोष देना व्यर्थ है। समाचार पढ़नेकी रुचि उत्पन्न करना भी हो तो हमारा ही काम है। इसके लिए आज तक हमने जो कुछ किया है वह प्रशंसनीय है, पर हमारे प्रकृत कार्यका अभी आरम्भ भी नहीं हुआ है। यदि कुछ उत्साही लेखक और कार्यकर्त्ता मिलकर पहले एक ही जिलेका अच्छी तरह अध्ययन करें, प्रत्येक तहसील और बड़े-बड़े ग्रामोंमें शिक्षित और चतुर संवाददाता नियुक्त करें और ग्राम-ग्राममें पत्र पहुँचानेके साधनोंका प्रबन्ध करके एक साप्ताहिक पत्र निकालें, वह पत्र प्रधानतः अपने ही जिलेके समाचारोंको छापा करे, अपने पाठकोंके सामाजिक जीवनका चित्र खींचा करे, उनके सुख-दुःखकी प्रतिध्वनि किया करे, साथ-ही-साथ उन्हें थोड़ेमें अखिल भारतीय और जगद्व्यापी प्रश्नोंका भी परिचय देता रहे तो निस्सन्देह उसका प्रचार एक ही जिलेमें इतना अधिक होगा जितना आजकलके अच्छे-अच्छे हिन्दी पत्रोंका प्रचार सारे भारतमें नहीं है। एक अनुभवी सम्पादक, तीन-चार सुशिक्षित और तरुण सहायकों और अनेक विश्वासभाजन तथा सूक्ष्मदर्शी संवाददाताओंका यह काम है। तीन-चार सहायकोंका कार्यालयमें बैठकर ही काम करना आवश्यक नहीं है। ऐसे साप्ताहिकके लिए कार्यालयमें एक सहायक यथेष्ट है; अन्य सहायक भिन्न-भिन्न तहसीलोंमें रहें, वहाँके संवाददाताओंकी निरीक्षण भी करें, सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखें और पत्रके प्रचारमें व्यवस्थापककी भी सहायता करें। इस प्रकारका

संघटन करनेमें समय लगेगा पर सफलता भी आशातीत होगी। वह पत्र सच्चा समाचारपत्र होगा।

संघटनमें समय लगेगा और धन भी। परिश्रमी कार्यकर्त्ता मिल जायँगे पर यथेष्ट मिलना कठिन है। इसलिए धनाभावको मैंने पत्रोंके प्रचारका दूसरा बाधक कारण बताया है। मालिक-सम्पादकका समय गया। इसके लिए हम दुःखित अवश्य हैं क्योंकि हमारी स्वतन्त्रता कम हो रही है तथा और भी होगी। परन्तु हमें यह जानकर सन्तोष मान लेना चाहिए कि यह हमारे ही परिश्रमका स्वाभाविक फल है। पहलेके सम्पादकोंकी तरह आज हमें कम्पोज, मुद्रण और वितरण नहीं करना पड़ता है। पत्रोंका प्रचार बढ़ जानेके कारण स्वभावतः श्रम विभागभी हो गया और भिन्न-भिन्न लोग यह सब काम करने लग गये। पूर्व सम्पादकोंके ही परिश्रमका यह फल है कि आज हिन्दीमें कई दैनिक पत्र सफलतापूर्वक निकल रहे हैं। पर उनकी स्वतन्त्रता हमें उस समय भी प्राप्त नहीं थी जब सन् १९०६ ईस्वीमें मैं 'हिन्दी वंगवासीका'का सहकारी सम्पादक बनकर कलकत्ते गया था। पत्रोंकी उन्नतिके साथ-साथ श्रम विभाग हो गया था। मुद्रक और व्यवस्थापककी स्वतन्त्र सृष्टि हो गयी थी और उसी परिमाणमें सम्पादक परमुखापेक्षी बन गये थे। अब अधिक विभागका समय आ गया है। पत्र निकालनेका व्यय इतना बढ़ गया है कि लेखक केवल अपने ही भरोसे इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। धनियोंका सहयोग अनिवार्य हो गया है। दस जगहसे अर्थ संग्रह कर आप कम्पनी बनावें अथवा एक ही पूँजीपति पत्र निकाल दें, सम्पादककी स्वतन्त्रतापर दोनोंका परिणाम प्रायः एक-सा ही होता है।

अस्तु। कहनेका तात्पर्य यह है कि पत्रोंकी उन्नतिके साथ-साथ पत्रोंपर धनियोंका प्रभाव अधिकाधिक परिमाणमें अवश्य पड़ेगा। अभी तो धनी अपने अप्रत्यक्ष स्वार्थसे अथवा, क्वचित्, शुद्ध देशभक्तिसे प्रेरित होकर इस काममें धन लगाते हैं। आर्थिक दृष्टिसे समाचारपत्रोंकी सफलता दृष्टि-गोचर होते ही व्यापारी इसमें लाभ करनेकी दृष्टिसे पड़ने लग जायँगे।

यह भी हमारे ही परिश्रमका स्वाभाविक परिणाम होगा। समाचार-संग्रहके लिए जितना ही अधिक व्यय किया जायगा, पत्रके ग्राहक उतने ही बढ़ेंगे। ग्राहक बढ़ेंगे पर सारा खर्च उनसे वसूल न हो सकेगा। वैसा करनेसे मूल्यकी अधिकता प्रचारमें बाधक होगी। व्यय बढ़ाना व्यर्थ हो जायगा। अंगरेजीके बड़े-बड़े समाचारपत्र, क्या भारतमें और क्या भारतके बाहर, लागतसे कम दाममें ग्राहकको दिये जाते हैं। हिन्दी पत्र भी लागतकी चरम सीमा तक पहुँच गये हैं। अब यह आवश्यकता हो गयी है कि मूल्य लागतसे कम किया जाय। अर्थात् पत्रके व्यय और लाभके लिए विज्ञापनोंकी आयपर हमें अधिकाधिक निर्भर रहना पड़ेगा। यह निर्भरता जितनी ही बढ़ेगी उतनी ही लेखनपटु सम्पादककी स्वतन्त्रता घटेगी और कार्यकुशल व्यवस्थापककी बढ़ेगी। बड़े-बड़े विज्ञापन दाताओंकी सहायताके बिना बड़े-बड़े पत्र निकल नहीं सकते। विज्ञापनोंसे होनेवाला लाभ व्यापारियोंके ध्यानमें जितना ही अधिक आता है वे उतना ही अधिक विज्ञापन देते हैं और समाचारपत्रोंपर अधिकार जमानेका प्रयत्न भी करते हैं। अन्य व्यापार करनेवाले सज्जन अपने कार्यमें सहायता पानेके लिए स्वतन्त्र पत्र भी निकालते हैं। कुछ दिनके बाद साधारण विज्ञापन दाताओंका अर्थात् पूँजीपतियोंका इतना अधिक प्रभाव पत्रोंपर पड़ता है कि उनकी सहायताके बिना पत्र निकालना सर्वथा असम्भव हो जाता है। इसका बहुत अच्छा उदाहरण लण्डनका 'डेली-हेराल्ड' है। ब्रिटेनके सुसंघटित बहुसदस्य सम्पन्न और प्रभावशाली श्रमजीवी दलका यह एकमात्र दैनिक पत्र है। इसके ३॥ से ४ लाख तक ग्राहक भी हैं। पर इसका खर्च इससे नहीं निकलता। कई बार श्रमजीवी दलने चन्दा करके अपने इस एकमात्र पत्रको अकाल मृत्युसे बचाया है। जिस पत्रके ३॥–४ लाख ग्राहक हों वह अपना व्यय आप क्यों नहीं चला सकता, यह बात सोचने की है। ब्रिटेनमें लागतसे कम दामपर बेचे बिना खरीददार नहीं मिलते। लागतसे कममें बेचनेसे ग्राहक बहुत हो जाते हैं और ग्राहक बढ़नेसे विज्ञापन मिलते हैं। ग्राहकोंसे होनेवाली हानि

विज्ञापनोंसे पूरी की जाती है। 'डेली-हेराल्ड'को ग्राहक तो मिल गये पर विज्ञापन नहीं मिला क्योंकि वह पूँजीपतियोंका विरोधी है। इसीसे उसे बार-बार हानि उठानी पड़ी।

हम सब सम्पादक पत्रोंकी उन्नति चाहते हैं। पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस उन्नतिके साथ-साथ हमारी स्वातन्त्र्य-हानि अवश्यम्भावी है। उन्नति व्यापारी ढंगसे ही हो सकती है। इसके लिए पूँजीपति और संचालक व्यवसायकी आवश्यकता है। इनके कथनानुसार और भी पत्र-का सम्पादन करना असम्भव हो जाता है। इंग्लैण्ड और अमेरिकाके पत्रोंमें स्पष्ट देखा जाता है कि उनके समाचार स्तम्भ, मनोरंजन स्तम्भ और व्यापार स्तम्भ जितने ही अच्छे हो रहे हैं उनके सम्पादकीय स्तम्भ उतने ही निकम्मे बनते जा रहे हैं। लन्दनके 'टाइम्स' जैसे दो-तीन पत्र इसके अपवाद हैं। पर साधारण नियम वही है जो ऊपर बताया जा चुका है। एडिटरकी अपेक्षा मैनेजिंग एडिटरका प्रभाव और गौरव अधिक बढ़ गया है। भावी हिन्दी समाचारपत्रोंमें भी ऐसा ही होगा। पत्र निकालकर सफलतापूर्वक चलाना बड़े-बड़े धनियों अथवा सुसंघटित कम्पनियोंके लिए ही सम्भव होगा। पत्र सर्वाङ्ग सुन्दर होंगे। आकार बड़े होंगे, छपाई अच्छी होगी, मनोहर, मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक चित्रों-से सुसज्जित होंगे, लेखोंमें विविधता होगी, कल्पकता होगी, गम्भीर गवेषणाकी झलक होगी। और मनोहारिणी शक्ति भी होगी, ग्राहकोंकी संख्या लाखोंमें गिनी जायगी। यह सब कुछ होगा पर पत्र प्राणहीन होंगे। पत्रोंकी नीति देशभक्त, धर्मभक्त अथवा मानवताके उपासक महा-प्राण सम्पादकोंकी नीति न होगी—इन गुणोंसे सम्पन्न लेखक विकृत मस्तिष्क समझे जायँगे, सम्पादककी कुर्सी तक उनकी पहुँच भी न होगी। वेतन भोगी सम्पादक मालिकका काम करेंगे और बड़ी खूबीके साथ करेंगे। वे हमलोगोंसे अच्छे होंगे। पर आज भी हमें जो स्वतन्त्रता प्राप्त है वह उन्हें न होगी। वस्तुतः पत्रोंके जीवनमें यही समय बहुमूल्य

है। इंग्लैण्ड और अमेरिकाके पत्रोंने उन्हीं दिनों सच्चा काम किया था जब उनके आकार छोटे थे, समाचार कम होते थे, ग्राहक थोड़े होते थे पर सम्पादनकी लेखनीमें वह ओज था और प्राण था। उन देशोंकी इस उन्नतिके बहुत कुछ कारण वे ही सम्पादक थे जिनसे धनी घृणा करते थे, शासक क्रुद्ध रहा करते थे और जो, हमारे ही जैसे, एक पैर जेलमें रखकर धर्मबुद्धिसे पत्र सम्पादन किया करते थे। उनके परिश्रमसे और कष्टसे पत्रोंकी उन्नति हुई पर उनके वंशका लोप हो गया। अब संचालक और व्यवस्थापक सर्वेसर्वा हैं, सम्पादक कुछ नहीं है। इस इतिहाससे हमें उपदेश ग्रहण करना चाहिए, समय रहते सावधान हो जाना चाहिए और इस अवसरका ऐसा सदुपयोग कर जाना चाहिए कि भावी पीढ़ियाँ प्रेमके साथ हमारा स्मरण करें।

मैंने पीछे कहीं कहा है कि समाचारपत्रके दो मुख्य धर्म हैं, एक तो समाजका चित्र खींचना और दूसरे उसे सदुपदेश देना। चित्रके सम्बन्धमें मैं बहुत कुछ कह चुका। उसके बिना हमें प्रकृत सफलता मिल नहीं सकती। पर हमारा दूसरा कार्य—लोक-शिक्षण हमारा सच्चा धर्म है। इसीके द्वारा हम देशकी और जनताकी सच्ची सेवा कर सकते हैं। जनताके विचारोंपर हमारे लेखोंका बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि हममें योग्यता हो और यदि सचमुच हम कुछ देश सेवा करना चाहते हों तो हमें अपने पत्रोंमें सदा सर्वप्रकारसे उच्च आदर्शको स्थान देना चाहिए। सदाचारको उत्तेजन देकर कुरीतियोंको दबानेका प्रयत्न करना चाहिए। पत्र बेचनेके लाभसे अश्लील समाचारोंको महत्त्व देकर तथा दुराचरणमूलक अपराधोंका चित्ताकर्षक वर्णनकर हम परमात्माकी दृष्टिमें अपराधियोंसे भी बड़े अपराधी ठहर रहे हैं, इस बातको कभी न भूलना चाहिए। अपराधी एकाधपर अत्याचार करके दण्ड पाता है और हम सारे समाजकी रुचि बिगाड़कर आदर पाना चाहते हैं। विचार कीजिए हम कितना बड़ा पाप कर रहे हैं। राजविधान हमें अपराधी न ठहरावे पर राजाधिराजका विधान हमें पापी ठहराये बिना

न रहेगा। भ्रातृभावसे मैं आप सब सम्पादकोंसे प्रार्थना करता हूँ कि परमेश्वरने आपको जो बड़ा पद दिया है, उसका सदुपयोग कीजिए और समाजको सदा उन्नत करते रहना अपना धर्म समझिए। पूर्व पुण्य बलसे ही ऐसा सुअवसर मिलता है। इसका सदुपयोग कर आप स्वयं धन्य होइए और जननी जन्मभूमिका मुख संसारमें उज्ज्वल कर जाइए। इस कामके लिए अच्छे-से-अच्छे और विद्वान्-से-विद्वान् युवकोंकी आवश्यकता है। मैं चाहता हूँ कि ऐसे युवक इस काममें आवें और जब तक सम्पादक पराधीन नहीं हो गये हैं तब तक ही इस साधनका उपयोग कर लें। समय थोड़ा है, काम बहुत है। सुशिक्षित विद्वानोंकी ही इसमें आवश्यकता है। आजकल जिसका जी चाहता है वह सम्पादक बन जाता है। स्वयं कुछ भी ज्ञान न हो, संसारका उपदेशक बन जाता है। इससे हिन्दी पत्रोंकी हँसाई हो रही है।

मेरे मतसे सम्पादकमें साहित्य और भाषा ज्ञानके अतिरिक्त भारतके इतिहासका सूक्ष्म और संसारके इतिहासका साधारण ज्ञान तथा समाज-शास्त्र, राजनीति शास्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय विधानोंका साधारण ज्ञान होना आवश्यक है। अर्थशास्त्रका वह पण्डित न हो पर कम-से-कम भारतीय और प्रान्तीय बजट समझनेकी योग्यता उसमें अवश्य होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न उद्देश्योंसे निकलनेवाले पत्रोंके सम्पादकोंमें उन भिन्न विषयोंका विशिष्ट ज्ञान होना भी आवश्यक है पर ऊपर जो विषय बताये गये हैं उनका साधारण ज्ञान प्राप्त करके यदि कुछ थोड़ेसे भी युवक अनुभवी सम्पादकोंकी अधीनतामें कुछ दिन काम करें तो निस्सन्देह वे अपने गुरुसे आगे बढ़ जायेंगे और हिन्दी पत्रोंके साथ देशकी भी कुछ-न-कुछ उन्नति ही कर जायँगे।

मैं आप लोगोंका अधिक समय नष्ट न करूँगा। अब तक जो कुछ कहा गया है उससे सम्पादक समितिके कार्योंके सम्बन्धमें मेरे मतोंका कुछ आभास मिल जायगा। मैं चाहता हूँ कि मेडिकल कौंसिलके समान यह

समिति सम्पादन कलाको उत्तेजन देनेका प्रबन्ध करे, सम्पादकोंके साधारण धर्मोंका निर्द्धारण कर उनका पालन सबसे करावे, विरुद्धाचरण करनेवालेको दण्ड भी दे। वकील, डाक्टर तथा अन्य सब पेशेके लोगोंके आचरणका एक आदर्श होता है। क्या सम्पादक ही उच्छृङ्खल होकर संसारका अनिष्ट करते रहेंगे? हमें स्वयं ही मिलकर अपना आदर्श ठहराना चाहिए। यदि हम सब चाहें तो यह कार्य सम्पादक समितिके द्वारा करा सकते हैं। सम्पादकोंके सत्त्वोंकी रक्षा करना, पत्र सम्पादनके मार्गके विघ्न दूर करनेका प्रयत्न करते रहना, आपसके झगड़ेका निपटारा कर देना, विपत्तिग्रस्त सम्पादककी सहायता करना। डाक और तारकी सुविधाएँ बढ़ाने और बाधाएँ दूर करनेका प्रयत्न करना, इत्यादि अनेक कार्य हैं जिन्हें हम संघटित रूपसे कर सकते हैं। इससे अधिक सूचना मैं भाषणमें नहीं दे सकता। आप सब मिलकर इसपर विचार करें और सम्पादक-समितिके लिए एक नियमावली तैयार कर लें। प्रार्थना केवल इतनी ही है कि यदि वस्तुतः आप इसके अभावका अनुभव करते हों तो प्राणपणसे इसके संघटनमें लग जाइए, अन्यथा व्यर्थ परिश्रम कर उपहास्य न बनिए।

भाइयो, मुझे जो कहना था कह चुका, इसीका विस्तार बहुत किया जा सकता है। पर लेखन-पटु और कार्य-कुशल सम्पादकोंके सामने विस्तार करनेकी आवश्यकता ही क्या है? इसमें तो आप और हम सिद्धहस्त हैं। विषयका सम्पूर्ण अभाव हो और विचारका खजाना बिलकुल खाली हो गया हो तो भी जिन्हें नित्य नियमित समयपर स्तम्भके-स्तम्भ रँगने पड़ते हैं, उनके सामने शब्दोंका जाल बिछाकर एकको भी फँसानेका दुस्साहस मैं नहीं कर सकता। जो कुछ कहना था थोड़ेमें निवेदन कर दिया है। दोषों और त्रुटियोंके लिए आप लोगोंसे नम्रतापूर्वक क्षमा प्रार्थना करता हूँ। जो पुण्यभूमि भारतभरके कवियोंकी स्फूर्तिरूपिणी है, जहाँसे निकलनेवाली निर्मल भक्तिकी धारा आज भी संसार ताप-तप्तोंको शान्ति प्रदान करती है तथा कर्म और त्यागके विरोधका निराकरण कर सारे संसारको इहलौकिक

और पारलौकिक कल्याणका निरापद मार्ग दिखलानेवाली गीताके उपदेशकने जिस भूमिको अपनी सुमधुर बाललीलासे सदाके लिए पूत कर रखा है, उसीमें यदि इस युगकी दुहिता सम्पादन कलाको भी पवित्रता और अमरता प्राप्त हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। मैं इसे सम्भव समझता हूँ और मेरा विश्वास है कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्रकी असीम कृपासे यह सत्य ही होगा।

भारतीय पत्रकारिताकी देन

पत्रकारिता सम्बन्धी पराड़करजीके उपर्युक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषणके पश्चात् पत्रकारिता विषयक उनके दो उल्लेखनीय भाषण तथा एक लेख यहाँ इस आशयसे प्रस्तुत किये जाते हैं कि इनमें स्वयं पराड़करजीने, उन तथ्यों तथा परिस्थितियोंपर प्रकाश डाला है जिनके कारण वे इतने महान् सम्पादक हो सके। इनमें भारतीय पत्रकारिताके विकासकी रूप-रेखाका अंकन तो हुआ ही है, उसकी साहित्यिक देनका भी विवेचन-विश्लेषण है। पत्रकारिताके विकासमें काशीके महत्त्व तथा 'सरस्वती' में सम्पादनके आदर्श-स्वरूपका पराड़करजीके शब्दोंमें मूल्यांकन, प्रत्येक सम्पादक तथा पत्रकारके लिए अध्ययन एवं मननकी मूल्यवान् सामग्री है।

सन् १९५० में बम्बईमें मराठी साहित्य सम्मेलनके वृत्तपत्र (समाचार-पत्र) वाङ्मय परिषद्के अध्यक्षपदसे भाषण करते हुए पराड़करजीने पत्रकारिता क्षेत्रमें पदार्पण करने, तत्कालीन समाचारपत्रों तथा सम्पादकोंसे प्रेरणा प्राप्त करने, समाचारपत्रोंके विकास-क्रमकी रूपरेखा तथा भारतीय पत्रकारिताकी मूल्यवान् एवं महत्त्वपूर्ण देनका विशदरूपसे विवेचन किया है। गद्यके विकासमें भारतीय पत्रकारोंके महान् योगदानका विवरण-विश्लेषण और तत्सम्बन्धी पराड़करजीकी मान्यता प्रत्येक पत्रकार तथा साहित्यिकके अध्ययनके लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। आपका पूरा भाषण इस प्रकार है—

'इस शाखा सम्मेलनका अध्यक्षपद आपके आग्रहसे मैंने स्वीकार तो किया पर वैसा करते समय अपनी योग्यताका विचार नहीं किया। मराठी वाङ्मयसे मेरा सम्बन्ध बहुत कम, बिलकुल नहीं-सा रहा है। काशीमें वेदशालामें पढ़ते समय मेरे एक सहपाठीके घर बम्बईका 'जगद्धिते' पत्र आता था। आठ-नौ सालकी उम्रमें समाचारपत्रका यह मेरा प्रथम दर्शन था; पर उस समय मैं यह भी नहीं जानता था कि उसमें क्या रहता है और उसका क्या किया जाता है। पोथीमें पुष्टि-पत्र लगानेके लिए मित्रके घर जाकर और उसके पिताकी आँख बचाकर उस पत्रका कोई अंक घर लाता और उसको मोड़ कर हिफाजतसे रख छोड़ता था। इसके अतिरिक्त उसका कुछ भी उपयोग मैंने नहीं किया। न मैंने किया न किसीको करते देखा। कागजका बड़ा ताव था इसलिए उसे हिफाजतसे रखता था। गलतीसे कभी पैर लग जाय तो उसे नमस्कार करता था। बस यही उसका उपयोग था।

बादमें वेद और संस्कृत भाषासे थोड़ा परिचय होनेके बाद हाईस्कूलमें अंग्रेजी पढ़ने लगा। विद्यार्थी अवस्थामें सोलह सालकी उम्रमें 'हिन्दी बंगवासी' पत्र हाथ लगा और उसे पढ़ने लगा। १५–१७ वर्षका था उस समय (स्वर्गीय) सखाराम गणेश देउस्कर कलकत्तेसे किसी कामसे काशी आये थे। दूरके रिश्तेसे वे मेरे मामा लगते थे, उनके मुँहसे पहले-पहल मालूम हुआ कि पूनेसे 'केसरी' नामक कोई मराठी अखबार निकलता है। उनके कहनेपर भागलपुरमें एक साल तक 'केसरी' मँगाता रहा, पर पढ़ा उसे बिल्कुल नहीं, क्योंकि एक तो 'केसरी'की भाषा समझमें नहीं आती थी दूसरे उसमें उल्लिखित विषयोंका ज्ञान नहीं था। 'केसरी' आनेपर उसे उलट-पुलट कर देखता और रख देता था। मराठी समाचारपत्रोंसे यही मेरा पहला परिचय था।

कलकत्ता विश्वविद्यालयकी इन्ट्रेंस परीक्षा पास होनेपर कुछ स्वजात्य-भिमान जाग्रत हुआ और मैं मराठी अध्ययन करने लगा। १९०५ में

काशीमें कांग्रेस हुई तब उसमें स्वयंसेवकका काम करनेका सुयोग मुझे मिला और तिलक, खापर्डे आदि नेताओंको मैंने पाससे देखा। १९०६में एक हिन्दी पत्रका सहायक सम्पादक होकर मैं कलकत्ते गया। उसी साल कलकत्तेमें कांग्रेस हुई और लोकमान्य तिलकसे मेरा वास्तविक परिचय श्री देउस्करने करा दिया। लोकमान्यने उस समय मुझे पूना चलनेको कहा पर कुछ राजनीतिक कारणोंसे उस सुयोगका मैं लाभ न उठा सका। इसका मुझे खेद हुआ पर उपाय नहीं था। मैं जब पत्रकार-कला सीख रहा था तो वहीं बँगला साहित्यका भी अध्ययन करता था। यह सब छोड़ कर पूना नहीं जा सकता था। मराठी पत्रकार-जगत्का निकट परिचय प्राप्त करनेका सौभाग्य मेरे भाग्यमें नहीं था, यही कहना पड़ता है। ऐसे व्यक्तिसे मराठी वृत्तपत्र वाङ्मय सम्मेलनकी अध्यक्षता कैसे होगी इसका विचार उन्होंको करना चाहिए था जिन्होंने मुझे बहु-मान दिया।

बँगला साहित्य और बँगला अखबारोंकी जितनी जानकारी मुझे है उतनी भी मराठी-साहित्य और मराठी अखबारोंकी नहीं है, पर दूरसे मैंने जो कुछ देखा है और मराठी-साहित्यमें जो परिवर्तन समाचार-पत्रोंके कारण हुआ है, उसकी साधारण चर्चा करना कठिन नहीं है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओंका गद्यांग समाचार-पत्रोंसे ही प्रारम्भ और पुष्ट हुआ है (द्रविड़ भाषाओंके बारेमें मैं कुछ भी नहीं कह सकता) प्राचीनकालमें वाङ्मय या साहित्यका अर्थ पद्य ही समझा जाता था। संस्कृतमें हर्ष, वाण, दण्डी जैसे कुछ थोड़े कवियोंने गद्यका उपयोग काव्य-रचनामें तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य जैसे दार्शनिकोंने दर्शन-शास्त्रकी व्याख्या करनेमें किया और उसी कारण हमें आज संस्कृत गद्य वाङ्मय देखनेको मिलता है। कहा जा सकता है कि मराठी, गुजराती, हिन्दी, बँगला आदि भाषाओंमें डेढ़ सौ साल पहले गद्य-साहित्य बिलकुल नहीं था।

इन भाषाओंमें गद्य लिखनेका आरम्भ समाचारपत्र चलानेकी आव-

श्यकताके कारण ही हुआ, ऐसा मैं मानता हूँ। पुराने पत्रकार समाचार-पत्र निकालने लगे तब उनके सामने दो भाषाओंका साहित्य था—अँग्रेजी और संस्कृत। उस समय अंग्रेजी-साहित्य मेकाले, स्काट, डिक्वेंसी जैसे लेखकोंकी रचनाएँ और संस्कृत-साहित्य हर्ष, वाण और दण्डी जैसे संस्कृत कवियोंके काव्योंका था। आचार्योंके दार्शनिक गद्य वाङ्मयका हमारे प्रारम्भकालके लेखकोंपर सम्भवतः अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। विष्णु शास्त्री चिपलूणकरकी निबन्धमालामें संस्कृत कवि पंचकके गम्भीर अध्ययन-का प्रमाण मिलता है तथा यह भी मालूम होता है कि अंग्रेजी लेखकोंकी गद्य-शैलीका उन्होंने अनुकरण किया था। अस्तु, पुराने पत्रकारोंके सामने गद्य-शैलीके दो ही आदर्श थे—अंग्रेजी और संस्कृत। वाण कविने गद्यकी विशेषताका वर्णन इस श्लोकार्धसे किया है—**'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्'** ओज और समास बाहुल्य यही गद्यका जीवन है। उन्हें काव्य-रचना करनी थी, जन-शिक्षा, तुष्टि या जागृतिके लिए अपने विचार प्रकट नहीं करने थे, इसलिए उन्हें ओज और समास बाहुल्य यही गद्यका जीवन मालूम हुआ तो इसमें आश्चर्य क्या?

मेरा अनुभव यह है कि हमारे गद्यके जनक इस संस्कृत गद्य-शैलीका और अपने समय अथवा उसके पहलेके सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखकोंकी रचनाओं-का अनुसरण कर मराठी, हिन्दी, बँगला आदि गद्योंका स्वरूप निश्चित करते थे। कमसे-कम मेरे हिन्दी शिक्षा गुरु (स्वर्गीय) गोविन्द नारायण मिश्र तो वाणभट्टके इतने भक्त थे कि उन्हींकी शैलीपर हिन्दी-गद्य स्वयं लिखते थे, और हम लोगोंको भी लिखनेको कहते थे। मैं उस समय दैनिक 'भारतमित्र' में अग्रलेख लिखता था। उन लेखोंको आज पढ़कर हँसी आती है। एक-एक वाक्य कम-से-कम २०–२५ पंक्तियोंका होता था। उस समय बँगला लेखक भी ऐसी ही भाषा लिखते थे। इधर महाराष्ट्रमें भी सरल वाक्य-रचना लोकप्रिय नहीं हुई थी। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समयके पत्रकार समझते थे कि हमारा कर्त्तव्य उच्चासनपर

बैठकर नीचे खड़ी जनताको उपदेश देना है। सम्भवतः पत्रकार और जनताका सम्बन्ध उस समय स्पष्ट नहीं हुआ था। पत्रकारको जब प्रचार बढ़ानेकी आवश्यकता मालूम हुई तो वह सम्भवतः पाठकोंकी क्षमता और बुद्धिका बिचार करने लगा और पाठकोंका रंजन करने और उनके लिए उपयोगी ऐसे अनेक विषयोंका समावेश उपयुक्त भाषामें करने लगा। जनजीवनके विभिन्न अंग-उपांगोंकी ओर वह ध्यान देने लगा और विभिन्न विषयोंके लेखोंसे अपने पत्र सजाने लगा। बंगालमें स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ होनेके कारण वहाँ तथा बंगालके विभाजनको स्वतन्त्रताकी लड़ाईका प्रारम्भिक रूप मानकर महाराष्ट्रमें भी अखबारोंका स्वरूप बदलने लगा। तिलक, केलकर, परांजपे, जैसे महाराष्ट्रके और अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल, ब्रह्मबान्धव उपाध्याय, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती जैसे बंगालके सम्पादकोंकी बात अलग है। पत्र-सम्पादन तो उनकी वृत्ति नहीं थी, मिशन था। स्वातन्त्र्य-युद्धका वह एक अंग था। जनता समझ सके और पाठकोंके हृदयपर छाप पड़ सके, ऐसी भाषा लिखनेकी अधिकाधिक आवश्यकता उस समयके पत्रकारको भासित होने लगी और उन्होंने वैसी भाषा लिखना आरम्भ किया। कलकत्तेमें श्रीब्रह्मबान्धव उपाध्यायने दैनिक 'संध्या' निकाला और उसकी भाषा अति सरल, अति आकर्षक और अति मोहक रखी। 'सन्ध्या' पत्र ने एक नयी शैली ही प्रारम्भ की। मैं समझता हूँ, एक-दो दशकोंके बाद महाराष्ट्रमें अच्युतराव कोल्हटकरने अपने जिस साहित्यसे महाराष्ट्रको मुग्ध किया था उसकी शैलीमें 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' इन बंगाली पत्रोंकी शैलीका सम्मिश्रण दिखायी देगा—मैं यह नहीं कहता कि कोल्हटकरने बंगाल शैलीका महाराष्ट्रमें अनुकरण किया अपितु जिस आवश्यकताके कारण बंगालमें यह नयी शैली उत्पन्न हुई उसी आवश्यकताके कारण महाराष्ट्रमें भी नयी शैलीने जन्म लिया। और इनका प्रभाव साधारण साहित्यपर पड़ा इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।

मेरा अनुभव यह है कि गद्य किसी प्रकारका हो; इसकी साधारण

रूप-रेखा सब प्रान्तोंमें पत्रकारोंने ही निश्चित की और बादमें साहित्यिकोंने उसे अधिक स्पष्ट, अधिक उज्ज्वल और अधिक शुद्ध किया। तिलक, केलकर, परांजपे, भोपटकर, कोल्हटकर जैसे कुछ पत्रकार तो स्वयं साहित्यकार भी थे। उनका कार्य पत्रकार-जगत्में अधिक प्रभावकारी हुआ या साहित्य-क्षेत्रोंमें, इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है। केसरीने महाराष्ट्रकी अधिक सेवा की या 'गीता-रहस्य'ने इसका उत्तर मैं नहीं दे सकता। मेरे अपने पत्रकार-जीवनमें 'केसरी' और कर्मयोग शास्त्र दोनोंका समान उपयोग हुआ है।

मराठी-पत्रकार परिषद्के दशम अधिवेशनके अध्यक्ष आचार्य अत्रेने अपने भाषणमें कहा है कि चिपलूनकर, तिलक, आगरकर, परांजपे, खाडिलकर, केलकर, ये महान् शिल्पकार पिछली अर्द्ध शताब्दिमें महाराष्ट्रमें हो गये। मैं समझता हूँ कि इसमें एक नाम और जोड़ना चाहिए। वह नाम 'भाला'कार स्वर्गीय भास्कर बलवन्त भोपटकरका है। महाराष्ट्रसे बहुत दूर कलकत्तेमें 'केसरी और 'काल'की तरह हमलोग 'भाला' पत्रकी भी बड़ी उत्सुकतासे राह देखते थे। पहले महायुद्धके बाद महाराष्ट्रमें अच्युतराव कोल्हटकरने जैसी सनसनी पैदा की उसकी प्रतिध्वनि हिन्दी-क्षेत्रमें भी हुई। एक प्रान्तके पत्र-वाङ्मयने दूसरे प्रान्तके पत्र-वाङ्मयकी सहायता की और आगे जाकर साधारण साहित्य उत्पन्न हुआ। यही क्रम मुझे ठीक मालूम होता है। साधारण वाङ्मय या साहित्य समाचारपत्रोंसे बिलकुल दूर रहकर स्वतन्त्र रूपसे नहीं उत्पन्न हुआ, ऐसा मैं नहीं कहना चाहता और न यह सच ही होगा। कुछ थोड़े साहित्यिक ऐसे भी हुए हैं जिनका पत्रोंसे सम्बन्ध बिलकुल नहीं था या बहुत कम था। उत्तर भारत और महाराष्ट्रमें आधुनिक युगमें ऐसा शायद ही कोई साहित्यिक हुआ होगा जिसका समाचारपत्रोंसे अत्यधिक सम्बन्ध न रहा हो। कैसे वाङ्मयकी आवश्यकता है, वह किस भाषा और किस शैलीमें लिखा जा सकता है, इसका दिग्दर्शन समाचारपत्र ही करते आये हैं और उसके नमूने भी समा-

चारपत्र ही देते आये हैं। बादमें उस वाङ्मयकी पुष्टि और शुद्धि स्वतन्त्र रूपसे हुई और होती है।

अब तकके अपने भाषणमें मैंने जिन नामोंका उल्लेख किया वे सब स्वर्गवासी पत्रकार या साहित्यकार हैं। महाराष्ट्रमें हिन्दी भाषी तीनों प्रान्तों—उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहारमें तथा बंगालमें आज अनेक युवक और प्रौढ़ पत्रकार अपनी कलाकी उन्नतिमें लगे हैं और नये-नये ढंगका साहित्य सर्जन कर रहे हैं; पर जीवित व्यक्तियोंके कार्योंका मूल्यांकन उनके जीवनकालमें नहीं किया जा सकता। और करनेपर भी अधूरा रहता है। ऐसा साधारणतः अनुभव होनेके कारण मैंने उनके बारेमें कुछ नहीं कहा है पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं उनका तिरस्कार करता हूँ। हिन्दी भाषी प्रान्तोंके बाहर आधुनिक वृत्तपत्र साहित्यिकोंकी मुझे पूरी जानकारी न होनेके कारण भी मैंने वैसा साहस न किया।

जन्मसे महाराष्ट्रसे बाहर रहनेपर भी मराठी भाषा द्वारा प्रान्तकी या देशकी कुछ भी सेवा मेरे हाथों न होनेपर भी आपने मेरा यह जो बड़ा सम्मान किया, उसके लिए आप सबका आभार प्रदर्शनकर मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ'।

• हिन्दी पत्रकारिता और काशी

संयुक्तप्रान्तीय चतुर्थ प्रेस कानफरेन्समें स्वागताध्यक्ष पदसे दिये गये भाषणमें पराड़करजीने हिन्दी पत्रकारिताको काशीकी देनका महत्त्व स्पष्ट करते हुए पत्रकारोंकी विभिन्न समस्याओंपर प्रकाश डाला है और अपने निष्कर्ष समक्ष रखे हैं—

मित्रो, काशीमें आप लोगोंका स्वागत करता हूँ और हृदयसे करता हूँ। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है यह केवल मौखिक है, अपनी अस्वस्थता और अकर्मण्यताके कारण मैं स्वागत प्रबन्धमें अब तक कुछ भी हाथ न बँटा सका। जो कुछ किया, मेरे सहयोगी मित्रोंने ही किया और यह

उन्हींके परिश्रमका फल है कि अनेक कठिनाइयों और विपरीत परिस्थितिमें भी आज हम आपलोगोंके दर्शनसे कृतार्थ हो रहे हैं। काशी यद्यपि प्रान्तीय राजधानी नहीं है, न कोई औद्योगिक केन्द्र है, पर विद्याका सम्मान सदासे यहाँ होता रहा है और भारतकी संस्कृतिका पालन-पोषण तथा संरक्षण प्रधानतः इसी स्थानसे होता रहा है। पत्रकार कलाका जन्म यद्यपि अन्यत्र हुआ, पर काशीमें भी, विशेषकर हिन्दी-पत्रिकाएँ यहाँ बहुत पहले निकलीं। 'हरिश्चद्र मैगजीन' साहित्यमें अपना स्थान कर गयी। 'भारत-जीवन' अनेक वर्षों तक हिन्दी-साप्ताहिकोंमें आदरणीय स्थान पाता रहा। फिर 'हिन्दी-केसरी'का भी उदय हुआ। सन् १९२० में ही यहाँ पहले-पहल दैनिक पत्रके रूपमें 'आज'का जन्म हुआ और उसने हिन्दी-पत्रकारीकी जो सेवा की, वह सर्वप्रसिद्ध है। फिर 'सूर्य' निकला, 'अग्रगामी' निकला। कुछ कारणोंसे 'अग्रगामी' शीघ्र बन्द हो गया पर 'सूर्य' निकलता रहा है। आज तो यहाँ तीन-तीन दैनिक पत्र निकल रहे हैं और सफलताके साथ निकल रहे हैं। सन् १९२० में यहाँ किसी भी दैनिक या साप्ताहिककी ५० से अधिक प्रतियाँ नहीं बिकती थीं। आज एक-एक पत्रकी हजार-हजारसे भी अधिक प्रतियाँ बिक रही हैं। माँग इससे भी अधिक है पर कागजके अभावमें उसकी पूर्ति नहीं हो रही है। मेरा विश्वास है कि समय सुधरते ही काशीमें समाचारपत्रोंकी खपत आजसे दुगुनी हो जायगी।

केवल प्रचार ही नहीं, विषय, सम्पादन, समाचार आदि सब बातोंमें काशीके पत्रोंने अन्य हिन्दी पत्रोंको मार्ग दिखाया है। यदि मैं भूल नहीं रहा हूँ तो कह सकता हूँ कि हिन्दी पत्रोंमें सबसे पहले टेलीप्रिंटर काशीके 'आज'ने लिया। इसके पहले यह बात-चीत, चल रही थी कि इलाहाबादसे काशी तक 'आज'के लिए एक खास तार लगा दिया जाय। इसके लगानेका सारा खर्च श्री शिवप्रसाद गुप्त देनेको तैयार थे, पर तार-विभाग चाहता था कि उस तारके लिए जो कुछ सालाना खर्च बढ़ जाय वह भी 'आज' पूरा करे। इस बातपर वह यत्न असफल रहा। कहनेका तात्पर्य

यह कि प्रधान नागरिकों, औद्योगिक और राजनीतिक केन्द्रोंसे कुछ दूर रहनेपर भी हिन्दी पत्रकारीके लिए काशीने जो कुछ किया है, वह हमारे लिए कम गौरवकी बात नहीं है। मैं कहता हूँ कि भविष्यमें भी हमलोग अपने बाहरी सहयोगियोंके आगे नहीं तो साथ जरूर रहेंगे।

यह पत्रोंके सम्बन्धकी बात-चीत हुई परन्तु आज हम पत्रकारोंके सामने प्रश्न अपनी वृत्तिका—पेशेका है, जीवनका है। वह समय गया जब पत्रकारी एक मिशन था, एक धर्म था और उसके लिए थोड़ेसे पत्रकार अपना सर्वस्व दे देते थे। हिन्दीमें ऐसे अनेक पत्रकार हुए हैं जिन्होंने जन्मगत यही कार्य किया, पर अत्यन्त कष्टमें मरे। यह उन्हींके परिश्रमका फल है कि हिन्दी भाषियोंमें पत्र पढ़नेकी रुचि उत्पन्न हुई। कालकी गति बदली। अवस्था अत्यन्त शीघ्रतासे बढ़ने लगी। शिक्षाका भी कुछ अधिक प्रचार हुआ है। गान्धीजीके असहयोग आन्दोलनने साधारण जनतामें भी देशकी स्थिति जाननेकी उत्सुकता उत्पन्न कर दी। पत्रोंकी माँग बढ़ी। स्वभावतः इन क्षेत्रोंमें अब वह लोग आने लगे जिनका दृष्टिकोण लाभका है—मिशन नहीं है। पहले जहाँ इस क्षेत्रमें केवल वही युवक आते थे जो देशप्रेमकी भावनासे प्रेरित होकर इस साधन द्वारा देश-सेवा करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे, अब वह भी आने लगे हैं जो इनके द्वारा सुख-पूर्वक जीवन-निर्वाह भी करना चाहते हैं। हम सब इसी श्रेणीमें हैं। अतएव हम चाहते हैं कि केवल पैसेवाले ही इस परिवर्तित स्थितिसे लाभ न उठावें, हमें भी अपने परिश्रमका उचित पुरस्कार मिले। आज मुख्यतः पत्रकारोंके सम्मुख यही प्रश्न उपस्थित है। इसके लिए अब तक भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके संघटन हुए हैं और भिन्न-भिन्न प्रकारके उद्योग किये गये हैं। यू० पी० प्रेस कानफरेन्स इसी उद्योगका एक फल है। पत्रकारोंकी अवस्था सुधारनेकी ओर कानफरेन्सने विशेष रूपसे ध्यान दिया है। और मैं समझता हूँ कि उसका जो अधिवेशन आज आरम्भ हो रहा है, उसमें मुख्यतः यही विषय विचारणीय होगा। इस कानफरेन्सकी

स्थायी समितिने १ अक्तूबर १९४६ को दो उप-समितियाँ नियुक्त की थीं। इनमेंसे एकको स्थान-स्थानकी संस्थाओंको सम्बद्ध करनेके नियम और उनके अधिकारोंके सम्बन्धमें विचार कर रिपोर्ट देनेका भार सौंपा गया था। दूसरीको आज्ञा दी गयी थी कि वह एक ऐसी नियमावली बनावे जिसके अनुसार यह कानफरेन्स केवल उन लोगोंकी संस्था हो जिनकी मुख्य वृत्ति ही पत्रकारी हो। यद्यपि कमेटियाँ दो थीं पर दोनोंके सदस्य एक ही थे। सर्वश्री महीपतराम नागर, बी० बी० टण्डन और एन० डी० अग्रवाल। तीनों सज्जनोंने विचार करके देखा तो पाया कि दो रिपोर्ट एक दूसरेसे बिलकुल अलग लिखना सुविधाजनक न होगा अतः तीनों सज्जनोंने एक ही रिपोर्ट तैयार करके प्रधानमन्त्रीके पास भेज दी है। वह आप लोगोंके सामने विचारार्थ उपस्थित की जायगी। इसके सम्बन्धमें मैं स्वयं कुछ कहना नहीं चाहता था पर एक बातपर कुछ कह देना आवश्यक मालूम होता है।

कमेटीकी राय है कि केवल वे ही पत्रकार इसके सदस्य हों जिनका पत्रमें किसी प्रकारका स्वामित्व न हो अर्थात् उसके लाभका कुछ भी अंश जिन्हें न मिलता हो। शुद्ध आदर्शकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह उचित मालूम होता है, परन्तु मुझे यह बात कभी व्यावहारिक नहीं मालूम देती। इस प्रान्तमें अधिकांश पत्र ऐसे हैं जिनके सम्पादक उनके मालिक भी हैं और यदि पत्रमें लाभ हो तो उन्हें उसमें अंश मिल सकता है। यदि सब-कमेटीने जो राय दी है, उसीके अनुसार सदस्योंकी योग्यता मान्य कर ली जाय तो मुझे भय है कि कम-से-कम हिन्दी उर्दूके अधिकांश सम्पादक इस संस्थाके सदस्य नहीं हो सकते। मैं इसपर अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, केवल अपना एक सन्देह आप लोगोंके सामने उपस्थित कर दिया है। इसका विचार करके ही आप लोग इस संस्थाका भावी संघटन निर्धारित करेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

ट्रेड यूनियन या व्यवसाय संघ सब उद्योग-धन्धोंमें होंगे ही परन्तु

उनका भी एक समय होता है। हमें सोचना है कि अपना स्वतन्त्र व्यवसाय संघ हम अभी बना सकते हैं अथवा नहीं। इसके सिवा पत्रकारोंकी शिक्षा, वार्द्धक्य, बीमारी आदिके समय उनका निर्वाह, सहसा आयी हुई विपत्तिके समय उनकी सहायता आदि अनेक विषय विचारणीय हैं। इस सम्बन्धमें इस ओर हमारे प्रान्तकी सरकारने भी कुछ ध्यान दिया है तथा एक कमेटी भी नियुक्त कर रही है, हमें उसका स्वागत करना चाहिए। अन्यान्य प्रान्तोंमें भी इस सम्बन्धके अनेक प्रयत्न हो रहे हैं।

हमारे लिए यह सौभाग्यकी बात है कि श्री शिवराव जैसे अत्यन्त योग्य पत्रकार और विधानवादी पण्डित हमें सभापति मिले हैं। मैं उनका हृदयसे स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके नेतृत्वमें सम्मेलन अपना अच्छा संघटन करनेमें समर्थ होगा।

• पत्रकारिताकी प्रेरणा

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीसे पराड़करजीने पत्रकारिताकी प्रेरणा किस प्रकार ली थी और उन्होंने पत्रकारिताका कैसा आदर्श उपस्थित किया है—यह प्रत्येक पत्रकारके अध्ययन-मननके लिए आवश्यक है। निम्न-लिखित लेख पराड़करजीने आचार्य द्विवेदीजीके निधनपर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा था—

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी मेरे लिए गुरुतुल्य थे और इन कुछ पंक्तियों द्वारा मैं उनकी पुण्यस्मृतिमें श्रद्धांजलि अर्पण करना चाहता हूँ। उनके जीवनपर प्रकाश डालने अथवा उन्होंने हिन्दी-साहित्य और पत्रकार-कलाकी जो सेवा की है उसका मूल्य आँकनेका यह समय नहीं है। वस्तुतः किसी भी मनुष्यके कार्यका मूल्य उसकी मृत्युके बहुत दिन बाद ही आँका जा सकता है। हमारे लिए, जिन्होंने उनके चरणोंमें बैठकर अथवा उनके

लेखोंसे शिक्षा ग्रहण की है, वे अमूल्य थे और अन्त तक अमूल्य ही बने रहेंगे।

मेरे लिए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीका महत्त्व उनके सम्पादन-कौशलमें है। वैसे तो स्कूल-कालेजमें रहते भी मैं 'सरस्वती' पढ़ा करता था पर सन् १९०६ ईस्वीसे, जब मैंने स्वयं पत्रकारके क्षेत्रमें प्रवेश किया, प्रतिमास 'सरस्वती'का अध्ययन करना मेरा एक कर्त्तव्य हो गया और यह सन् १९१५ के अन्त तक ज्योंका-त्यों बना रहा। मैं 'सरस्वती' देखा करता था सम्पादन सीखनेके लिए। कभी-कभी स्वर्गीय श्री सखाराम गणेश देउस्कर-जीको भी, जो सम्पादन-कलामें मेरे गुरु थे, पढ़कर सुनाया करता था और वे ही मुझे उसकी विशेषताएँ बताया करते थे। वह विशेषता यह थी कि 'सरस्वती' का प्रत्येक अंग एक सर्वांगपूर्ण चित्र मालूम होता था। सारे अंगोंमें सामंजस्य हुआ करता था। यह नहीं कि जैसे-जैसे लेख आये, वैसे-वैसे छाप दिये गये। आदिसे अन्ततक उसके चतुर चित्रकारका परिचय मिला करता था। यह बात मैंने अबतक किसी मासिक पत्रिकामें नहीं पायी। अंग्रेजीकी बात जाने दीजिए, उसका स्थान बहुत ऊँचा है। बँगला और मराठी सामयिक पत्र मुझे प्रायः पढ़ने पड़ते थे पर उनमें भी स्वर्गीय श्री सुरेशचन्द्र समाजपति द्वारा सम्पादित बँगला 'साहित्य'के सिवा मैंने कोई ऐसा मासिक पत्र नहीं देखा जिसका प्रत्येक अंक अपने सम्पादकके व्यक्तित्वकी घोषणा करता रहा हो। यह 'सरस्वती'की ही विशेषता थी और वह स्वर्गीय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीका निजत्व था। दुःखसे लिखना पड़ता है कि वह मैंने उन्हींमें पाया और उन्हींके साथ लुप्त होते भी देखा।

इसी सम्पादनके सम्बन्धमें आचार्य द्विवेदीकी दूसरी विशेषता थी होनहारकी पहिचान और उसको उत्साह-प्रदान। आज हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ लेखकोंमें अधिक ऐसे हैं जिन्हें द्विवेदीजीसे लिखनेका उत्साह मिला था। यह न मिला होता तो शायद वे लेखक न होते। नवीन होनहार लेखकको उत्साहित करनेका अर्थ यह नहीं है कि उसका जो लेख आवे वही छाप

दिया जाय। इससे तो उसका भविष्य नष्ट हो जाता है। वह अपने दोष समझ नहीं पाता, अतः सुधरनेका यत्न भी नहीं करता। 'अहं' की वृत्ति बढ़ जाती है और सस्ते लेखकोंकी संख्या बढ़ती है। उत्साह-प्रदानके पहले यह आवश्यक है कि लेखकके भीतर जो कला छिपी पड़ी है उसे पहिचानने तथा उसे बाहर निकालनेका यत्न करें। यह काम द्विवेदीजी ही कर सकते थे। लेखकको विशेषताओंकी रक्षा करते हुए उसके लेखका संशोधन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। मैंने आचार्य द्विवेदीकी ऐसी संशोधित 'कापी' (पुस्तककी) देखी है, जिसमें आपने पन्नेके पन्ने फिरसे लिखे थे, पर मूल लेखककी विशेषता कहीं भी नष्ट न होने पायी थी। सम्भवतः 'सरस्वती'में प्रकाशित अधिकतर लेख इसी तरह संशोधित हुआ करते थे। इतना संशोधन करके भी आप लेखकोंसे पत्र-व्यवहार करते, उन्हें उत्साह-प्रदान करते और कभी-कभी चुटकियाँ भी लिया करते थे।

द्विवेदीजीके पोस्टकार्डका प्रथम दर्शन मुझे सन् १९०८ ईस्वीमें हुआ था। उन दिनों मैं कलकत्तेमें 'हितवार्ता'का सम्पादन करता था। उसके कुछ लेखोंसे सन्तुष्ट होकर आपने प्रथम कार्डमें मुझे केवल आशीर्वाद दिया था। बादके कार्डोंमें मेरी भाषाकी त्रुटियाँ दिखाई गयी थीं—विषयके अनुरूप शैली न होनेकी बुराईकी ओर मेरा ध्यान दिलाया गया था। उन दिनों मेरे सामने आदर्श था स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रका, जिनकी गम्भीर विद्वत्ता तथा प्राकृत और हिन्दीके साहित्योंका अध्ययन और मनन वस्तुतः अपूर्व था। पर पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रजीका गद्य कादम्बरीका अनुकरण था और मैं भी उनका पदानुकरण करनेका यत्न किया करता था। द्विवेदीजीको यह शैली पसन्द नहीं थी और अपने एक कार्डमें आपने यह लिख भी दिया था। वर्षों बाद मुझे द्विवेदीजीके इस कथनकी सत्यताका अनुभव हुआ। मैं भी भाषा सरल और वाक्य छोटे करनेका यत्न करने लगा। 'आज'के कुछ लेख आपको बहुत पसन्द आये थे और जब जो लेख अच्छा मालूम हुआ, तुरन्त कार्ड लिख कर अपना

सन्तोष प्रकट किया। कार्यक्षेत्रसे अवसर ग्रहण करनेके बाद भी मेरे जैसे एक साधारण पत्रकारपर भी ऐसी दयादृष्टि रखने वाला आचार्य हिन्दीको पुनः कब प्राप्त होगा ?[1]

पराड़करजी हिन्दी पत्रकारिता तथा समाचारपत्रोंका इतिहास स्वयं लिखना चाहते थे। यह बात आचार्य काका कालेलकर और उनके बीच हुए पत्राचारसे पुष्ट होती है। 'सन् ३९ में काका कालेलकर काशी आये थे। पराड़करजीसे उन्होंने हिन्दी वृत्त विवेचनका इतिहास लिखनेका आग्रह किया था। कई पत्रोंमें उन्होंने पराड़करजीको उक्त पुस्तक शीघ्र लिख डालनेका स्मरण दिलाया था। २८ नवम्बरके पत्रमें उन्होंने लिखा—

× × × काशीमें हुई बातके बाद आपका कोई समाचार नहीं मिला। हिन्दी समाचारपत्रका इतिहास, आपने कदाचित् पूरा लिख लिया होगा। इस इतिहासमें आपके सम्बन्धका जो प्रकरण आपने अपने कार्यालयके सहयोगीको सौंपा था, उसे शीघ्र तैयार करानेकी व्यवस्था करें। आपकी लिखी इस पुस्तकका अंगरेजी अनुवाद भी कराना होगा। हिन्दी समाचारपत्र तथा पत्रकारीका आपका जैसा उत्कृष्ट अनुभव है उससे आपकी लिखी यह पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। यह काम शीघ्रतापूर्वक होना चाहिए नहीं तो यों ही पड़ा रह जायगा। आपका—काका कालेलकर

—१३ दिसम्बर '४० और ६ जनवरी '४१ के पत्रोंमें भी काका कालेलकरने उक्त पुस्तकके शीघ्र समाप्त करनेकी चर्चा की है। विधिका विचित्र विधान ! सचमुच ही पराड़करजी जीवनकी व्यस्ततामें उक्त पुस्तक न लिख पाये। हिन्दी पत्रकारी तथा समाचारपत्रों सम्बन्धी उनकी पुस्तक कितनी मूल्यवान कृति होती, उसका अनुमान पराड़करजीके पत्रकारिता सम्बन्धी उक्त भाषणोंसे सहज ही किया जा सकता है।

---

१. काशीके 'रामरत्न पुस्तक भवन तथा संग्रहालय'में सुरक्षित 'द्विवेदी श्रद्धांजलि अंक'की पाण्डुलिपियोंसे।

• पत्रकारिताका विकास और पत्रकारोंका संघटन

पराड़करजी न केवल एक महान् सम्पादक थे अपितु सम्पादकों और पत्रकारोंके संघटन, नियमन तथा पत्रकारीके आदर्शों एवं उसके व्यावहारिक स्वरूपके प्रतिष्ठापक भी थे। सन् १९२५में सोलहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन (वृन्दावन) के अवसरपर प्रथम सम्पादक सम्मेलन आपकी ही अध्यक्षतामें हुआ था, यह हम देख चुके हैं। इस अवसरपर आपका पत्रकारिता सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण भाषण 'समाचारपत्रका आदर्श' शीर्षकके अन्तर्गत पहले दिया जा चुका है। हिन्दी सम्पादकों तथा पत्रकारोंके संघटन और पत्रकारिताकी उन्नतिके सम्बन्धमें उच्च स्तरपर विचार-विमर्शका यह प्रथम अवसर था। यहीं सर्वप्रथम पराड़करजीकी अध्यक्षतामें हिन्दी सम्पादक समितिका संघटन हुआ। इस समितिके मन्त्री तथा संयोजक आचार्य श्री नरदेव शास्त्री चुने गये थे और उपसंयोजक श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय। यह सम्पादक-सम्मेलन, हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साथ दो-तीन वर्षोंतक चला, फिर इसके स्वरूपमें क्रमशः परिवर्तन होता गया। आज यद्यपि अखिल भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ, समाचारपत्र सम्पादक सम्मेलन आदि संघटनोंके स्वरूप एवं आदर्श कुछ भिन्न हो गये हैं तथापि उनके आदि-स्वरूप और विकासके क्रम, पत्रकारिताके इतिहासमें कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

हिन्दीके प्रसिद्ध साहित्यकार और पत्रकार श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी पत्रकारोंके संघटन, उनकी समस्याओं आदिके विषयमें प्रारम्भसे ही अत्यधिक रुचि रखते आये हैं। कहना न होगा कि सन् १९२५ में हिन्दी सम्पादक समितिके संघटित होते ही आपने उसके कार्योंमें सक्रिय सहयोग देना प्रारम्भ किया। पराड़करजीके नाम लिखे निम्नलिखित पत्रोंसे तत्सम्बन्धी सहयोगपर तो प्रकाश पड़ता ही है, इनसे हिन्दी सम्पादकों एवं पत्रकारोंके संघटनके प्रारम्भिक रूपका भी परिचय मिलता है। पत्रकारोंके संघटनके विकासमें तो इन पत्रोंका ऐतिहासिक महत्त्व है—

आचार्य नरदेव शास्त्रीके पत्र

ज्वालापुर महाविद्यालय

श्री पण्डित बाबूरावजी पराड़कर, ८ फरवरी, १९२६

प्रधान, सम्पादक समिति

आशा है आप अब स्वस्थ हो गये होंगे। मैं पहिले पत्रके उत्तरकी प्रतीक्षामें हूँ। आप प्रयाग सम्मेलनवालोंको १००) मेरे नाम ज्वालापुरके पतेसे भेजनेको लिख दीजिए। जो-जो कार्य करना हो, जिस प्रकार करना हो स्पष्ट लिख दीजिए। 'आज' में एक अच्छा-सा नोट भी लिखिए। शेष कुशल है।

भवदीय—**नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, संयोजक**

श्री पण्डित बाबूरावजी,

पं० बनारसीदास चतुर्वेदीजी आपके पास सम्पादक समितिके नियमादिके विषयमें एक पत्र भेजेंगे। वे उद्देश्य और नियम हम लोगोंने सोचकर बनाये हैं। उसकी मंजूरी देकर वह कागज मेरे नाम ज्वालापुरके पतेसे लौटा दीजिए। सम्मेलनवालोंके पास आपने रुपये भेजनेको लिखा या नहीं। आपने लिखा था विस्तृत पत्र भेजूँगा, वह भी नहीं आया।

भवदीय—**नरदेव शास्त्री**

पराड़करजीने शास्त्रीजीके इस पत्रका उत्तर ११ मार्चको दिया। साथ ही आपने सम्मेलन कार्यालयको रुपये भेजनेके लिए भी लिखा।

शास्त्रीजीने इस पत्रका उत्तर २७ मार्चके अपने पत्रमें दिया—

श्री पं० बाबूरावजी—आपके पत्र मिले। आप संशोधित नियमावलीकी एक प्रति मेरे नाम भी भेज दीजिये। मैं झांसी नहीं जा सकूँगा क्योंकि यहाँ संयुक्तप्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाका बृहदाधिवेशन है। और दूसरी बात यह है कि महात्माजीके भी आनेकी खबर है। ऐसी दशामें मैं नहीं जा सकूँगा।

भवदीय—**नरदेव शास्त्री**

फिरोजाबाद, ज़िला आगरा
१२-२-२६

श्रीमान्

अभी दिल्लीमें श्री नरदेव शास्त्रीजी मिले थे। मैंने उनसे निवेदन किया था कि शीघ्र ही सम्पादक समितिके नियम बन जाने चाहिए। फिर हम लोगोंने बैठकर साथके नियम बनाये। ये अभी कच्चे ही हैं और इनमें संशोधन तथा परिवर्द्धनकी बहुत आवश्यकता है।[1]

शास्त्रीजीकी तथा मेरी यह सम्मति है कि वार्षिक चन्दा ५) के बजाय ३) कर देना ठीक होगा।

मेरी रायमें हिन्दी सम्पादक समितिके बजाय इसका नाम हिन्दी जर्नेलिस्ट समिति रखना ठीक होगा। यदि 'जर्नेलिस्ट' नाम पसन्द न हो तो कोई दूसरा शब्द इसके समान अर्थ रखनेवाला प्रयुक्त होना चाहिए।

इस समितिके संघटनके लिए मीटिंग काशीमें ही करना ठीक होगा। वहाँ श्रीप्रकाशजी, सम्पूर्णानन्दजी तथा आपके साथके कितने ही सज्जन सदस्य बन जायँगे और आपको भी सुभीता होगा।

समितिके संघटित हो जानेपर यथावकाश मैं भी कुछ सेवा कर दिया करूँगा। मैं प्रयागमें रहना चाहता हूँ और वहाँ रहनेपर इस कार्यमें आपके साथ सहयोग करनेके अनेक अवसर मिल सकेंगे।

भवदीय—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

हिन्दी सम्पादक समिति

(१) इस समितिका नाम हिन्दी सम्पादक समिति होगा।

(२) **समितिके उद्देश्य**—(अ) हिन्दी समाचारपत्रोंके सम्पादकों, लेखकों और संचालकोंमें परस्पर सहयोग स्थापित करना। (ब) देशके

१. मैंने साइक्लोस्टाइलपर ये कच्चे नियम छाप लिये हैं और इन्हें मित्रोंको संशोधनार्थ भेज रहा हूँ।

लाभकारी आन्दोलनोंमें हिन्दी पत्रोंकी सम्मिलित शक्तिका प्रयोग करना। (स) विपद्ग्रस्त सम्पादकोंकी सहायता करना। (द) हिन्दी पत्र सम्पादन-कलाकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करना —(१) व्याख्यानों द्वारा (२) पुस्तक प्रकाशन द्वारा (३) उपयुक्त सूचनाओं द्वारा।

(३) हिन्दी पत्रोंके लिए एक न्यूज एजेन्सी स्थापित करना और भिन्न-भिन्न विषयोंपर हिन्दी पत्रोंकी सम्मतियोंको अन्य भाषाओंके पत्रोंको भेजना।

(४) प्रत्येक लेखक, सम्पादक तथा पत्र संचालक ३) वार्षिक देनेपर इसके सदस्य बन सकेंगे।

(५) समितिके वार्षिक अधिवेशन हिन्दी साहित्य सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनोंके साथ हुआ करेंगे।

(६) स्थायी समिति २० सदस्योंकी होगी जो वार्षिक अधिवेशनके अव-सरपर निर्वाचित हुआ करेंगे।

(७) समितिका कार्यालय प्रधान तथा मन्त्रीकी सुविधाके अनुसार किसी केन्द्र स्थानमें रहेगा।

नोट—इस समितिका संघटन ५० सदस्य होनेपर साधारण अधिवेशन द्वारा किसी स्थानपर किया जायेगा।

फिरोजाबाद, जिला आगरा
२१–३–२६

श्रीमान् पराड़करजी,

आपका ५–१२–१९८२ का कृपापत्र मिला। टेलिग्राम अथारिटीके लिए लिखनेके लिए धन्यवाद। आपने यह ठीक किया कि भारतभरके किसी तार घरसे 'आज' के नाम वेयरिंग तार भेजनेका अधिकार मुझे दिलवाया है।

मैंने 'क्रानीकल' के सम्पादक मि० ब्रेल्वीसे जर्नलिस्ट असोसियेशन

आव इण्डिया, बम्बईके नियम मँगा लिये हैं। उनमें एक नियम यह भी है कि 'दि असोसियेशन डज नाट रिक्गनाइजेज एज जर्नलिस्ट एनी परसन मियरली होल्डिग ए प्रोप्राइटरी इन्टरेस्ट इन एनी प्रेस'। इस दृष्टिसे हम लोगोंको भी कोरमकोर प्रेसके संचालकोंको मेम्बर नहीं बनाना चाहिए।

लक्ष्यके विषयमें लिखा है—'दि आवजेक्ट आफ दिस असोसियेशन विल वी दि प्रोमोशन आव ह्वाटएवर मे लीड टू दि एलीवेशन आव दि स्टेट्स एण्ड दि इम्प्रूवमेण्ट आव दि क्वालिफिकेशन्स आफ आल मेम्बर्स आफ दि जर्नलिस्टिक प्रोफेशन्स इन इण्डिया, एसरटेनमेण्ट एण्ड ह्वेन नेससरी, एमेण्डमेण्ट आव दि ला एण्ड प्रैक्टिस एफेटिंग दि डिसचार्ज वाइ जर्नलिस्ट आव देयर प्रोफेशनल ड्यूटीज, प्रोमोशन वाइ आल रिजनेबुल मीन्स आव दि इन्टरेस्ट्स आव जर्नलिस्टस् एण्ड जर्नलिज्म एण्ड प्रोवीज़न आव लीगल एण्ड अदर एड टू प्रोटेक्ट मेम्बर्स प्रोफेशनल इण्टरेस्ट्स।

मेम्बर होनेके विषयमें लिखा है—दि मेम्बर्स आव दि असोसियेशन शैल कनसिस्ट आव पर्सन्स हू डिपेण्ड फार देयर लिवलीहुड अपौन दि प्रैक्टिस आव जर्नलिस्म आर हूज मेन आकूपेशन इज जर्नलिज्म, वेदर इनगेज्ड अपौन दि रेग्यूलरएडीटोरियल स्टाफ आव ए न्यूजपेपर आर न्यूज एजेन्सी आर हू, इफ अनअटैच्ड टू ऐनी स्पेसिफिक आरगैनाइजेशन अर्न देयर लीविंग वाई दि प्रैक्टिस आव फ्रीलान्स जर्नलिज्म।

और कोई विशेष नियम नहीं हैं। मेरी सम्मति है कि 'हिन्दी जर्नलिस्ट समिति' का संघटन शीघ्र हो जाना चाहिए। भरतपुर सम्मेलन तक कुछ-न-कुछ काम करके दिखाना हमलोगोंका कर्त्तव्य है। यदि शेष सालके लिए कार्यक्रम निश्चित हो जावे तो उसके अनुसार कुछ-न-कुछ काम भी किया जा सकता है। कृपा बनी रहे।

भवदीय—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

श्री गणेशशंकर विद्यार्थीसे परामर्श

फिरोजाबाद, जिला आगरा
१।४।२६

श्रीमान्

श्रीमती सरोजिनी देवीके पत्रकी प्रतिलिपि आपकी सेवामें भेजी जाती है। आशा है कि आप दक्षिण अफ्रीकाके दिवस विषयपर 'आज'में लेख लिखेंगे।

तीन-चार दिन हुए मैं कानपुरमें श्री विद्यार्थीजीसे मिला था और हिन्दी जर्नेलिस्ट समितिके विषयपर बातचीत की थी। वे कहते थे कि 'नैतिक दृष्टिसे हिन्दीपत्र सम्पादकोंमें बड़ा अन्तर है। आर्थिक सहायता उनकी हम कर नहीं सकते इसलिए इस समितिका काम प्रायः सामाजिक ही रहेगा। हाँ, आपसके झगड़ोंके सुलझानेमें इससे कुछ मदद अवश्य मिल सकती है।'

मैंने उनसे कहा कि एक काम तो मैं कर सकता हूँ वह यह कि हिन्दी पत्रोंकी सम्मतियोंको अंग्रेजी पत्रोंमें समय-समयपर भेजता रहूँ। मुझे विश्वास है कि अंग्रेजी पत्र मेरी भेजी हुई चिट्ठियोंको बराबर छाप देंगे।

आशा है कि नियमोंमें आपने संशोधन कर लिया होगा।

भवदीय—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

फिरोजाबाद
११।५।२६

श्रीमान्

प्रणाम। 'सम्पादक समिति'के नियमोंके विषयमें आपकी सम्मति नहीं ज्ञात हुई। आशा है कि अब आप इस विषयमें विलम्ब न करेंगे। भरतपुर सम्मेलन तक हम लोगोंको कुछ-न-कुछ काम कर लेना चाहिए। श्री नरदेव शास्त्रीजीकी चिट्ठी मेरे पास ज्वालापुरसे आयी थी। उन्होंने मुझे इसी

कार्यके सम्बन्धमें वहाँ बुलाया था। अवकाश न होनेके कारण मैं वहाँ नहीं जा सका।

सम्पादक समितिके लिए मैं यथावकाश एक काम करनेकी इच्छा रखता हूँ। वह यह है कि हिन्दी पत्रोंकी सम्मतियाँ अंग्रेजी पत्रोंको भेजना और हिन्दी सम्पादकों और लेखकोंके चरित्र अंग्रेजी शिक्षित जनताके सम्मुख रखना। अंग्रेजीवालोंका यह कर्तव्य है कि वे देशी भाषाओंके पत्रोंकी सम्मतिका मूल्य समझें पर वे अपने कर्त्तव्यका पालन प्रायः नहीं करते।

पूज्य सप्रेजीके विषयमें साथका लेख मैंने 'लीडर'को भेजा है। यह आपकी सेवामें केवल अवलोकनार्थ भेजा जाता है, अनुवादार्थ नहीं। आपका विस्तृत नोट मैं पढ़ चुका हूँ। श्री माखनलालजीकी 'क्या शीर्षक दें' कविता सप्रेजीके विषयमें बहुत हृदयद्रावक बनी है। उसे उद्धृत कीजिए।

१ जुलाईसे मेरा विचार प्रयागमें रहनेका है। तभी आपकी सेवामें उपस्थित होनेका प्रयत्न करूँगा।

क्या आप अब भी आजके विशेष लेखोंके लिए पुरस्कार देते हैं? मैं अधिकसे अधिक ८–१० कालम प्रतिमास आपको भेज सकता हूँ। मुझे स्मरण है कि नागपुर कांग्रेसके समय आपने मुझे ३ रुपये प्रति कालमके हिसाबसे ५०) दिये थे जिससे मैं नागपुर जा सका था। यदि अब आपने देनेका नियम बन्द कर दिया हो तब तो मैं कुछ नहीं कह सकता पर यदि नियम हो तो मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप मुझे फिर 'आज'की सेवा करनेका अवसर दीजिए।

चरखेमें श्रद्धा न होनेके कारण मैंने सवा साल पहले गुजरात विद्यापीठ-से त्यागपत्र दे दिया था। इसलिए मुझे अपनी आजीविकाके लिए लेख लिखनेकी आवश्यकता पड़ी है।

भवदीय कृपाकांक्षी—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

चतुर्वेदीजी हिन्दी सम्पादकों तथा पत्रकारोंके संघटनके प्रश्नको बहुत

महत्त्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने सम्पादक समितिके कार्यको अग्रसर करनेके लिए अपनी सेवाएँ समर्पित कीं। इस सम्बन्धमें उन्होंने समितिके अध्यक्ष पराड़करजीको पत्र लिखे और हिन्दी पत्रोंके सम्पादकोंको भी अपनी योजना सूचना-सुझावके लिए भेजी।

फीरोजाबाद

३०-९-२६

श्रीमान्—हिन्दी सम्पादकोंके संघटनके विषयमें क्या कार्य हो रहा है? इस कार्यकी अब अधिक उपेक्षा न होनी चाहिए। मैं इस कार्यको अब अपने हाथमें लेना चाहता हूँ। जितने सभासद अब तक बन चुके हैं उनकी एक मीटिंग तो होनी चाहिए। कृपया नरदेव शास्त्रीको शीघ्र ही लिखिए कि वे काशीमें शीघ्र ही मीटिंग बुलायें।

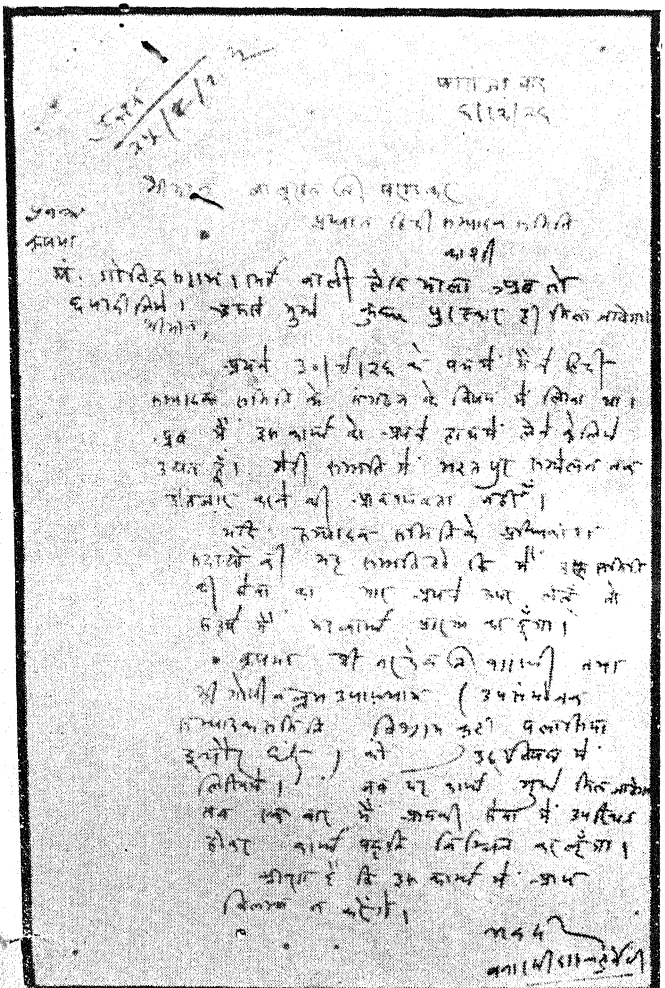
जो सम्पादक महाशय न आ सकें वे अपनी सम्मति लिखकर भेज सकते हैं। मीटिंगके प्रोग्राममें एक 'आइटम' मन्त्रीकी 'नियुक्ति' होना चाहिए। मैं इस पदके लिए उम्मेदवार हूँ। यदि कोई दूसरे महाशय भी इस कामके लिए उम्मेदवार हों तो उनका नाम भी लिखा जाना चाहिए। नरदेव शास्त्रीजीने मुझसे देहलीमें कहा था कि तुम इस कामको अपने हाथमें ले लो। मैंने उस समय यही कह दिया था कि जब मैं इलाहाबाद जाऊँगा तब ले लूँगा। अभी मैं सात-आठ महीने इलाहाबाद न जा सकूँगा। यह समय मैं व्यर्थ नहीं खोना चाहता। कृपया इस कार्यमें अधिक विलम्ब न कीजिए।

भरतपुर सम्मेलन तक बैठे रहना बड़ी जबरजस्त गलती होगी। दस महीने हम लोगोंने खो दिये। अब ये ४ महीने और क्यों खोवें?

आप जैसे योग्य सम्पादककी प्रधानतामें भी यह कार्य सुसंघटित रूपसे न हो सका तो फिर हमें निराश ही होना पड़ेगा। आशा है कि आप इस पत्रको आवश्यक समझेंगे।

भवदीय कृपाकांक्षी—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

श्री बनारसीदास चतुर्वेदीका पत्र



[illegible]
[illegible]

श्रीमान् बाबूराव जी पराड़कर
प्रधान हिन्दी सम्पादक समिति
काशी

[illegible]

आपका [illegible] का पत्र मैंने हिन्दी सम्पादक समिति के संगठन के विषय में [illegible] था। अब मैं इस कार्य को अपने हाथमें लेने के लिये उद्यत हूँ। मेरी सम्मति में [illegible] सम्मेलन तक इन्तजार करने की आवश्यकता नहीं।

यदि सम्पादक समिति के [illegible] महाशयों की यह सम्मति हो कि मैं इस समिति की सेवा का भार अपने ऊपर [illegible] तो [illegible] मैं कार्य प्रारम्भ कर दूँगा।

कृपया श्री नरेन्द्र [illegible] तथा श्री गोपीकृष्ण उपाध्याय (उपमंत्री सम्पादक समिति विश्राम कुटी पलासिया इन्दौर [illegible]) को [illegible] लिखिये। [illegible] यह कार्य मुझे मिल [illegible] तब [illegible] मैं आपकी सेवा में उपस्थित होकर कार्य पद्धति निश्चित कर लूँगा।

आशा है कि इस कार्य में आप विलम्ब न करेंगे।

भवदीय
बनारसीदास चतुर्वेदी

श्रीमान् बाबूरावजी पराड़कर, फीरोजाबाद
प्रधान हिन्दी सम्पादक समिति, काशी। ६-१२-२६

अपने ३०-९-२६ के पत्रमें मैंने हिन्दी सम्पादक समितिके संघटनके विषयमें लिखा था। अब मैं इस कार्यको अपने हाथमें लेनेके लिए उद्यत हूँ। मेरी सम्मतिमें भरतपुर सम्मेलन तक इन्तजार करनेकी आवश्यकता नहीं।

यदि सम्पादक समितिके अधिकांश सदस्योंकी यह सम्मति हो कि मैं इस समितिकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लूँ तो सहर्ष मैं यह कार्य प्रारम्भ कर दूँगा।

कृपया श्री नरदेवजी शास्त्री तथा श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय (उप संयोजक सम्पादक समिति विश्राम कुटी, पलसिया इन्दौर सिटी) को इस विषयमें लिखिए। जब यह कार्य मुझे मिल जायगा तब एक बार मैं आपकी सेवामें उपस्थित होकर कार्य-पद्धति निश्चित कर लूँगा। आशा है कि इस कार्यमें आप विलम्ब न करेंगे।

भवदीय—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

इसे मैंने अपने सम्पादक मित्रोंको भेजा है—

श्रीमान्! श्री वृन्दावन हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसरपर हिन्दी सम्पादक समितिके नियमोंके संघटनका आयोजन किया गया था। गत मार्चके प्रारम्भमें श्री नरदेव शास्त्रीजीने और मैंने इस समितिके नियमोंका ड्राफ्ट बनाकर सम्पादकोंकी सेवामें भेजा था। श्री नरदेवजीने मुझसे इस कार्यको अपने हाथमें ले लेनेके लिए कहा था। मैंने उस समय उन्हें यही उत्तर दिया था कि प्रयागमें स्थायी रूपसे रहनेके बाद मैं यह सेवा अपने ऊपर ले लूँगा। दुर्भाग्यवश मैं प्रयाग अभी तक नहीं जा सका। और न अभी ७-८ महीने तक वहाँ पहुँच ही सकूँगा। ऐसी दशामें मैं यही उचित

समझता हूँ कि यह कार्य प्रारम्भ कर दिया जावे। भरतपुरके सम्मेलनके लिए इन्तजार करना ठीक नहीं है। पर साथ ही साथ मैं यह बात स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि किसी संस्थामें पद या अधिकारके लिए झगड़ना मेरी नीतिके विरुद्ध है। यदि कोई अन्य सज्जन इस कार्यको योग्यतापूर्वक कर सकें तो मैं बड़ी खुशीके साथ उनसे सहयोग करूँगा।

मुझे एक सुभीता प्राप्त है वह यह कि लगभग सभी अंग्रेजी भारतीय पत्रोंसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए मैं हिन्दीवालोंके कार्यको अंग्रेजी पत्रोंमें आसानीके साथ छपा सकता हूँ। इसके अतिरिक्त हिन्दी पत्र सम्पादन कलाके इतिहासका भी मसाला मैं संग्रह कर रहा हूँ। उसमें भी हिन्दी सम्पादक समितिके संघटनसे मुझे बड़ी मदद मिल सकती है। प्रवासी भारतीयोंके आन्दोलनमें तो उसका उपयोग करूँगा ही। वस्तुतः मैं इसी आशासे इस कार्यको अपने हाथमें लेना चाहता हूँ कि इससे मेरे उद्देश्य अर्थात् प्रवासी भाइयोंकी सेवा तथा हिन्दी लेखकों और कवियोंकी कीर्ति-रक्षाके प्रश्नमें सहायता मिलेगी। सप्ताहमें ३–४ घण्टे इस कार्यमें लगा सकूँगा।

कृपया लिखिए कि आप और अन्य क्या-क्या सेवा मुझसे लेना चाहते हैं। आपकी तथा अन्य हिन्दी सम्पादकोंकी सहानुभूति मिलनेपर इस कार्यको अपने हाथमें ले लूँगा।

आशा है कि आप इस विषयमें अपने विचार मुझे शीघ्र ही भेजेंगे।

भवदीय कृपाकांक्षी—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

चतुर्वेदीजीने इसी आशयका पत्र श्री नरदेव शास्त्रीजीको लिखा जिसके उत्तरमें शास्त्रीजीने निम्नलिखित पत्र लिखकर संयोजकका कार्य-भार उन्हें सौंपा तथा कार्य सम्बन्धी भी कतिपय निर्देश दिये। शास्त्रीजीका पत्र इस प्रकार है—

मार्गशीर्ष सुदी ४, गुरुवार १९८३

श्री पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी,

[१] आपका पत्र मिला। धन्यवाद !

[२] मेम्बरोंसे पूछने और राय मँगानेमें देरी होगी और उत्तर भी विलम्बसे आयेंगे, इसलिए मैं ही आजसे आपको चार्ज देता हूँ। आप भरतपुर सम्मेलन तक अपने नामके साथ स्थानापन्न संयोजक लिखते रहें। फिर आप पक्के संयोजक बन जायँगे।

[३] इस बातकी सूचना मैं श्री प्रधान, हिन्दी सम्पादक समितिको दे रहा हूँ।

[४] सूचना इन्दौर कार्यालय भी भेज रहा हूँ। सब कार्य आप तथा पण्डित गोपीवल्लभ जी उपाध्याय परस्पर-परामर्शसे करते रहिए। इनसे बराबर पत्र व्यवहार रखिए। इस समय आपके कार्य ये हैं—(१) सम्पादकोंका समितिकी ओर ध्यान आर्कषित करना। (२) द्वितीय सम्पादक सम्मेलनके लिए उत्साह उत्पन्न करना। (३) उप-संयोजक द्वारा कार्य कराते रहना। हिन्दी सम्पादन-कला आदिके इतिहासकी सामग्री एकत्रित करना आदि। आप इस विषयमें पण्डित हैं। मैं क्या अधिक लिखूँ। (४) अब आप अपना काम प्रारम्भ करें, विलम्ब न हो। समितिके पास सौ या इससे अधिक रुपया जमा है सो भी श्री उप-संयोजकजीसे पूछ लें। इस पत्र द्वारा हिन्दी सम्पादक समितिका चार्ज आपके पास जाता है। आपकी सफलता चाहता हूँ।

संयोजक—**नरदेव शास्त्री**

शास्त्रीजीके इस पत्रकी प्रतिलिपि भेजते हुए चतुर्वेदीजीने पराड़करजीको १२ सितम्बर, १९२६ को पत्र लिखा—××× क्या सम्पादक समितिका काम करने लगूँ ? आज्ञा आनेपर कागजात इन्दौरसे यहाँ मँगा लूँगा और आपके दर्शनार्थ तथा सलाह लेनेके लिए काशी भी आऊँगा।

भरतपुरके अधिवेशनके लिए कार्यक्रम तैयार करना है। स्वर्गीय गोस्वामी राधाचरणजीके यहाँ हिन्दी सम्पादनकलाके लिए बहुत कुछ मसाला था। उसीकी देखभालके लिए कल वृन्दावन जा रहा हूँ। स्वर्गीय नन्दकुमारदेव शर्माजीके घरपर भी जाऊँगा। पत्रोत्तर कृपया शीघ्र भेजिए।

भवदीय—बनारसीदास चतुर्वेदी

उधर समितिके संयोजक श्री नरदेव शास्त्रीजीने पराड़करजीको भी पत्र लिखकर कार्य-भार चतुर्वेदीजीको सौंपनेकी सूचना दी और स्वीकृति प्रदान करनेकी संस्तुति की—

श्रीप्रधान, मार्गशीर्ष शुद्ध ४, गुरुवार १९८३

हिन्दी सम्पादक समिति, काशी।

सेवामें निवेदन है कि इस वर्ष मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया है। इसलिए मैंने श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदीसे प्रार्थना की थी कि वे संयोजकके कार्यको सँभालें। अब उनका पत्र आया है कि उनको कार्य दिया जाय तो वे तैयार हैं। इसलिए मैंने आजसे अपना काम उनको सुपुर्द किया है। वे तथा उप-संयोजक महाशय परस्पर परामर्शसे काम करते रहेंगे। आप पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके पास अपनी स्वीकृति दे देंगे। आशा है अब काम ठीक होगा और उत्साहसे होगा।

—नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

सम्पादक समितिके प्रधान पराड़करजीने चतुर्वेदीजीको समितिका संयोजक बननेकी स्वीकृति तो दी है, साथ ही 'सम्पादक-सम्मेलन' शीर्षक अग्रलेखमें आशा प्रकट की कि वे अगले सम्मेलन तक समितिका संघटन सुचारु रूपसे करनेमें समर्थ होंगे। उक्त अग्रलेख पढ़कर, चतुर्वेदीजीने पराड़करजीको जो पत्र लिखा उसमें सम्पादक समितिके भावी कार्यक्रमका भी संकेत मिलता है—

फिरोजाबाद
२१–१–२७

श्रीमान् पराड़करजी,

अभी आपका सम्पादक-सम्मेलन शीर्षक अग्रलेख पढ़ा। आपने यह आशा प्रकट करके कि मैं अगले सम्मेलन तक समितिका संघटन अच्छी तरह कर सकूँगा, मेरे ऊपर और भी अधिक भार रख दिया है। २५ तारीखको भरतपुर फिर जा रहा हूँ और वहाँसे वाजपेयीजीको तार भिजवाऊँगा। यदि उन्होंने अस्वीकृत किया तो फिर गर्देजीसे ही प्रार्थना करनी पड़ेगी। दोनों सज्जनोंसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वाजपेयीजी मेरे लिए पूज्य हैं और गर्देजी सुहृद् हैं। दोनोंमें-से किसीके साथ काम कर सकता हूँ। वाजपेयीजी स्वीकार कर लें तो अच्छा हो।

मैं चाहता हूँ कि यह एक महीना इसी काममें लगा दूँ पर क्या करूँ यहाँ इतना भी सुभीता नहीं कि एक महीनेके लिए भोजनका प्रबन्ध कुटुम्बके लिए कर सकूँ। हिन्दीमें 'फ्री लान्स जर्नलिज़्म'का कठिन प्रयोग कर रहा हूँ। २६ को दिल्ली पहुँचूँगा और वहाँ हिन्दू संसार कार्यालयमें ठहरूँगा। कौन्सिलके मेम्बरोंसे मिलकर 'ओवरसीज कमेटी' कायम करानी है। अब तो भरतपुरमें आपके दर्शन होंगे।

भवदीय कृपाकांक्षी—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

शास्त्रीजीकी सिफारिश और पराड़करजीकी स्वीकृतिके परिणाम-स्वरूप चतुर्वेदीजीने सम्पादक समितिके संयोजकका कार्यभार सँभाल लिया। भरतपुर सम्पादक सम्मेलनके सभापतित्वके लिए पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी तथा पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्देजीसे प्रार्थना की गयी थी किन्तु दोनोंने किसी कारणवश इसे स्वीकार नहीं किया। फलतः पराड़करजीने श्री बनारसीदास चतुर्वेदीजीको तार देकर पण्डित माखनलाल चतुर्वेदीसे उक्त सम्मेलनकी अध्यक्षता स्वीकार करनेका निवेदन किया।

इधर श्री बनारसीदासजीने कार्यभार ग्रहण करते ही सम्पादकों और पत्रकारोंमें उच्चस्तर बनाये रखनेके लिए उनके नियमनका भी प्रयत्न आरम्भ किया। निम्नलिखित पत्रोंसे घटनापर पूरा प्रकाश पड़ता है—

सम्पादकों और पत्रकारोंका नियमन

हिन्दी सम्पादक-समिति कार्यालय,
फीरोजाबाद : ५-३-२७

श्रीमान् पराड़करजी,

आपका निम्नलिखित तार 'गर्दे रिफ्यूज्ड सजेस्ट माखनलाल चतुर्वेदी' पढ़कर बड़ा खेद हुआ। मेरा विश्वास है कि आपने गर्देजीपर पूरा जोर दिया होगा। जब उन्होंने आपका अनुरोध स्वीकार नहीं किया तो मुझे आशा नहीं कि मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। आपकी आज्ञानुसार आज श्री माखनलालजी चतुर्वेदीजीको तार दे रहा हूँ।

सम्पादक 'भारतवीर' की सेवामें जो पत्र भेजा गया है उसकी प्रति आपको भेजता हूँ। इस प्रकारके अशिष्ट मजाकोंका छपना ठीक नहीं। आशा है कि आप मुझसे इस कार्यवाहीमें सहमत होंगे।

भवदीय—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

माखनलालजीको तार दे दिया है—'प्लीज एक्सेप्ट प्रेसिडेण्टशिप हिन्दी जर्नलिस्ट कानफरेन्स, भरतपुर।'

'भारतवीर' सम्पादक (भरतपुर) को भेजी गई निम्नलिखित चिट्ठीसे हिन्दी पत्रकारितामें ऊँचा मानदण्ड बनाये रखने तथा अशोभनीय एवं निम्न श्रेणीके हास्य-विनोदकी प्रवृत्ति न पनपने देनेका स्तुत्य प्रयत्न है। इससे विदित होता है कि हिन्दी सम्पादक समितिने सम्पादकोंकी आचार संहिता बनानेकी दिशामें सन् '२७में ही कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

श्रीमान् सम्पादकजी,

'भारतवीर' के १-३-२७ के अंकमें श्री खरे गल्पाचार्यकी 'खरी-खरी बातोंमें निम्नलिखित वाक्य है—'पं० सुदर्शनाचार्य तो ३) में ही अपनी गृहलक्ष्मीको लोगोंके पास भेजते हैं पर पं० ज्योति प्रसाद निर्मलने अपनी 'मनोरमा' की १२ बारकी फीस ५) रक्खी है। ठीक है, गृहलक्ष्मीसे मनोरमा मोटी-ताजी चमकीली, सुन्दर और चित्ताकर्षक भी तो है।'

मेरा अनुमान है कि यह वाक्य छपनेके पहले आपकी नजरसे नहीं गुजरा। आपकी सेवामें यह निवेदन करनेकी आवश्यकता नहीं कि यह मजाक शिष्टताकी सीमासे बहुत दूर चला गया है। बड़ी कृपा हो यदि आप 'खरे गल्पाचार्य'से सम्पादक समितिकी ओरसे प्रार्थना कर दें कि वे भविष्यमें इस प्रकारके भद्देपनको बचाकर लिखा करें। आशा है कि वे बुरा न मानेंगे। यदि हमीलोग अपने मजाकमें शिष्टताका खयाल न रखेंगे तो पाठकोंकी रुचि बहुत बिगड़ जावेगी। सम्पादक समिति 'खरे गल्पाचार्य'जी की अथवा अन्य किसी लेखककी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप नहीं कर सकती, वह नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर सकती है और इसी दृष्टिसे यह प्रार्थना की गई है।

प्रार्थी—**बनारसीदास चतुर्वेदी, मन्त्री**

श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थीजीके पत्र

पराड़करजी तथा श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थीके सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ थे, यह हम देख चुके हैं। पत्रकारी तथा समाचारपत्रोंकी समस्याओंके विषयमें पराड़करजी और गणेशजीमें समय-समयपर विचार-विमर्श हुआ करता था। यहाँ दो पत्र दिये जाते हैं जिनसे पराड़करजीके प्रति गणेशजीके पूज्य भाव तो प्रकट होते ही हैं, पत्रकारिता सम्बन्धी उनकी निर्भीक नीतिके भी दर्शन होते हैं—

'प्रताप' कार्यालय

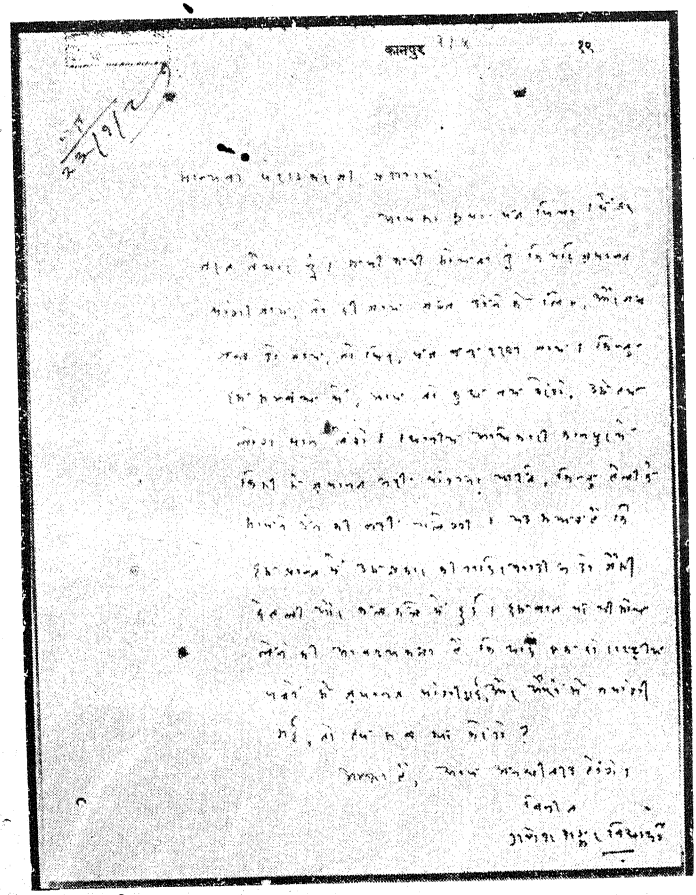
कानपुर : १८-६-१९२५

मान्यवर पराड़करजी, प्रणाम।

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। आपके कृपाभावके लिए बहुत कृतज्ञ हूँ। जिस पत्रके छपनेपर चाँदवालोंको अदालतमें जानेकी आवश्यकता अनुभव होती है, उसमें जितना अंश मुझे अनुचित भासित हुआ, उसका प्रतिकार मैं 'प्रताप'के दूसरे अंकमें कर चुका। इसके अतिरिक्त, इस समय कुछ भी करना मुझे आवश्यक मालूम नहीं पड़ता। सन्तान वृद्धि-निरोधके प्रश्नपर मेरा कोई झगड़ा नहीं है। किन्तु मेरा यह विचार है कि इस ज्ञानका प्रचार न चाहनेवालोंपर जो कटु प्रहार होते हैं, यदि वैसे ही कटु प्रहार वे लोग करें, तो, दूसरे पक्षके लोगोंको बुरा न मानना चाहिए। और जहाँ तक किसी खुले प्रश्नपर खुले ढंगसे किन्तु भद्रताके साथ बातें कहने और राय प्रकट करनेका प्रश्न है, वहाँ तक, मेरी साधारण समझमें तो, यही बात आती है कि अपने विरुद्ध तक कटु बातोंके छापनेमें हमें कोई हिचक न होनी चाहिए। इसीलिए, मेरी धारणा तो यह है कि 'चाँद'के उस लेखकी आलोचना करनेवाले और भी अधिक तीव्र ढंगसे लिखनेके पूरे अधिकारी थे। सम्भव है, मेरी धारणा गलत हो। किन्तु, इस प्रकारकी गलतियोंका सुधार अदालती फैसलोंकी ताकतसे बाहरकी चीज है।

श्रीयुत् सहगलजीको आप जो चाहें सो लिख दें। उन्होंने पं० हरिभाऊ उपाध्यायको कुछ लिखा है। इसीलिए, उपाध्यायजी मुझे कई पत्र अब तक लिख चुके हैं। उनके लिखनेपर मेरा ध्यान एक विशेष दिशाकी ओर तो अवश्य गया। उन्होंने लिखा है कि सहगलजीका चित्त दुःखी हुआ, कमसे कम इसका, तो तुम्हें खयाल होना ही चाहिए। उपाध्यायजीकी यह बात ठीक है। मैंने, यथार्थमें, सहगलजीके चित्तके दुखानेके लिए कुछ भी नहीं किया। इस बात तकके लिए कि उनका चित्त मेरे किसी उचित कामसे दुख गया, मैं उनसे क्षमाकी भिक्षा माँगता, किन्तु जिस समय कि

श्री गणेशशंकर विद्यार्थीका पत्र



वे मेरे सिरपर अदालत, कानून और वकीलकी तोपका निशाना बाँधे बैठे हों और इधर और उधरसे बराबर धमकियाँ दे रहे हों, मुझे उनके हृदयकी व्यथाकी अपेक्षा अपने हृदयकी स्थिरताकी रक्षाकी अधिक चिन्ता है। और आप मानेंगे कि मेरी यह मानसिक वृत्ति स्वाभाविक है।

मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि आप इस झगड़ेको इसके अपने भाग्य-पर छोड़िए। होने दीजिये, जो कुछ होनेको हो। मेरा विश्वास है कि जो कुछ होगा, वह बहुत अच्छा होगा। आशा है आप सानन्द होंगे। यदि मेरे इस पत्रमें आपको कोई भी बात ऐसी भासित हो जो अहंमन्यतापूर्ण हो तो उसके लिए क्षमा कीजिए। मैं आपके सामने किसी प्रकारकी धृष्टता नहीं कर सकता। आप मेरे गुरु-तुल्य हैं। अत्यन्त विनयके साथ,

सेवक—**गणेश शङ्कर विद्यार्थी**

पराड़करजीने इस पत्रका उत्तर गणेशजीको क्या लिखा, खेद है कि उसकी प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं अन्यथा पत्रकारिता सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर पराड़करजीका दृष्टिकोण भी सामने आ जाता। अस्तु। सन् '३० के राष्ट्रीय आन्दोलनके समय जब ब्रिटिश सरकार स्वतन्त्र समाचारपत्रों-पर दमनचक्र चला रही थी, उस समय समान नीति स्थिर करनेके लिए पराड़करजीने गणेशजीको पत्र लिखकर उनकी राय माँगी थी। गणेशजीके पत्रोत्तरसे तत्कालीन परिस्थिति तथा नीतिका परिचय मिलता है—

'प्रताप' कार्यालय

कानपुर : ३–५–१९३०

मान्यवर पराड़करजी, प्रणाम।

आपका कृपा पत्र मिला। मैं हर तरहसे तैयार हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ कि यदि जमानत माँगी जाय, तो दी जाय जब्त होनेके लिए और जब जब्त हो जाय तो फिर पत्र बन्द रखा जाय। किन्तु इस सम्बन्धमें आप जो कुछ तय करेंगे, उसे हमलोग मान लेंगे। स्थानीय अधिकारी कानपुर-

के किसी पत्रसे जमानत नहीं माँगना चाहते किन्तु हेलीके सम्मने उनकी नहीं चलेगी। यह सम्भव है कि इस प्रान्तमें उस प्रकारकी नादिरशाही न हो जैसी देहली और कलकत्तेमें हुई। इस बातपर भी सोच लेनेकी आवश्यकता है कि यदि एक-दो राष्ट्रीय पत्रोंसे जमानत माँगी गई और औरोंसे न माँगी गई तो हम सब क्या करेंगे ?

आशा है, आप अच्छी तरह होंगे।

विनीत—**गणेश शङ्कर विद्यार्थी**

पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदीके पत्र

प्रसिद्ध पत्रकार तथा साहित्यकार पण्डित माखनलाल चतुर्वेदीजीसे भी पराड़करजीकी हार्दिक घनिष्ठता थी। दोनोंमें पत्रकारिता सम्बन्धी विचार-विमर्श हुआ करता था। निम्नलिखित पत्रोंसे पराड़करजीके प्रति श्री माखनलालजी चतुर्वेदीके हार्दिक भाव प्रकट होते हैं और इनमें पत्रकारिता सम्बन्धी चर्चाका भी संकेत मिलता है—

महाकोशल प्रिंटिंग प्रेस
इटारसी:२७-१०-३९

मान्य भाई पराड़करजी,
सादर नमन।

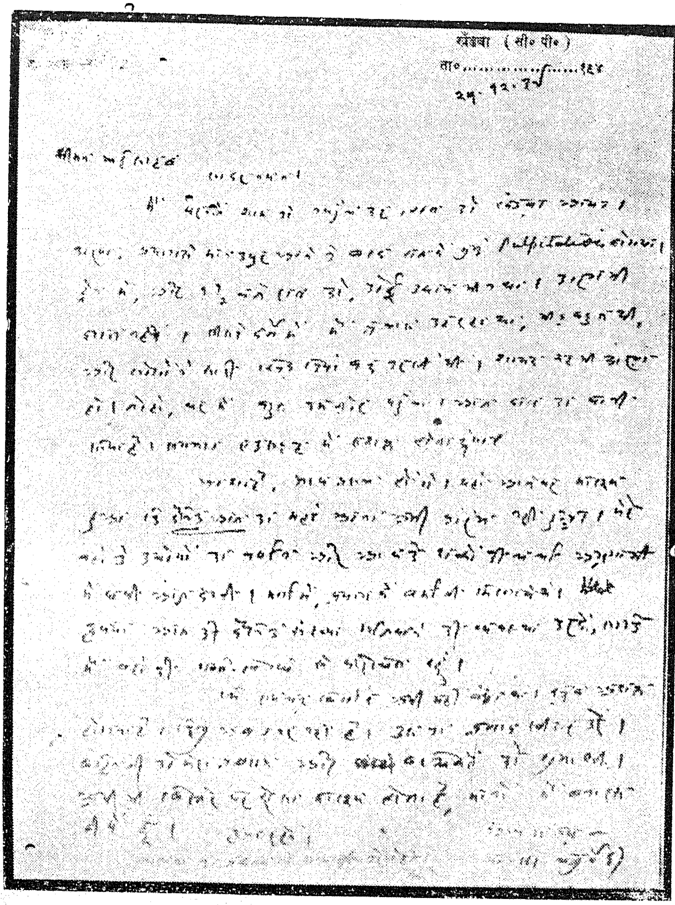
मैं मंगलवारको दोपहर, इटारसी सकुशल पहुँचा। आज रात खंडवा चला जाऊँगा। चि० रामचन्द्रका तापमान जबलपुरमें, मंगलके सुबह रेलमें ९८ डिग्री हो गया था किन्तु वह फिर बढ़ गया। मैंने उन्हें खंडवा भिजवा दिया।

रेलमें चलते समय, मैं जल्दीमें प्रणाम भी न कर सका। न चि० नारायणसे आशीश कह सका। इसका रेलमें बड़ा खेद रहा। क्षमा करें।

मुझे आशा है, आप भूले न होंगे कि श्रीमती कमला बाई साहिबा किंवेको आपको पत्र लिखना है जिसकी चर्चा कि मैंने आपसे की थी।

आशा है, आप अब लौट आये होंगे। पता नहीं सम्पादक सम्मेलनके भाषणका क्या हुआ।

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदीका पत्र



खंडवा (सी० पी०)

ता०..........................१९३

मैं जो स्मृतियाँ बनारससे आपके सान्निध्यसे तथा कलाप्रेमियोंकी कृपासे लेकर आया हूँ, प्रभुसे प्रार्थी हूँ कि वे सदा हरी रहें।

चि० कुमुदको मेरा शुभाशीः। बहिनजीको सादर प्रणाम। श्री भागवत-की याद रामको आती रही। उन्हें मेरा नमस्कार।

कृपया 'आज' का भेजना कर्मवीरके पतेपर जारी कर दीजिए। याद दिलाते डरता हूँ। विशेष विनय। पत्र दें।

आपका नम्र—मा० ला० चतुर्वेदी

पुनश्च—आशा है, आपका सम्पादक सम्मेलनके भाषणपर लिखा अग्र-लेख निकलनेपर आप उसकी कृपया ५ प्रतियाँ भिजवानेका कष्ट करें। १ प्रति श्री कमलाबाई साहबको भेज दूँगा।

मेरे दिये कष्टोंको क्षमा कीजिएगा। आप बाबू शिवप्रसादजी गुप्तकी देशभक्त आत्माके प्रति मेरा नमस्कार पहुँचा दें।

नम्र—माखनलाल

खंडवा (सी० पी०)
२१-१२-३९

श्रीमान् भाईसाहब, सादर नमन।

मैं परसों शामको न पहुँचकर, रातको खंडवा आया। कारण, प्रयागसे मानकपुर आनेके बाद रातमें मुझे 'पलपिटेशन' हो गया। ट्रेनमें, और एक बजे रातको, कोई उपाय भी न था। कारण भी ज्ञात नहीं। तीसरे दर्जेमें मैं प्रवास कर रहा था, भीड़ बहुत थी और लोगोंने सारी खिड़कियाँ बन्द करा ली थीं। शायद यह भी कारण हो। जो हो, घरमें बहुत कमज़ोर पहुँचा। आज दालका पानी लिया है। लगभग एक सप्ताहमें सशक्त हो जाऊँगा।

आशा है आप प्रसन्न होंगे। यहाँ आनेपर मालूम हुआ कि दैनिक आजका यहाँ आना अभी प्रारम्भ नहीं हुआ। मेरे वहाँके उद्योगोंका वर्णन

और आपके शब्दोंकी चर्चा अग्रगामीमें छपी आज देखी। मार्गमें, प्रयागमें बर्माजी मिल गये थे। कृपया 'आज'की दैनिक संख्या भिजवानेकी व्यवस्था कर दें, ताकि मैं वहाँकी गतिविधिसे परिचित रहूँ।

चि० रामचन्द्र विलोरे अभी यहीं बैठा था। खूब अशक्त हो गया है। किन्तु अब ज्वर नहीं है। उसका प्रणाम स्वीकार करें। बहिनजीको मेरा प्रणाम और बच्चियोंको शुभाशी:। अभी भी बिस्तरेपर ऐसा मालूम होता है, मानो मैं बनारस ही में हूँ। कृपा रखें।

सहायताका प्रबन्ध तो आप शीघ्र करेंगे ही।

आपका नम्र—मा० ला० चतुर्वेदी

सम्पादक सम्मेलनसे पत्रकार सम्मेलन

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी सम्पादक सम्मेलन

१ २०।१ वाराणसी घोस स्ट्रीट
१४-४-१९३०

श्रीमन्,

सम्पादक सम्मेलनके पिछले अधिवेशनमें आप स्थायी समितिके सदस्य निर्वाचित हुए हैं। आशा है कि आप इस पदको स्वीकार करेंगे। जैसी अवस्था है उसमें सब सदस्योंका मिलकर विचार करना सम्भव नहीं मालूम पड़ता। इसलिए पत्र द्वारा ही कुछ बातोंपर विचार कर लेना उचित और आवश्यकीय मालूम होता है। मेरा विचार है कि सम्मेलनके पहिलेवाले नियमोंमें निम्नलिखित परिवर्तन किये जायँ—

(१) सम्पादक सम्मेलनका नाम बदलकर पत्रकार सम्मेलन कर दिया जाय। (२) सदस्यताका शुल्क घटाकर ३) से १) कर दिया जाय। कृपया इस सम्बन्धमें अपनी सम्मति यथासाध्य शीघ्र भेजकर अनुगृहीत कीजिएगा।

भवदीय—विष्णुदत्त शुक्ल, मन्त्री

पराड़करजीको यह पत्र १७ अप्रैलको प्राप्त हुआ और उन्होंने उसी दिन श्री विष्णुदत्त शुक्ल, मन्त्री, अखिल भारतवर्षीय हिन्दी सम्पादक सम्मेलनको पत्र लिखकर सूचित किया कि उन्हें (१) सम्पादक सम्मेलनका नाम बदलकर पत्रकार सम्मेलन कर देना स्वीकार है तथा (२) यह भी स्वीकार है कि संघटनका सदस्यता शुल्क तीन रुपयेसे घटाकर, एक रुपया कर दिया जाय।

इसके पश्चात् सम्पादक सम्मेलन संघटन, पत्रकार सम्मेलन संघटनके रूपमें अग्रसर हुआ।

सन् १९३८ में अपर इण्डिया जर्नलिस्ट असोसियेशनने पराड़करजीको अपना उपाध्यक्ष चुना और उनकी स्वीकृति माँगी थी। कार्य-व्यस्ततासे पराड़करजी इसका उत्तर शीघ्र न दे सके। फलत: उसके सेक्रेटरी श्री के० ईश्वरदत्तने उन्हें शीघ्र स्वीकृति भेजनेका अनुरोध करते हुए पत्र लिखा कि आपके निर्देशनमें उत्तरी भारतके श्रमजीवी पत्रकारोंके संघटन कार्यमें बड़ी सहायता मिलेगी। श्री दत्तके अनुरोध-आग्रहके कारण पराड़करजीने अन्तत: उक्त संस्थाका उपाध्यक्षपद स्वीकार कर लिया।

पराड़करजी सन् १९४० में युक्तप्रान्तीय पत्र परामर्शदात्री (त्रिमूर्ति) समितिके सदस्य मनोनीत किये गये थे। स्वास्थ्य ठीक न रहनेके कारण उन्होंने इस पदपर किसी अन्यका चुनाव कर लेनेका अनुरोध किया था। इस सम्बन्धमें 'नेशनल हेरल्ड' सम्पादक श्री के० रामारावको आपने जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है—

५ दिसम्बर, १९४०

प्रिय रामारावजी,

आपका चार दिसम्बरका पत्र मिला। दिल्लीसे जबसे लौटा हूँ मैं रक्त चापसे पीड़ित हूँ और इस कारण शुक्रवारको सबेरे लखनऊ न आ सकूँगा। युक्तप्रान्तकी पत्रपरामर्शदात्री समितिमें मेरा मनोनयन जिन सहयोगियोंने किया है, उनको धन्यवाद देता हूँ। इधर जैसा स्वास्थ्य चल रहा है उसे

ध्यानमें रखते हुए मैं उक्त पदके कर्त्तव्योंका पालन न कर सकूँगा। यदि मेरे स्थानपर अन्य किसीका चुनाव कर लें तो बड़ी कृपा होगी।

बा० वि० पराड़कर

सन् १९४० में दिल्ली पत्रकार-सम्मेलनमें पराड़करजीने भाग लिया था और हिन्दी पत्रकारोंके संघटनके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये थे। उससे प्रेरणा लेकर हिन्दी पत्रकारोंके पृथक् संघटनका निश्चय किया गया। श्री विष्णुदत्त मिश्रके पत्रसे इस प्रसंगपर प्रकाश पड़ता है—

२२ दिसम्बर, १९४०

आदरणीय पराड़करजी,

सादर प्रणाम। आपने दिल्ली पत्रकार सम्मेलनके सम्बन्धमें जो विचार प्रकट किये थे, उससे उत्साहित होकर हमने अपना संघटन अलग करनेका निश्चय किया है। मैं अभी बिहार, बंगाल और यू० पी० के दौरेसे लौटा हूँ। अस्वस्थ हो जानेके कारण बनारस न आ सका। फिर भी आप साथ-वाले ड्राफ्टपर किये जानेवाले हस्ताक्षरोंसे समझ जायँगे कि 'रेसपान्स' बहुत अच्छा हुआ है। इच्छा थी कि आपसे स्वयं इसपर अनुमति लेता। अब आपको इसे भेज रहा हूँ। कृपाकर हस्ताक्षर करके लौटा दीजिए। हस्ताक्षर करनेका अर्थ है कि आपको आना ही होगा—मूलचन्द्रजी और हरिशंकरजी-ने यह अर्थ मुझे आपको लिख देनेको कहा है। विनीत—**विष्णुदत्त मिश्र**

पराड़करजीने इस पत्रका उत्तर ३ जनवरी, १९४१को मिश्रजीके पास भेज दिया।

समाचारपत्रोंके सम्मेलनको सन्देश

सन्' ४२ में देशके नब्बे समाचारपत्रोंके प्रकाशन स्थगित हो जानेके बाद इन पत्रोंके सम्पादकोंका सम्मेलन १४ सितम्बरको बम्बईमें आयोजित किया गया था। संयोजकने पराड़करजीसे सम्मेलनमें आनेका विशेष आग्रह किया था।

पराड़करजी इस सम्मेलनमें तो न जा सके किन्तु उन्होंने २ सितम्बर, १९४२ को निम्नलिखित पत्र भेजकर अपने मतका स्पष्टीकरण किया—

प्रिय दुगवेकरजी—स्थगित समाचारपत्रोंके सम्पादकोंके सम्मेलनका निमन्त्रण मिला। मुझे अत्यन्त खेद है कि मैं ऐसी स्थितिमें हूँ कि काशीसे बाहर नहीं जा सकता। मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं। पिछले १॥ वर्षसे मैं काशीसे बाहर कहीं गया ही नहीं। क्षमा करें।

मेरा मत है कि अभी वह उपयुक्त अवसर नहीं आया जब कि राष्ट्रीय पत्रोंका प्रकाशन शुरू किया जा सके। वर्तमान स्थितिमें इतने प्रतिबन्ध हैं कि समाचारपत्र केवल सरकारी बुलेटिन मात्र ही रहेंगे। टीका-टिप्पणी की जा नहीं सकती। हम जनताकी राय व्यक्त करनेके माध्यम बनकर जीवित नहीं रह सकते। इसलिए अच्छा है कि हमारा प्रकाशन स्थगित ही रहे। मातृभूमिके हितके लिए आवश्यक हो तो हमारा बलिदान भी श्रेयस्कर है।

'आज' तथा अन्य अनेक राष्ट्रीय पत्रोंका प्रकाशन एक विशेष सन्देशके प्रसारके निमित्त हुआ था। वर्तमान परिस्थितियोंमें उस सन्देशका प्रचार सम्भव नहीं है। यदि सरकारी प्रचारके बिना इन पत्रोंका अस्तित्व बनाये रखना सम्भव होता तो मैं निश्चय ही पत्रोंके पुनः प्रकाशनके पक्षमें मत देता किन्तु यह भी असम्भव है। वर्तमान स्थितिमें हम सरकारी सूचना विभागके प्रचारक मात्र बनकर ही जीवित रह सकते हैं। मैं इसके पक्षमें नहीं हूँ।

यह मेरी अपनी राय है। फिर भी मैं सम्मेलनके बहुमतका निर्णय मान्य करनेकी चेष्टा करूँगा। सम्मेलनकी सफलताकी कामना करता हूँ।

भवदीय—**बा० वि० पराड़कर**

द्वितीय महायुद्धके समय भारतके राष्ट्रीय समाचारपत्रोंपर कैसे प्रति-बन्ध लगे हुए थे तथा विदेशी सरकार किस प्रकार उनका उपयोग अपने प्रचार साधनके रूपमें करना चाहती थी, उपर्युक्त सन्देशसे स्पष्ट है। इस परिस्थितिमें पराड़करजीका निर्भीक एवं स्पष्ट दृष्टिकोण द्रष्टव्य है।

पराड़करजीने इसी नीतिका अवलम्बन राष्ट्रीय आन्दोलनोंके समय सरकारी प्रतिबन्धोंके विरोधमें किया। सन् १९३० में साढ़े पाँच महीनों तक 'आज' सरकारी आर्डिनेन्सके कारण बन्द रहा। 'आज' से जब जमानत माँगी गयी तो उसे अस्वीकार कर पत्रका प्रकाशन ही स्थगित कर दिया गया। सन् १९४२ के अगस्त आन्दोलनके बाद भी ऐसी ही स्थिति आयी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय रीति-नीतिके निर्भीक प्रकाशनपर जब भी सरकारी रोक-टोक लगती, 'आज'का सम्पादकीय स्तम्भ स्थगित कर दिया जाता था और निम्नलिखित वाक्य द्वारा विरोध प्रकट किया जाता था—'देशकी दरिद्रता, विदेश जानेवाली लक्ष्मी, सरपर बरसनेवाली लाठियाँ, देशभक्तोंसे भरनेवाले कारागार—इन सबको देखकर प्रत्येक देशभक्तके हृदयमें जो अहिंसामूलक विचार उत्पन्न हों वही सम्पादकीय विचार हैं।' 'सन्' ३१ में, गाँधीजीकी गिरफ्तारीके बाद सन् '३२ के आरम्भमें तथा अक्तूबर, सन् १९४० आदि अनेक अवसरोंपर सम्पादकीय लेख-टिप्पणियोंके स्थानपर केवल उक्त वाक्य ही प्रकाशित किया जाता था।

महामना मालवीयजी तथा राजेन्द्रबाबूके पत्र

पराड़करजी सम्पादन कलाके आचार्य माने जाते थे। तत्कालीन नेता तथा विद्वान् विचारक आपसे महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श किया करते थे और कार्योंमें सहयोग लिया करते थे। देशरत्न श्री राजेन्द्र प्रसादजी (वर्तमान राष्ट्रपति) सन् १९२६ में जब 'देश' नामक राष्ट्रीय पत्रके संस्थापक—संचालक थे तब उन्होंने पराड़करजीसे अपने पत्रके ६ ठें वार्षिकोत्सवपर निम्नलिखित पत्र द्वारा सहयोग चाहा था—

'देश' फोन नं० : १४९, पटना।

सम्पादकीय विभाग ५-३-१९२६

श्रीमान् बाबूराव विष्णु पराड़कर,—आपको विदित होगा कि आज ६ वर्षोंसे 'देश' अपने रास्तेपर राष्ट्र और मातृभाषाकी सेवा करता आ रहा

हैं। इसके ६ ठें वार्षिकोत्सवके उपलक्ष्यमें आगामी ६ अप्रिल (सत्याग्रह दिवस) को 'देश' का विशेषांक सज-धजकर निकलने वाला है। 'देश' अब तक आपके हो सदृश विद्वानों और हिन्दी प्रेमी सज्जनोंकी कृपापर आश्रित रहा है। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप 'भारतमें सम्पादन कलाका भविष्य' या किसी अन्य सामयिक विषयपर अपना एक छोटा-सा लेख शीघ्र भेजकर हमारे विशेषांकको अलंकृत करें। अब समय बहुत कम रह गया है, इसलिए बड़ी कृपा होती, अगर लेख भेजनेमें अनावश्यक विलम्ब न होता। कष्टके लिए क्षमा प्रार्थना। भवदीय—**राजेन्द्र प्रसाद**

इसी प्रकार देशके शीर्ष नेता महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने भी अपनी गोरक्षण योजनामें पराड़करजीका योगदान माँगा था। महामना-का दिनांक १३ मार्च' ४१ का पत्र इस प्रकार है: पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर—इस बातके प्रबन्धकी आवश्यकता है कि सर्व साधारण जनताको गौका सस्ता और शुद्ध दूध मिल सके और गौ कसाईके हाथसे बचाई जाय। इस लोकोपकारी प्रस्तावपर विचार करनेके लिए रविवार तारीख १६-३-४१ को ४ बजे शामको काशी विश्वविद्यालयमें मेरे निवास स्थानपर सभा होगी। आपसे निवेदन है कि आप कृपाकर सभामें पधारें और इस पुण्य कार्यमें शामिल हों। भवदीय—**मदनमोहन मालवीय**

• सम्पादन सम्बन्धी सिद्धान्त तथा पद्धति

सम्पादकीय लेख तथा टिप्पणी लेखनमें पराड़करजीका अद्वितीय स्थान रहा है। उनकी लेखनीका स्पर्श पाकर कोई भी प्रश्न अपना समाधान पा जाता था। यही कारण था कि जिस विषय या समस्यापर वे विचार करते, उसकी ओर सरकार और जनता दोनोंका ध्यान तत्काल आकर्षित होता था। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' के पटनासे लिखे दिनांक १० नवम्बर '५२ के पत्रमें पराड़करजीसे एक ऐसा

ही निवेदन किया गया था—पूज्य पराड़करजी, आज संस्कृतका सवाल देशके जीवनका प्रश्न है किन्तु सरकार इस विषयको टालनेके लिए मानो परिकरबद्ध है। बिहारमें जहाँ तक मुझसे बन पड़ा है मैंने सरकारको झकझोरनेका प्रयत्न किया है। जो हमारी बात आज नहीं सुनता वह कल अवश्य सुनेगा—ऐसा विश्वास है। बिहारके पत्रोंने साथ देनेकी दया की है किन्तु मुझे ऐसा जान पड़ता है कि वे मुझपर कृपा कर रहे हैं, मुझे कृतज्ञ कर रहे हैं। यही परितापका कारण है। सेवामें एक लेख भेज रहा हूँ और अगली डाकसे 'संस्कृत शिक्षाकी नवीन पद्धति'की एक प्रति भी भेजूँगा। आपकी अमर लेखनीके स्पर्श मात्रसे यह विषय अमर हो जायगा इसी आशाके बलपर पत्र लिख रहा हूँ। प्रणाम। सेवक—**वियोगी**

पराड़करजी न केवल अग्रलेख लिखनेमें सिद्धहस्त थे अपितु दैनिक पत्रके विविध अंगों—समाचार-सम्पादन, समाचार-अनुवाद, डाक-सम्पादन, संवाददाताओंके संघटन, प्रूफ संशोधनादिकी उनकी अपनी विशेष शैली थी और उनका अपना विशिष्ट सिद्धान्त था। यहाँ अत्यन्त संक्षेपमें इनपर विचार कर लेना समीचीन होगा। सम्पादन अथवा लेखनके समय उनकी तल्लीनता असाधारण प्रकारकी होती थी। आस-पास कोई बात करता या शोरगुल, पराड़करजीकी लेखनी अविरल गतिसे चला करती थी और उनके लेखन-क्रममें तनिक भी व्याघात नहीं पहुँचता था। ऐसी अद्भुत थी उनकी कार्य-संलग्नता !

विशेष लेखोंका सम्पादन वे किस प्रकार करते थे इसका एक शब्द-चित्र 'आज'के भूतपूर्व सम्पादक श्री विद्याभास्करजीके शब्दोंमें इस प्रकार है—'पण्डितजी लिखते या पढ़ते समय सर्वथा तल्लीन रहते। पासमें चाहे कुछ भी होता रहे, वह अपने काममें लगे रहते। इधर-उधर ध्यान नहीं देते। एक बार श्री सम्पूर्णानन्दजीका एक लेख लेकर मैं उनके पास चला गया। वे लिख रहे थे। मैं पास ही में खड़ा रहा। बहुत देर बाद ऊपर देखकर बोले—'आइए भास्करजी, कैसे हैं ?' मैंने इसका उत्तर

न देकर कहा—'मैं तो यहाँ बड़ी देरसे खड़ा हूँ।' इतना कहकर मैंने लेख उन्हें दे दिया। उन्होंने मुझसे बैठनेको या चले जानेको नहीं कहा। मैं वहीं खड़ा रहा। देखना चाहता था कि सम्पादकाचार्य लोग लेख पाकर क्या करते हैं। बात सन् १९३७–३८ की है। मेरे मनमें यह आकांक्षा भी नहीं थी कि मुझे भी सम्पादक बनना है। पण्डितजीने लेखका सम्पादन झटपट शुरू कर दिया। एक-एक शब्द पढ़ा। भूल-चूक ठीक की। 'आज'की परम्पराके अनुकूल विभक्ति-प्रत्ययको शब्दोंके साथ मिलाया। प्रत्येक पृष्ठपर संकेत सूचक अक्षर लगाकर पृष्ठ संख्या ठीक-ठाक की। लेखपर शीर्षक और लेखकका नाम दिया। इतना करनेके बाद मेरी तरफ देखकर मुसकराये। कहा—'ठीक है। जाइए।' आज मैं सम्पादक हूँ पर वैसा नहीं कर पाता। लेख रख जाइए, देखूँगा आदि कहनेवाले सम्पादकोंकी कमी नहीं। तुरत निर्णयसे लेखकका कितना कष्ट मिट जाता है, यह पराड़करजीसे सीखकर भी हम व्यवहृत नहीं कर पा रहे हैं।'[1]

समाचार-सम्पादन और अनुवादकी वर्तमान प्रणालीके पराड़करजी कटु आलोचक थे। जनवरी, १९५४ में सम्पादकीय विभागकी बैठकमें उन्होंने सम्पादकीय नीति तथा समाचारोंके सम्पादन एवं अनुवादके विषयमें संभवतः अन्तिमबार निर्देश किया था। राष्ट्रीय तथा निष्पक्ष पत्रकी आदर्श नीतिके सम्बन्धमें आपका कथन था कि जिस दलका शासन हो उसकी परराष्ट्र नीतिका समर्थन किया जाना चाहिए। विशेष स्थितिमें राष्ट्रीय नीतिका भी समर्थन होना चाहिए जैसे ब्रिटेनके संकटकालमें 'टाइम्स'ने किया था। इस विशेष स्थितिको छोड़कर राष्ट्रीय नीतिके प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रहना चाहिए। जनताके बहुमतके हित तथा उसकी भावनाको ध्यानमें रखकर जैसा उचित प्रतीत हो सरकारी नीतिका समर्थन अथवा विरोध करना चाहिए। अन्तरप्रान्तीय प्रश्नों एवं समस्याओंके सम्बन्धमें यथाप्रसंग

१. 'आज' पराड़कर स्मृति अंक : पृष्ठ संख्या १२

साधारण समर्थनके साथ कुछ-कुछ विरोध भी होना चाहिए। आपका मत था कि टीका विशेषतः जयकर तथा कृपालानी जैसी-से शासनका रूप अच्छा होगा। सरकारी नीतिका बिरोध एवं टीका जनताकी सहानुभूतिसे होनी चाहिए। शासक पक्ष (कांग्रेस) का अधिक अथवा उग्र विरोध आप उचित नहीं मानते थे। शासन पक्षके नेता नेहरूजीके प्रति आदर एवं श्रद्धा रखनेके आप पक्षपाती थे। तात्कालिक शासनका समर्थन आँख बन्द-कर नहीं होना चाहिए, यह आपकी मान्यता थी। राष्ट्र तथा देश हमारा है तथा जनताके प्रतिनिधि ही शासक हैं, इस बातका भी ध्यान रखा जाना चाहिए। सर्वोपरि इसका ध्यान रहना चाहिए कि सिद्धान्तोंका पतन न हो। रचनात्मक टीका आवश्यक है किन्तु विरोधमात्रके लिए विरोध न होना चाहिए। विभिन्नतामें एकता लाना तथा राष्ट्रहित ही सम्पादकीय नीतिका आधार होना चाहिए।

समाचार-सम्पादनके सम्बन्धमें पराड़करजीका अभिमत था कि श्रेष्ठ समाचारपत्रमें समाचारोंका सम्पादन अपनी मूलभूत नीतिको ही ध्यानमें रखकर किया जाना चाहिए। जो समाचार आवें उन्हें ज्योंका-त्यों न दिया जाना चाहिए। उनका प्रकाशन, उन्हें महत्त्व देने अथवा न देनेके विषयमें अपनी नीतिको ही निर्देशिका मानना चाहिए। समाचार जिस एजेन्सीसे हमें मिलते हैं, केवल उनके ही दृष्टिकोणके प्रकाशनका हमें माध्यम न बनना चाहिए। समाचारोंके अनुवादकी प्रचलित 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' प्रवृत्तिकी आप कटु आलोचना करते थे। आपका स्पष्ट मत रहा है कि अँगरेजी तारोंका अनुवाद, भाव और मुख्यार्थको ध्यानमें रखकर ही किया जाना चाहिए। आये तारोंको सर्वप्रथम पूरा पढ़ लिया जाय और उसका मन्त्र क्या है, उसे अपने शब्दोंमें लिखना चाहिए। तार-समाचारमें व्यक्त महत्त्वकी सभी बातें क्रमानुसार सम्पादित करते हुए हिन्दीमें प्रस्तुत कर दी जानी चाहिए। अँगरेजी वाक्य रचनाके अनुसार उसका केवल शाब्दिक हिन्दी अनुवाद उन्हें अप्रिय था। अँगरेजी भाषाको हिन्दीमें लानेके आप घोर

विरोधी थे। वर्तमान समाचारपत्रोंमें भाषा सम्बन्धी उपेक्षाको लज्जाजनक बताते हुए आपका मत था कि इधर ध्यान देनेपर अवश्य सुधार हो सकता है। समाचारकी भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसमें अनुवादकी गन्ध तक न आनी चाहिए। वाक्यका भावार्थ समझ, समाचार प्रस्तुत किये जाने चाहिए और यह ध्यानमें रखा जाना चाहिए कि भावकी हत्या न हो। समाचार अनुवाद करते समय यदि कहीं शंका हो तो तत्काल सहयोगियोंसे परामर्श करनेमें किसी प्रकारका संकोच न करना चाहिए। समाचार सरल और बोध-गम्य भाषामें प्रस्तुत किये जाने चाहिए। ऐसे समय हिन्दीकी प्रकृतिका तो ध्यान रखा ही जाय, शब्दोंके प्रयोगमें भी सावधानी रखी जाय। शब्दोंके अर्थकी व्याप्ति तथा सीमाको अच्छी तरह समझकर उसका व्यवहार करना चाहिए। एक दिन इसी प्रसंगकी चर्चामें उदाहरण देते हुए पराड़करजीने इन पंक्तियोंके लेखकको बताया कि आजकल 'अत्यधिक' 'महिला' आदि शब्दोंका प्रयोग भ्रमात्मक हो रहा है। 'अधिक'से जो बोध होता है उसके लिए व्यर्थ ही 'अत्यधिक'का प्रयोग हो रहा है। इसी प्रकार 'स्त्री' शब्दका जो अर्थ है उसीके लिए 'महिला' शब्दका प्रयोग बिना किसी विचारके हो रहा है। यही ठीक नहीं। समाचारोंमें आनेवाले नित्य नये शब्दों तथा उनके प्रयोगके बारेमें भी सम्पादकीय बैठकमें विचार-विमर्श होता था, जिसकी अध्यक्षता पराड़करजी करते थे। इनमें उपयुक्त भाव प्रकट करनेके लिए उपयुक्त शब्दोंका चुनाव होता था तथा शब्दोंकी एकरूपता बनाये रखनेके निमित्त उनका भी स्वरूप स्थिर कर लिया जाता था।

'आज' के सम्पादनके सम्बन्धमें पराड़करजीका जो आदेश रहा है उसे किसी भी श्रेष्ठ दैनिक पत्रके सम्पादनका आधार बनाया जा सकता है। विशेष सूचनाके रूपमें उनका निर्देश इस प्रकार रहा है—सारे पत्रका—एक साधारण समाचारसे लेकर विशेष लेख तक—सम्पादन 'आज' की प्रतिष्ठा और नीतिको ध्यानमें रखकर करना चाहिए। शीर्षक लगाने और किसी

समाचारको महत्त्व वा गौणत्व देनेमें इसका पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। यह करते हुए समाचारको किसी भी प्रकार विकृत न करना चाहिए। पत्रकी सजावट भी आदिसे अन्त तक आकर्षक हो, यह अधिक आवश्यक है। आशा है, मेरे सब सहयोगी 'आज' को उसके राष्ट्रीयताके अभिमानके अनुरूप राष्ट्रीय बनानेका ध्यान रखेंगे। समय-समयपर हमें उनका लिखित आदेश प्राप्त होता था जिसमें लेखादिके प्रकाशन तथा उनके मेक-अप आदिके विषयमें भी निर्देश रहा करते थे। ऐसे पत्रोंमेंसे एक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

प्रिय व्यासजी, ५–५–४९

ये लेख रवि अंकमें जायँगे—प्रत्येक अंकमें दो-दो। मूल हेडिंग डबल कालमकी और द्वितीय सिंगल। लेखकका नाम कृत्रिम है, यह मूल शीर्षकके नीचे ही जाना चाहिए। मैंने टाइपका संकेत कर दिया है पर आप उसमें परिवर्तन कर सकते हैं।

भवदीय

बा० वि० पराड़कर

उन दिनों मैं 'आज' के रविवार विशेषांकका इंचार्ज-सम्पादक था। विशेषांकके सम्पादनमें पराड़करजीसे प्रायः परामर्श हुआ करता था। उनके ही आदेशसे मैंने विशेषांकमें 'साप्ताहिक सिंहावलोकन' सम्पादकीय लेखका आरम्भ किया, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया था। विशेषांकके लिए, विशेष अवसरोंपर लेखकी प्रार्थना करनेपर वे अत्यन्त कार्यव्यस्त होते हुए भी सदा अनुग्रह किया करते थे। आप कहा करते थे कि साप्ताहिक पत्र वस्तुतः सप्ताहभरके समाचारोंका समालोचक होना चाहिए। इसके लेख गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण होने चाहिए। इंगलैण्ड और अमेरिकाके अच्छे साप्ताहिक पत्र तो समाचार छापते ही नहीं। वे मान लेते हैं कि उनके पाठक दैनिक पत्र पढ़ते हैं। हिन्दीमें अभी ऐसे समाचारहीन साप्ताहिक पत्र चल नहीं सकते. चुने हुए समाचारोंका सारांश देना आवश्यक है। पर इनमें गम्भीर

लेखोंको अधिक स्थान देना चाहिए। दैनिकोंके लेख प्रायः सामयिक और अधूरे होते हैं। साप्ताहिकोंके लेख स्थायी और पूर्णांग होने चाहिए।'

देशी भाषाके समाचारपत्रोंके सम्पादनकी अनेक कठिनाइयोंपर विचार प्रकट करते हुए उनका मत था—'विदेशी अथवा विदेशियों-द्वारा संचालित कम्पनियाँ जो समाचार देती हैं उनपर तथा सभा, समितियोंके समाचारोंपर ही टीका-टिप्पणी करके वे येन-केन प्रकारेण जीवन यापन कर रहे हैं। वस्तुतः समाजकी अवस्था क्या है, इसकी खोज कोई नहीं करता। लोगोंकी जीविका, उनका आमोद-प्रमोद, उनकी कठिनाइयाँ आदि बातोंकी खोज करके यदि उनपर लेखादि निकलें, उनके समाचार संग्रह करनेका प्रयत्न किया जाय तथा उनके जीविका-निर्वाहमें सहायक होनेवाली और सुसाध्य बातें प्रकाशित की जायँ तो वस्तुतः समाचारपत्र 'देशी' होंगे और पाठकोंकी संख्या भी देखते-देखते बढ़ जायगी।' आपका दृढ़ मत था कि समाचारपत्रके सम्पादनमें लोक-सेवा तथा जनहितका ध्यान सर्वोपरि रखा जाना चाहिए। सम्पादनके सिद्धान्त तथा सार्वजनिक हितके समाचारोंके प्रकाशनके विषयमें पराड़करजीका निम्नलिखित मत मननीय एवं अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता है—

'समाचारपत्रोंके अस्तित्वका कारण ही लोकसेवा है। उनका कर्त्तव्य है कि जिन बातोंसे जनताकी हानि होती हो उनसे उसे सावधान करें। उनका कर्त्तव्य है कि सरकारी कामोंपर टीका-टिप्पणी करें और ऐसा करते समय सदा लोकहितको ही अपने सामने रखें। इस ध्येयको सामने रखकर काम करनेसे भी भूल हो सकती है पर सदुद्देश्यके कारण वह क्षम्य होती है—विशेषकर यदि पत्रकार भूलके लिए, भूल मालूम होते ही, खेद प्रकट कर दे तो उसे दोषी कोई नहीं ठहरा सकता। पत्रकारका मुख्य ध्येय लोकहित होता है। उसका पालन करते समय बहुतसे रहस्य प्रकट करने पड़ते हैं। ये रहस्य सरकारके हो सकते हैं, अन्य समूहोंके हो सकते हैं और जनतासे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियोंके भी हो सकते हैं। पत्रकार जिन

बातोंसे जनताकी हानि होनेका सन्देह करे उन्हें प्रकट कर जनताको साव-धान कर देना उसका कर्त्तव्य है। इसका न पालन करना ही बुरा है, पालन करनेमें कोई दोष नहीं। पर इस सम्बन्धमें तीन नियमोंका पालन करना आवश्यक है। पहला नियम तो यह है कि रहस्य अनुचित उपायोंसे प्राप्त न किया जाय। जैसे सरकारी कर्मचारीको घूस देकर रहस्य जानना अथवा कागज़-पत्र चुराना अनुचित है और दण्डनीय अपराध भी है। कोई प्रतिष्ठित पत्रकार इस उपायका अवलम्बन नहीं करता। दूसरा नियम यह है कि जो बात पत्रकारको इस शर्तपर बतायी जाय कि वह उसे प्रकट न करेगा, उसे प्रकाशित करना अनुचित है। स्पष्टतया यह शिष्टाचारके विरुद्ध है। तीसरा नियम यह है जिस रहस्यके प्रकट होनेसे स्वदेशकी हानि होने अथवा राष्ट्रोंमें युद्ध हो जानेकी सम्भावना हो उसे प्रकट करना अनुचित है। अवश्य ही लोकहितका ध्येय ही उसे ऐसा करनेसे रोकता है तथापि स्पष्टता-के कारण इसे अलग नियम रूपमें लिपि-बद्ध करना अनुचित न होगा। इन तीन नियमोंके सिवा चौथा नियम हमारे ध्यानमें नहीं आ रहा है जो पत्र-कारको नैतिक दृष्टिसे सार्वजनिक रहस्य प्रकट करनेसे रोकता हो। अवश्य ही कुछ रहस्य ऐसे हैं जिनको प्रकट करना कानूनसे दण्डनीय है। जिसे अपने शरीर और धनकी परवाह होगी ऐसा कोई पत्रकार यह कर्म न करेगा। परन्तु नैतिक दृष्टिसे यह भी अलंघनीय नियम नहीं है। ऐसा रहस्य हो सकता है जिसका प्रकट न होना लोकहितके लिए घातक हो अथवा जिसके प्रकट हो जानेसे बहुत बड़ा अनर्थ टलता हो, उसे दण्ड स्वीकार करके भी, प्रकट करना पत्रकारका कर्त्तव्य हो जाता है।